भाषा विज्ञान एवं भाषा रूप रेखा

(Linguistics and Language Design)

करण मिश्र

भाषा-विज्ञान एवं भाषा रूपरेखा

भाषा-विज्ञान एवं भाषा रूप रेखा
(Linguistics and Language Design)

करण मिश्र

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5491-8

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

भाषा-विज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा की उत्पत्ति, स्वरूप, विकास आदि का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान, भाषा के स्वरूप, अर्थ और सन्दर्भ का विश्लेषण करता है। भाषा के दस्तावेजीकरण और विवेचन का सबसे प्राचीन कार्य 6वीं शताब्दी के महान् भारतीय वैयाकरण पाणिनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में किया है।

अपने वर्तमान स्वरूप में भाषा-विज्ञान पश्चिमी विद्वानों के मस्तिष्क की देन कहा जाता है। अति प्राचीन काल से ही भाषा-संबंधी अध्ययन की प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में पाई जाती है। 'शिक्षा' नामक वेदांग में भाषा सम्बन्धी सूक्ष्म चर्चा उपलब्ध होती है। ध्वनियों के उच्चारण- अवयव, स्थान, प्रयत्न आदि का इन ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। 'प्रातिशाख्य' एवं निरूक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति, धातु, उपसर्ग-प्रत्यय आदि विषयों पर वैज्ञानिक विश्लेषण भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है। भर्तृहरि के ग्रन्थ 'वाक्य पदीय' के अन्तर्गत 'शब्द' के स्वरूप का सूक्ष्म, गहन एवं व्यापक चिन्तन उपलब्ध होता है। वहाँ शब्द को 'ब्रह्म' के रूप में परिकल्पित किया गया है और उसकी 'अक्षर' संज्ञा बताई गई है। प्रकारान्तर से यह एक भाषा-अध्ययन सम्बन्धी ग्रन्थ ही है।

संस्कृत साहित्य में दर्शन एवं साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी हमें 'शब्द' 'अर्थ', 'रस', 'भाव' के सूक्ष्म विवेचन के अन्तर्गत भाषा वैज्ञानिक चर्चाओं के

ही संकेत प्राप्त होते हैं। संस्कृत-साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होने वाली भाषा-विचार-विषयक सामग्री ही निश्चित रूप से वर्तमान भाषा-विज्ञान की आधारशिला कही जा सकती है।

आधुनिक विषय के रूप में भाषा-विज्ञान का सूत्रपात यूरोप में सन 1786 ई. में सर विलियम जोन्स नामक विद्वान द्वारा किया गया संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रसंग में सर विलियम जोन्स ने ही सर्वप्रथम संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इस संभावना को व्यक्त किया था कि संभवत: इन तीनों भाषाओं के मूल में कोई एक भाषा रूप ही आधार बना हुआ है। अत: इन तीनों भाषाओं (संस्कृत, ग्रीक और लैटिन) के बीच एक सूक्ष्म संबंध सूत्र अवश्य विद्यमान है। भाषाओं का इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन ही आधुनकि भाषा-विज्ञान के क्षेत्र का पहला कदम बना।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**भाषा-विज्ञान**	**1**
	भाषा-विज्ञान के अनेक नाम	1
	इतिहास	2
	सामान्य परिचय	3
	भाषा-विज्ञान की परिभाषा	8
	व्याकरण और भाषा-विज्ञान में अन्तर	9
	शैली	15
	वर्णनात्मक पद्धति	17
	भाषा-विज्ञान की परिभाषा, स्वरूप एवं व्याप्ति	20
	ऐतिहासिक अध्ययन	22
	तुलनात्मक पद्धति	23
	प्रयोगात्मक पद्धति	23
2.	**भाषा-विज्ञान का इतिहास**	**34**
	पौरस्त्य अथवा भारतीय भाषा-चिन्तन	34
	प्राचीन भाषा-चिन्तन	35
	पाणिनि पूर्व भाषा-चिन्तन	35
	पाणिनि और पाणिनिकालीन भाषाशास्त्रीय चिन्तन	36

पतंजलि और उनका महाभाष्य 37
प्राचीन एवं मध्यकाल 39
मध्य युग 40
वर्णनात्मक भाषाविज्ञान 43
प्राहा स्कूल 44
कोपेनहेगन स्कूल 45
लंदन स्कूल 45
अमरिकी स्कूल 46
भौगोलिक भाषा विज्ञान 47
मानव विज्ञानाश्रित भाषाविज्ञान 48
भाषाविज्ञान का प्रयोगात्मक पक्ष 49
जीवनी एवं कार्य 52
समय काल 56
पाणिनि का महत्त्व 58
पाणिनि और आधुनिक भाषाशास्त्र 59
लियोनॉर्ड ब्लूमफील्ड 60
संरचना 62
अष्टाध्यायी के बाद 67
काल निर्धारण 69
हेमचन्द्राचार्य 70
जीवनवृत्त 70
रचनाएँ 72
व्याकरण ग्रन्थ 72
दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रन्थ 76
साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र का स्थान 77
अन्य साहित्य 78
हेम प्रशस्ति 79
सुनीति कुमार चटर्जी 79
किशोरीदास वाजपेयी 81
प्रकाशित कृतियाँ 83

3. भाषा दर्शन का विकास **86**
4. भाषा-विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ **93**
रूपिम विज्ञान अथवा शब्द रूप प्रक्रिया 99
भाषा-विज्ञान की अन्य शाखाएँ 101
अनुप्रयुक्त-भाषा-विज्ञान 102
भाषा-विज्ञान एवं मनोविज्ञान 106
भाषा-विज्ञान: मनोविज्ञान के लिए सहायक 107
5. भाषा की उत्पत्ति, प्रकार्य एवं विशेषताएँ **118**
प्रत्यक्ष मार्ग 118
दिव्य उत्पत्ति का सिद्धान्त 118
धातु सिद्धान्त 119
संकेत सिद्धान्त 119
अनुकरण सिद्धान्त 119
आधुनिक भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन 122
भाषा के प्रकार्य 123
भाषा के विविध रूप 127
व्यावसायिक भाषा 129
6. भाषा का अर्थ, परिभाषा, भेद, प्रवृत्ति और माध्यम **131**
भाषा की परिभाषा 132
भाषा का माध्यम 140
वक्ता-श्रोता 144
7. भाषा संरचना क्या है? **147**
ध्वनि -संरचना 147
पद संरचना 150
वाक्य संरचना 150
प्रोक्ति-संरचना 151
8. भाषा-विज्ञान के अध्ययन के प्रकार एवं पद्धतियाँ **167**
वर्णनात्मक–भाषा-विज्ञान के अध्ययन 167
भाषा-विज्ञान के अध्ययन–ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान 169
भाषा-विज्ञान के अध्ययन–सैद्धांतिक दृष्टि 169
तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के अध्ययन 169

1

भाषा-विज्ञान

भाषा-विज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा की उत्पत्ति, स्वरूप, विकास आदि का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान, भाषा के स्वरूप, अर्थ और सन्दर्भ का विश्लेषण करता है। भाषा के दस्तावेजीकरण और विवेचन का सबसे प्राचीन कार्य 6वीं शताब्दी के महान भारतीय वैयाकरण पाणिनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में किया है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययेता 'भाषा-विज्ञानी' कहलाते हैं। भाषा-विज्ञान, व्याकरण से भिन्न है। व्याकरण में किसी भाषा का कार्यात्मक अध्ययन किया जाता है, जबकि भाषा-विज्ञानी इसके आगे जाकर भाषा का अत्यन्त व्यापक अध्ययन करता है। अध्ययन के अनेक विषयों में से आजकल भाषा-विज्ञान को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

भाषा-विज्ञान भाषा को भाषा ही जानकर उसका वैज्ञानिक अध्ययन करता है।

भाषा-विज्ञान के अनेक नाम

भाषा-सम्बन्धी इस अध्ययन को यूरोप में आज तक अनेक नामों और संज्ञाओं से अभिहित किया जाता रहा है। सर्वप्रथम इस अध्ययन को फिलोलॉजी शब्द के आगे विशेषण के रूप में एक शब्द जोड़ा गया- तब इसे ''कम्पैरेटिव फिलोलॉजी'' कह कर पुकारा गया। उन्नीसवीं शताब्दी तक व्याकरण तथा

भाषा-विषयक अध्ययन को प्रायः एक ही समझा जाता था। अतः इसे विद्वानों ने 'कम्पैरेटिव ग्रामर' नाम भी दिया। फ्रांस में इसको लैंगिस्तीक् नाम दिया गया। फ्रांस में भाषा सम्बन्धी कार्य अधिक होने के कारण उन्नीसवीं सदी में सम्पूर्ण यूरोप में ही अथवा नाम ही प्रचलित रहा है। इसके अतिरिक्त 'साइंस ऑफ लैंग्वेज', 'ग्लौटोलेजी' आदि अन्य नाम भी इस विषय को प्रकट करने के लिए काम में आये। आज इन सभी नामों में से ''लिंग्विस्टिक्स'', ''फिलोलॉजी'' मात्र ही प्रयोग में लाए जाते हैं।

भारतवर्ष में इन सभी यूरोपीय नामों के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में जो नाम प्रयोग में लाए जाते हैं वे इस प्रकार हैं- ''भाषा-शास्त्र'', ''भाषा-तत्त्व'', ''भाषा-विज्ञान'', तथा ''तुलनात्मक भाषा-विज्ञान'' आदि। इन सभी नामों में से सर्व प्रचलित नाम ''भाषा-विज्ञान'' है। इन नामों में प्राचीन और नवीन सभी नामों का समाहार-सा हुआ जान पड़ता है। अतः यही नाम इस शास्त्र के लिए सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

इतिहास

अपने वर्तमान स्वरूप में भाषा-विज्ञान पश्चिमी विद्वानों के मस्तिष्क की देन कहा जाता है। अति प्राचीन काल से ही भाषा-सम्बन्धी अध्ययन की प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में पाई जाती है। 'शिक्षा' नामक वेदांग में भाषा सम्बन्धी सूक्ष्म चर्चा उपलब्ध होती है। ध्वनियों के उच्चारण- अवयव, स्थान, प्रयत्न आदि का इन ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। 'प्रातिशाख्य' एवं निरूक्त में शब्दों की व्युत्पत्ति, धातु, उपसर्ग-प्रत्यय आदि विषयों पर वैज्ञानिक विश्लेषण भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन कहा जा सकता है। भर्तृहरि के ग्रन्थ 'वाक्य पदीय' के अन्तर्गत 'शब्द' के स्वरूप का सूक्ष्म, गहन एवं व्यापक चिन्तन उपलब्ध होता है। वहाँ शब्द को 'ब्रह्म' के रूप में परिकल्पित किया गया है और उसकी 'अक्षर' संज्ञा बताई गई है। प्रकारान्तर से यह एक भाषा-अध्ययन सम्बन्धी ग्रन्थ ही है।

संस्कृत साहित्य में दर्शन एवं साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी हमें 'शब्द' 'अर्थ', 'रस', 'भाव' के सूक्ष्म विवेचन के अन्तर्गत भाषा वैज्ञानिक चर्चाओं के ही संकेत प्राप्त होते हैं। संस्कृत-साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होने वाली भाषा-विचार-विषयक सामग्री ही निश्चित रूप से वर्तमान भाषा-विज्ञान की आधारशिला कही जा सकती है।

आधुनिक विषय के रूप में भाषा-विज्ञान का सूत्रपात यूरोप में सन 1786 ई. में सर विलियम जोन्स नामक विद्वान द्वारा किया गया संस्कृत भाषा के अध्ययन के प्रसंग में सर विलियम जोन्स ने ही सर्वप्रथम संस्कृत, ग्रीक और लैटिन भाषा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इस संभावना को व्यक्त किया था कि संभवत: इन तीनों भाषाओं के मूल में कोई एक भाषा रूप ही आधार बना हुआ है। अत: इन तीनों भाषाओं (संस्कृत, ग्रीक और लैटिन) के बीच एक सूक्ष्म संबंध सूत्र अवश्य विद्यमान है। भाषाओं का इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन ही आधुनकि भाषा-विज्ञान के क्षेत्र का पहला कदम बना।

सामान्य परिचय

'भाषा-विज्ञान' नाम में दो पदों का प्रयोग हुआ है। 'भाषा' तथा 'विज्ञान'। भाषा-विज्ञान को समझने से पूर्व इन दोनों शब्दों से परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता है।

'भाषा' शब्द संस्कृत की ''भा'' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है-व्यक्त वाक (व्यक्तायां वाचि)। 'विज्ञान' शब्द में 'वि' उपसर्ग तथा 'ज्ञा' धातु से 'ल्युट्' (अन) प्रत्यय लगाने पर बनता है। सामान्य रूप से 'भाषा' का अर्थ है 'बोल चाल की भाषा या बोली' तथा 'विज्ञान' का अर्थ है 'विशेष ज्ञान', किन्तु 'भाषा-विज्ञान' शब्द में प्रयुक्त इन दोनों पदों का स्पष्ट और व्यापक अर्थ समझ लेने पर ही हम इस नाम की सारगर्भिता को जानने में सफल होंगे। अत: हम यहाँ इन दोनों पदों के विस्तृत अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

भाषा–मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अपने भावों और विचारों को एक दूसरे तक पहुंचाने की आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जाती रही है। इस प्रकार भाषा का अस्तित्त्व मानव समाज में अति प्राचीन सिद्ध होता है। मानव के सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का प्रकाशन करने के लिए, सभ्यता और संस्कृति के इतिहास को जानने के लिए भाषा एक महत्त्वपूर्ण साधन का कार्य करती है। हमारे पूर्वपुरुषों से सभी साधारण और असाधारण अनुभव हम भाषा के माध्यम से ही जान सके हैं। हमारे सभी सद्ग्रन्थों और शास्त्रों से मिलने वाला ज्ञान भाषा पर ही निर्भर है। महाकवि दण्डी ने अपने महान ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में भाषा की महत्ता सूचित करते हुए लिखा है:-

इदधतम: कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योत्तिरासंसारं न दीप्यते॥

अर्थात् यह सम्पूर्ण भुवन अंधकारपूर्ण हो जाता, यदि संसार में शब्द-स्वरूप ज्योति अर्थात् भाषा का प्रकाश न होता। स्पष्ट है कि यह कथन मानव भाषा को लक्ष्य करके ही कहा गया है। पशु-पक्षी भावों को प्रकट करने के लिए जिन ध्वनियों का आश्रय लेते हैं वे उनके भावों का वहन करने के कारण उनके लिए भाषा हो सकती हैं, किन्तु मानव के लिए अस्पष्ट होने के कारण विद्वानों ने उसे 'अव्यक्त वाक्' कहा है, जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं रखती। क्योंकि 'अव्यक्त वाक्' में शब्द और अर्थ दोनों ही अस्पष्ट बने रहते हैं। मनुष्य भी कभी-कभी अपने भावों को प्रकट करने के लिए अंग-भंगिमा, भ्रू-संचालन, हाथ-पाँव, मुखाकृति आदि के संकेतों का प्रयोग करते हैं, परन्तु वह भाषा के रूप में होते हुए भी 'व्यक्त वाक्' नहीं है। मानव भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह 'व्यक्त वाक्' अर्थात् शब्द और अर्थ की स्पष्टता लिए हुए होती है। महाभाष्य के रचयिता पतंजलि के अनुसार 'व्यक्त वाक्' का अर्थ भाषा के वर्णनात्मक होने से ही है।

यह सत्य है कि कभी-कभी संकेतों और अंग-भंगिमाओं की सहायता से भी हमारे भाव और विचारों का प्रेषण बड़ी सरलता से हो जाता है। इस प्रकार वे चेष्टाएँ भाषा की प्रतीक बन जाती हैं, किन्तु मानव भावों को प्रकट करने का सबसे उपयुक्त साधन वह वर्णनात्मक भाषा है जिसे 'व्यक्त वाक्' की संज्ञा प्रदान की गई है। इसमें विभिन्न अर्थों को प्रकट करने के लिए कुछ निश्चित् उच्चरित या कथित ध्वनियों का आश्रय लिया जाता है। अत: भाषा हम उन शब्दों के समूह को कहते हैं, जो विभिन्न अर्थों के संकेतों से सम्पन्न होते हैं। जिनके द्वारा हम अपने मनोभाव सरलता से दूसरों के प्रति प्रकट कर सकते हैं। इस प्रकार भाषा की परिभाषा करते हुए हम उसे मानव-समाज में विचारों और भावों का आदान-प्रदान करने के लिए अपनाया जाने वाला एक माध्यम कह सकते हैं, जो मानव के उच्चारण अवयवों से प्रयत्नपूर्वक नि:सृत की गई ध्वनियों का सार्थक आधार लिए रहता है। वो ध्वनि-समूह शब्द का रूप तब लेते हैं जब वे किसी अर्थ से जुड़ जाते हैं। सम्पूर्ण ध्वनि-व्यापार अर्थात् शब्द-समूह अपने अर्थ के साथ एक 'यादृच्छिक' सम्बंध पर आधारित होता है। 'यादृच्छिक' का अर्थ है पूर्णतया कल्पित। संक्षेप में विभिन्न अर्थों में व्यक्त किये गए मुख से उच्चरित उस शब्द समूह को हम भाषा कहते हैं जिसके द्वारा हम अपने भाव और विचार दूसरों तक पहुँचाते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लाभ

भाषा-विज्ञान के अध्ययन से हमें निम्नलिखित लाभ होते हैं।

1. अपनी चिर-परिचित भाषा के विषय में जिज्ञासा की तृप्ति या शंकाओं का निर्मूलन।
2. ऐतिहासिक तथा प्रागैतिहासिक संस्कृति का परिचय।
3. किसी जाति या सम्पूर्ण मानवता के मानसिक विकास का परिचय।
4. प्राचीन साहित्य का अर्थ, उच्चारण एवं प्रयोग सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान।
5. विश्व के लिए एक भाषा का विकास।
6. विदेशी भाषाओं को सीखने में सहायता।
7. अनुवाद करने वाली तथा स्वयं टाइप करने वाली एवं इसी प्रकार की मशीनों के विकास और निर्माण में सहायता।
8. भाषा, लिपि आदि में सरलता, शुद्धता आदि की दृष्टि से परिवर्तन-परिवर्द्धन में सहायता।

इन सभी लाभों की दृष्टि से आज के युग में भाषा-विज्ञान को एक अत्यन्त उपयोगी विषय माना जा रहा है और उसके अध्ययन के क्षेत्र में नित्य नवीन विकास हो रहा है।

भाषा-विज्ञान–कला है या विज्ञान?

भाषा एक प्राकृतिक वस्तु है, जो मानव को ईश्वरीय वरदान के रूप में मिली हुई है। भाषा का निर्माण मनुष्य के मुख से स्वाभाविक रूप में निःसृत ध्वनियों (वर्णों) के द्वारा होता है। भाषा का सामान्य ज्ञान इसके बोलने और सुनने वाले सभी को हो जाता है। यही भाषा का सामान्य ज्ञान कहलाता है। इसके आगे, भाषा कब बनी, कैसे बनी ? इसका प्रारम्भिक एवं प्राचीन स्वरूप क्या था ? इसमें कब-कब, क्या-क्या परिवर्तन हुए और उन परिवर्तनों के क्या कारण हैं ? अथवा कुल मिलाकर भाषा कैसे विकसित हुई ? उस विकास के क्या कारण हैं ? कौन सी भाषा किसी दूसरी भाषा से कितनी समानता या विषमता रखती है ? यह सब भाषा का विशेष ज्ञान या 'भाषा-विज्ञान' कहा जाएगा। इसी भाषा-विज्ञान के विशेष रूप अर्थात् भाषा-विज्ञान को आज अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय मान लिया गया है।

भाषा-विज्ञान जब अध्ययन के विषयों में बड़ी-बड़ी कक्षाओं के पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया तो सर्वप्रथम यह एक स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि भाषा-विज्ञान को कला के अन्तर्गत गिना जाए या विज्ञान में अर्थात् भाषा-विज्ञान कला है अथवा विज्ञान है। अध्ययन की प्रक्रिया एवं निष्कर्षों को लेकर निश्चय किया जाने लगा कि वस्तुतः उसे भौतिक विज्ञान, एवं रसायन विज्ञान आदि की भाँति विशुद्ध विज्ञान माना जाए अथवा चित्र, संगीत, मूर्ति, काव्य आदि कलाओं की भाँति कला के रूप में स्वीकार किया जाए।

भाषा-विज्ञान कला नहीं है–

कला का सम्बन्ध मानव-जाति वस्तुओं या विषयों से होता है। यही कारण है कि कला व्यक्ति प्रधान या पूर्णतः वैयक्तिक होती है। व्यक्ति सापेक्ष होने के साथ-साथ किसी देश-विशेष और काल-विशेष का भी कला पर प्रभाव रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी काल में कला के प्रति जो मूल्य रहते हैं उनमें कालान्तर में नये-नये परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं तथा वे किसी दूसरे देश में भी मान लिए जाएँ, यह भी आवश्यक नहीं है। एक व्यक्ति को किसी वस्तु में उच्च कलात्मक अभिव्यक्ति लग रही है। किन्तु दूसरे को वह इस प्रकार की न लग रही हो। अतः कला की धारणा प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न हुआ करती है।

कला का सम्बन्ध मानव हृदय की रागात्मिक वृत्ति से होता है। उसमें व्यक्ति की सौन्दर्यानुभूति का पुट मिला रहता है। कला का उद्देश्य भी सौन्दर्यानुभूति कराना या आनन्द प्रदान करना है, किसी वस्तु का तात्विक विश्लेषण करना नहीं। कला के स्वरूप की इन सभी विशेषताओं की कसौटी पर परखने से ज्ञात होता है कि भाषा-विज्ञान कला नहीं है। क्योंकि उसका सम्बन्ध हृदय की सरसता-वृत्ति से न होकर बुद्धि की तत्त्वग्राही दृष्टि से होता है। भाषा-विज्ञान का उद्देश्य सौन्दर्यानुभूति कराना या मनोरंजन कराना भी नहीं है। वह तो हमारे बौद्धिक चिन्तन को प्रखर बनाता है। भाषा के अस्तित्त्व का तात्त्विक मूल्यांकन करता है। उसका दृष्टिकोण बुद्धिवादी है। भाषा-विज्ञान के निष्कर्ष किसी व्यक्ति, राष्ट्र या काल के आधार पर परिवर्तित नहीं होते हैं तथा भाषा-विज्ञान के अध्ययन का मूल आधार जो भाषा है वह मानवकृत पदार्थ नहीं है। अतः भाषा-विज्ञान को हम कला के क्षेत्र में नहीं गिन सकते। भाषा-विज्ञान की उपयोगिता इसमें है कि वह भाषा सिखाने की कला का ज्ञान कराता है। इसी कारण स्वीट ने व्याकरण को भाषा को कला तथा विज्ञान दोनों कहा है। भाषा का शुद्ध उच्चारण, प्रभावशाली प्रयोग कला की कोटि में रखे जा सकते हैं।

भाषा-विज्ञान एक विज्ञान है–

भाषा-विज्ञान को कला की सीमा में नहीं रखा जा सकता, यह निश्चय हो जाने पर यह प्रश्न उठता है कि क्या भाषा-विज्ञान, भौतिक-शास्त्र, रसायन-विज्ञान आदि विषयों की भाँति पूर्णतः विज्ञान है ?

अनेक विद्वानों की धारणा में भाषा-विज्ञान विशुद्ध विज्ञान नहीं है। उनकी धारणा के अनुसार अभी भाषा-विज्ञान के सभी प्रयोग पूर्णता को प्राप्त नहीं हुए हैं और उसके निष्कर्षों को इसीलिए अंतिम निष्कर्ष नहीं कहा जा सकता। इसके साथ ही भाषा-विज्ञान के सभी निष्कर्ष विज्ञान की भाँति सार्वभौमिक और सार्वकालिक भी नहीं है।

जिस प्रकार गणित शास्त्र में 2 + 2 = 4 सार्वकालिक, विकल्परहित निष्कर्ष है, जो सर्वत्र स्वीकार किया जाता है, भाषा-विज्ञान के पास इस प्रकार के विकल्प-रहित निर्विवाद निष्कर्ष नहीं है। विज्ञान में तथ्यों का संकलन और विश्लेषण होता है और ध्वनि के नियम अधिकांशतः विकल्परहित ही हैं, अतः कुछ विद्वानों के अनुसार भाषा-विज्ञान को मानविकी (कला) एवं विज्ञान के मध्य में रखा जा सकता है।

विचार करने पर हम देखते हैं कि विज्ञान की आज की द्रुत प्रगति में प्रत्येक विशेष ज्ञान अपने आगामी ज्ञान के सामने पुराना और अवैज्ञानिक सिद्ध होता जा रहा है। नित्य नवीन आविष्कारों के आज के युग में वैज्ञानिक दृष्टि नित्य सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और नवीन से नव्यतर होती चली जा रही है। आज के विकसित ज्ञान-क्षेत्र को देखते हुए कई वैज्ञानिक मान्यताएँ पुरानी और फीकी पड़ गई है। न्यूटन का प्रकाश सिद्धान्त भी अब सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा है। इससे यह सिद्ध होता हो जाता है कि नूतन ज्ञान के प्रकाश में पुरातन ज्ञान भी विज्ञान के क्षेत्र से बाहर कर दिया जाता है।

अतः विशुद्ध ज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर भाषा-विज्ञान को हम विज्ञान के ही सीमा-क्षेत्र में पाते हैं। भाषा-विज्ञान निश्चय ही एक विज्ञान है जिसके अन्तर्गत हम भाषा का विशेष ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह सही है कि अभी तक भाषा-विज्ञान का वैज्ञानिक स्तर पर पूर्णतः विकास नहीं हो पाया है। यही कारण है कि प्रसिद्ध ग्रिम-नियम के आगे चल कर ग्रासमान और वर्नर को उसमें सुधार करना पड़ा है। उक्त सुधारों से पूर्व ग्रिम का ध्वनि नियम निश्चित् नियम ही माना जाता था और सुधारों के बाद भी वह निश्चित् नियम ही माना जाता

है। इस प्रकार नये ज्ञान के प्रकाश में पुराने सिद्धान्तों का खण्डन होने से विज्ञान का कोई विरोध नहीं है। वास्तव में यही शुद्ध विज्ञान है।

सन् 1930 के बाद जहाँ वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान को पुनः महत्त्व प्राप्त हुआ, वहाँ तब से लेकर आज तक द्रुत गति में विकास हुआ है। जब से ध्वनि के क्षेत्र में यंत्रों की सहायता से नये-नये परीक्षण प्रारम्भ हुए हैं तथा प्राप्त निष्कर्ष पूरी तरह नियमित होने लगे हैं, तब से ही भाषा-विज्ञान धीरे-धीरे प्रगति करता हुआ विज्ञान की श्रेणी में माना जाने लगा है।

विज्ञान की एक बड़ी विशेषता है उसका प्रयोगात्मक होना। अमेरिकी विद्वान् बलूम फील्ड़ (सन् 1933 ई.) के बाद अमेरिकी भाषा विज्ञानियों ने ध्वनि-विज्ञान एवं रूप-विज्ञान आदि के साथ भाषा-विज्ञान की एक नवीन पद्धति के रूप में प्रायोगिक भाषा-विज्ञान का बड़ी तीव्रता के साथ विकास किया है। इस पद्धति के अन्तर्गत भाषा-विज्ञान प्रयोगशालाओं का विषय बनता जा रहा है और उसके लिए अनेक यंत्रों का आविष्कार हो गया है। यह देख कर निश्चित रूप में इस विषय को विज्ञान ही कहा जाएगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

आजकल जबकि समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि शास्त्रीय विषयों के लिए जहाँ विज्ञान शब्द का प्रयोग करने की परम्परा चल पड़ी है तब शुद्ध कारण-कार्य परम्परा पर आधारित भाषा-विज्ञान को विज्ञान कहना किसी भी दृष्टि से अनुचित नहीं ठहराया जा सकता।

भाषा-विज्ञान की परिभाषा

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने अपने ग्रन्थ भाषा रहस्य में लिखा है-

"भाषा-विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।"

मंगल देव शास्त्री (तुलनात्मक भाषाशास्त्र) के शब्दों में-

"भाषा-विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें (क) सामान्य रूप से मानवी भाषा, (ख) किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः (ग) भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है।"

डॉ. भोलानाथ तिवारी के 'भाषा-विज्ञान' ग्रन्थ में यह परिभाषा इस प्रकार दी गई है-

"जिस विज्ञान के अन्तर्गत वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा की उत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक् व्याख्या करते हुए, इन सभी के विषय में सिद्धान्तों का निर्धारण हो, उसे भाषा-विज्ञान कहते हैं।"

ऊपर दी गई सभी परिभाषाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उनमें परस्पर कोई अन्तर नहीं है। डॉ. श्यामसुन्दर दास की परिभाषा में जहाँ केवल भाषा-विज्ञान पर ही दृष्टि केन्द्रित रही है वहीं मंगलदेव शास्त्री एवं भोलानाथ तिवारी ने अपनी परिभाषाओं में भाषा-विज्ञान के अध्ययन के प्रकारों को भी समाहित कर लिया है। परिभाषा वह अच्छी होती है, जो संक्षिप्त हो और स्पष्ट हो। इस प्रकार हम भाषा-विज्ञान की एक नवीन परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं- "जिस अध्ययन के द्वारा मानवीय भाषाओं का सूक्ष्म और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए, उसे भाषा-विज्ञान कहा जाता है।"

दूसरे शब्दों में भाषा-विज्ञान वह है जिसमें मानवीय भाषाओं का सूक्ष्म और व्यापक वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

व्याकरण और भाषा-विज्ञान में अन्तर

(क) व्याकरण शास्त्र में किसी भाषा विशेष के नियम बताए जाते हैं। अत: उसका दृष्टिकोण एक भाषा पर केन्द्रित रहता है, किन्तु भाषा-विज्ञान में तुलना के लिए अन्य भाषाओं के नियम, अध्ययन का आधार बनाए जाते हैं। इस प्रकार व्याकरण का क्षेत्र सीमित है और भाषा-विज्ञान का व्यापक।

(ख) व्याकरण वर्णन-प्रधान है। वह किसी भाषा के नियम तथा साधु रूप सामने रख देता है। व्याकरण भाषा के व्यावहारिक पक्ष का संकेत करता है उसके कारण व इतिहास की कोई विवेचना नहीं करता। संस्कृत की गम् धातु (गत:) से हिन्दी में गया बना है। परन्तु 'जाना', 'जाता' आदि शब्द 'या' धातु से बने हैं। इसी कारण गया शब्द को भी इसी के साथ जोड़ दिया गया है। व्याकरण की दृष्टि से कभी 'एक दश' शुद्ध शब्द रहा होगा परन्तु कालान्तर में 'द्वादश' की नकल पर 'एकादश' का प्रचलन हो गया। व्याकरण तो प्रचलित रूप बतला कर चुप हो जाएगा पर भाषा-विज्ञान इससे भी आगे जाएगा, वह बताएगा कि इसके पीछे मुण्डा आदि

आस-पास की भाषाओं का प्रभाव है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान व्याकरण का भी व्याकरण है।

(ग) भाषा-विज्ञान जहाँ भाषा के विकास का कारण समझाता है वहाँ व्याकरण प्रचलित शब्द को 'साधु प्रयोग' कहकर भाषा-विज्ञान का अनुगमन करता जाता है। इस प्रकार व्याकरण भाषा-विज्ञान का अनुगामी है। भाषा-विज्ञान में ध्वनि-विचार के अन्तर्गत हिन्दी के अधिकांश शब्द व्यंजनांत माने जाने लगे हैं जैसे 'राम' शब्द का उच्चारण 'राम' न होकर राम् है, किन्तु व्याकरण अभीतक अकारांत मानता चला आ रहा है।

(घ) भाषा-विज्ञान में भाषा के जो परिवर्तन उसका विकास माने जाते हैं वे व्याकरण में उसकी भ्रष्टता कहे जाते हैं। यही कारण है कि संस्कृत के बाद प्राकृत (= बिगड़ी हुई) आदि नाम दिये गये। भाषा-विज्ञान 'धर्म' शब्द के 'धम्म' या 'धरम' हो जाने को उसका विकास कहता है और व्याकरण उसे विकार कहता है।

साहित्य और भाषा-विज्ञान

भाषा के प्रचलित वर्तमान स्वरूप को छोड़ कर शेष सारी अध्ययन सामग्री भाषा-विज्ञान को साहित्य से ही उपलब्ध होती है। यदि आज हमारे सामने संस्कृत, ग्रीक और अवेस्ता साहित्य न होता तो भाषा-विज्ञान कभी यह जानने में सफल न होता कि ये तीनों भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से निकली हैं। इसी प्रकार आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक का हिन्दी साहित्य हमारे सामने न होता तो भाषा-विज्ञान हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किस प्रकार कर पाता।

भाषा-विज्ञान किसी प्रकार से भी भाषा का अध्ययन करे उसे पग-पग पर साहित्य की सहायता लेनी पड़ती है। बुन्देलखण्ड के नटखट बालकों के मुंह से यह सुन कर-

ओना मासी धम
बाप पढ़े ना हम

व्याकरण कहता है कि यह क्या बला है, प्राचीन साहित्य का अध्ययन ही उसे बतलाएगा कि शाकटायन के प्रथम सूत्र 'ऊँ नमः सिद्धम्' का ही यह बिगड़ा हुआ रूप है।

साहित्य भी भाषा-विज्ञान की सहायता से अपनी अनेक समस्याओं का समाधान खोजने में सफल हो जाता है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर जायसीकृत 'पद्मावत' के बहुत से शब्दों को उनके मूल रूपों से जोड़ कर उनके अर्थों को स्पष्ट किया है। साथ ही शुद्ध पाठ के निर्धारण में भी इससे पर्याप्त सहायता ली है। अत: साहित्य और भाषा-विज्ञान दोनों एक दूसरे के सहायक हैं।

मनोविज्ञान और भाषा-विज्ञान

भाषा हमारे भावों-विचारों अर्थात् मन का प्रतिबिम्ब होती है। अत: भाषा की सहायता से बहुत से समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। विशेष रूप से अर्थ-विज्ञान तो मनोविज्ञान पर पूरी तरह से आधारित है। वाक्य-विज्ञान के अध्ययन में भी मनोविज्ञान से पर्याप्त सहायता मिलती है। कभी-कभी ध्वनि-परिवर्तन का कारण जानने के लिए भी मनोविज्ञान हमारी सहायता करता है। भाषा की उत्पत्ति तथा प्रारम्भिक रूप की जानकारी में भी बाल-मनोविज्ञान तथा अविकसित लोगों का मनोविज्ञान हमारी सहायता करता है।

मनोविज्ञान को भी अपनी चिकित्सा-पद्धति में रोगी की ऊलजलूल बातों का अर्थ जानने के लिए भाषा-विज्ञान से सहायता लेनी पड़ती है। अत: भाषा-विज्ञान की सहायता से एक मनोविज्ञानी रोगी की मनोग्रन्थियों का पता लगाने में सफल हो सकता है। भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण ही आजकल भाषा मनोविज्ञान या साइकोलिंगिंवस्टिक्स नामक एक नयी अध्ययन-पद्धति का विकास हो रहा है।

शरीर-विज्ञान और भाषा-विज्ञान

भाषा मुख से निकलने वाली ध्वनि को कहते हैं। अत: भाषा-विज्ञान में हवा भीतर से कैसे चलती है, स्वरयंत्र, स्वरतंत्री, नासिकाविवर, कौवा, तालु, दाँत, जीभ, ओंठ, कंठ, मूर्द्धा तथा नाक के कारण उसमें क्या परिवर्तन होते हैं तथा कान द्वारा कैसे ध्वनि ग्रहण की जाती है, इन सबका अध्ययन करना पड़ता है। इसमें शरीर-विज्ञान ही उसकी सहायता करता है। लिखित भाषा का ग्रहण आँख द्वारा होता है और इस प्रक्रिया का अध्ययन भी भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत ही होता है। इसके लिए भी उसे शरीर विज्ञान का ऋणी होना पड़ता है।

भूगोल और भाषा-विज्ञान

भाषा-विज्ञान और भूगोल का भी-गहरा सम्बन्ध है। कुछ लोगों के अनुसार किसी स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों का उसकी भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी स्थान में बोली जाने वाली भाषा में वहाँ के पेड़-पौधे, पक्षी, जीव-जन्तु एवं अन्न आदि के लिए शब्द अवश्य मिलते हैं, परन्तु यदि उनमें से किसी की समाप्ति हो जाए तो उसका नाम वहाँ की भाषा से भी जुदा हो जाता हैं। 'सोमलता' शब्द का प्रयोग आज हमारी भाषा में नहीं होता। इस लोप का कारण सम्भवत: भौगोलिक ही है। किसी स्थान में एक भाषा का दूर तक प्रसार न होना, भाषा में कम विकास होना तथा किसी स्थान में बहुत सी बोलियों का होना भी भौगोलिक परिस्थितियों का ही परिणाम होता है। दुर्गम पर्वतों पर रहने वाली जातियों का परस्पर कम सम्पर्क होने के कारण उनकी बोली प्रसार नहीं कर पाती। नदियों के आर-पार रहने वाले लोगों की बोली-भाषा सामान्य भाषा से हट कर भिन्न होती है।

देशों, नगरों, नदियों तथा प्रान्तों आदि के नामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करने में भूगोल बड़ी मनोरंजक सामग्री प्रदान करता है।

अर्थ-विचार के क्षेत्र में भी भूगोल भाषा-विज्ञान की सहायता करता है। 'उष्ट्र' का अर्थ भैंसा से ऊँट कैसे हो गया तथा 'सैंधव' का अर्थ घोड़ा और नमक ही क्यों हुआ, आदि समस्याओं पर विचार करने में भी भूगोल सहायता करता है। भाषा-विज्ञान की एक शाखा भाषा-भूगोल की अध्ययन-पद्धति तो ठीक भूगोल की ही भाँति होती है। इसी प्रकार किसी स्थान के प्रागैतिहासिक काल के भूगोल का अध्ययन करने में भाषा-विज्ञान भी पर्याप्त सहायक होता है।

इतिहास और भाषा-विज्ञान

इतिहास का भी भाषा-विज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहास के तीन रूपों (1) राजनीतिक इतिहास, (2) धार्मिक इतिहास, (3) सामाजिक इतिहास-को लेकर यहाँ भाषा-विज्ञान से उसका सम्बन्ध दिखलाया जा रहा है-

(क) राजनीतिक इतिहास-किसी देश में अन्य देश का राज्य होना उन दोनों ही देशों की भाषाओं को प्रभावित करता है। हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी के कई हजार शब्दों का प्रवेश तथा अंग्रेजी भाषा में कई हजार भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रवेश भारत की राजनीतिक पराधीनता या दोनों

देशों के परस्पर सम्बन्ध का परिणाम है। हिन्दी में अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली शब्दों के आने के कारणों को जानने के लिए भी हमें राजनीतिक इतिहास का सहारा लेना पड़ता है।

(ख) धार्मिक इतिहास–भारत में हिन्दी-उर्दू-समस्या धर्म या साम्प्रदायिकता की ही देन है। धर्म का भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म का रूप बदलने पर भाषा का रूप भी बदल जाता है। यज्ञ का लोक-धर्म से उठ जाना ही वह कारण है जिससे आज हमारी भाषा से यज्ञ-सम्बन्धी अनेक शब्दों का लोप हो चुका है। व्यक्तियों के नामों पर भी धर्म का प्रभाव पड़ता है। हिन्दू की भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुलता होगी तो एक मुसलमान की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों की प्रचुरता देखने को मिलेगी। इसी प्रकार बहुत-सी प्राचीन धार्मिक गुत्थियों को भाषा-विज्ञान की सहायता से सुलझाया जा सकता है। धर्म के बल पर कभी-कभी कोई बोली अन्य बोलियों को पीछे छोड़कर विशेष महत्त्व पा जाती है। मध्य युग में अवधी और ब्रज के विशेष महत्त्व का कारण हमें धार्मिक इतिहास में ही प्राप्त होता है।

(ग) सामाजिक इतिहास–सामाजिक व्यवस्था तथा हमारी परम्पराएँ भी भाषा को प्रभावित करती हैं। भाषा की सहायता से किसी जाति के सामाजिक इतिहास का ज्ञान भी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय समाज में पारिवारिक सम्बन्धों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसलिए भारतीय भाषाओं में, माँ-बाप, बहन-भाई, चाचा, मौसा, फूफा, बुआ, मौसी, साला, बहनोई, साढ़ू, साली, सास-ससुर जैसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु यूरोपीय समाज में इन सभी सम्बन्धों के लिए केवल अंकल, आंटो, मदर, फादर, ब्रदर, सिस्टर जैसे शब्द ही है जिनमें कुछ 'इन लॉ' आदि शब्द जोड़-जाड़ कर अभिव्यक्ति की जाती है। अत: भाषा-विज्ञान के अध्ययन में सामाजिक इतिहास पूरी सहायता करता है। इसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था में शब्दों का किस प्रकार निर्माण हो जाया करता है, इस पर भाषा-विज्ञान प्रकाश डालता है। किसी समाज की भाषा में मिलने वाले शब्दों से उसकी समाज-व्यवस्था का परिचय प्राप्त होता है। समाज में संयुक्त-परिवार व्यवस्था है, विशाल कुटुम्ब व्यवस्था है या एकल परिवार व्यवस्था है, इस बात का उसमें व्यवहार किए गए शब्दों से पता चलता है।

भाषा-विज्ञान तथा ज्ञान के अन्य क्षेत्र

भाषा-विज्ञान के अध्ययन में तर्कशास्त्र, भौतिकशास्त्र एवं मानव-शास्त्र जैसे अन्य ज्ञान के क्षेत्र भी बड़ी सहायता पहुंचाते हैं। मनुष्य में अनेक प्रकार

के अंधविश्वास घर कर लेते हैं जिनका उसकी भाषा पर प्रभाव पड़ता है। भारतीय सामज में स्त्रियाँ अपने पति का नाम घुमा-फिराकर लेती हैं, सीधा-स्पष्ट नहीं। रात्रि में विशाल कीड़ों का नाम नहीं लिया जाता है। वे अपने लड़के का नाम मांगे (मांगा हुआ), छेदी (उसकी नाक छेद कर), बेचू (उसे दो-चार पैसे में किसी के हाथ बेच कर), घुरहू (कूड़ा), कतवारू (कूड़ा) अलिचार (कूड़ा) या लेंढ़ा (रड्डी), आदि रखते हैं। अंधविश्वासों के अतिरिक्त अन्य बहुत सी सामाजिक-मनोविज्ञान से सम्बद्ध गुत्थियों के स्पष्टीकरण के लिए मानव-विज्ञान की शाखा-प्रशाखाओं का सहारा लेना पड़ता है।

इस प्रकार ज्ञान के अनेक क्षेत्र- संस्कृति-अध्ययन, शिक्षाशास्त्र, सांख्यिकी, पाठ-विज्ञान - आदि भाषा-विज्ञान से गहरा सम्बन्ध रखते हैं।

भाषा-विज्ञान का क्षेत्र

मानव की भाषा का जो क्षेत्र है वही भाषा-विज्ञान का क्षेत्र है। संसारभर के सभ्य-असभ्य मनुष्यों की भाषाओं और बोलियों का अध्ययन भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान केवल सभ्य-साहित्यिक भाषाओं का ही अध्ययन नहीं करता अपितु असभ्य-बर्बर-असाहित्यिक बोलियों का, जो प्रचलन में नहीं है, अतीत के गर्व में खोई हुई हैं उन भाषाओं का भी अध्ययन इसके अन्तर्गत होता है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के विभाग

विषय-विभाजन की दृष्टि से भाषा-विज्ञान को भाषा-संरचना (व्याकरण) एवं 'अर्थ का अध्ययन' (semantics) में बांटा जाता है। इसमें भाषा का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण और वर्णन करने के साथ ही विभिन्न भाषाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है। भाषा-विज्ञान के दो पक्ष हैं- तात्त्विक और व्यावहारिक।

तात्त्विक भाषा-विज्ञान में भाषा का ध्वनिसम्भार (स्वर-विज्ञान और ध्वनि-विज्ञान (फोनेटिक्स)), व्याकरण (वाक्य-विन्यास व आकृति विज्ञान) एवं शब्दार्थ (अर्थ-विज्ञान) का अध्ययन किया जाता है।

व्यावहारिक भाषा-विज्ञान में अनुवाद, भाषा शिक्षण, वाक-रोग निर्णय और वाक-चिकित्सा, इत्यादि आते हैं।

इसके अतिरिक्त भाषा-विज्ञान का ज्ञान-विज्ञान की अन्यान्य शाखाओं के साथ गहरा संबंध है। इससे समाज-भाषा-विज्ञान, मनोभाषा-विज्ञान, गणनामूलक भाषा-विज्ञान आदि इसकी विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ है। भाषा-विज्ञान के गौण क्षेत्र निम्नलिखित हैं-

1. भाषा की उत्पत्ति—भाषा-विज्ञान का सबसे प्रथम, स्वाभाविक, महत्त्वपूर्ण किन्तु विचित्र प्रश्न भाषा की उत्पत्ति का है। इस पर विचार करके विद्वानों ने अनेक सिद्धान्तों का निर्माण किया है। यह एक अध्ययन का रोचक विषय है, जो भाषा के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है।

2. भाषाओं का वर्गीकरण—भाषा के प्राचीन विभाग (वाक्य, रूप, शब्द, ध्वनि एवं अर्थ) के आधार पर हम संसार भर की सभी भाषाओं का अध्ययन करके उन्हें विभिन्न कुलों या वर्गों में विभाजित करते हैं।

3. अन्य क्षेत्र—भाषा के अध्ययन के भाषा-भूगोल, भाषा-कालक्रम विज्ञान, भाषा पर आधारित प्रागैतिहासिक खोज, लिपि-विज्ञान, भाषा की प्रकृति, भाषा के विकास के कारण आदि क्षेत्र हैं।

तात्त्विक भाषा-विज्ञान के प्रक्षेत्र

स्वरविज्ञान—मानव के स्वर-यंत्र द्वारा उत्पन्न स्वनियों का अध्ययन

स्वनिम-विज्ञान—किसी भाषा के स्वनिमों का अध्ययन

रूप-विज्ञान—शब्दों के आन्तरिक संरचना का अध्ययन

वाक्य-विन्यास या वाक्य-विज्ञान—वाक्य का निर्माण करने वाली शाब्दिक इकाइयों के बीच परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन

अर्थ-विज्ञान—शब्दों एवं कथनों के अर्थ का अध्ययन

शैली

प्रायोगिक भाषा-विज्ञान

वाक्य-विज्ञान—भाषा में सारा विचार-विनिमय वाक्यों के आधार पर किया जाता है। भाषा-विज्ञान के जिस विभाग में इस पर विचार किया जाता है उसे वाक्य-विचार या वाक्य-विज्ञान कहते हैं। इसके तीन रूप हैं-

1. वर्णनात्मक
2. ऐतिहासक वाक्य-विज्ञान

3. तुलनात्मक वाक्य-विज्ञान

वाक्य-रचना का सम्बंध बोलनेवाले समाज के मनोविज्ञान से होता है। इसलिए भाषा-विज्ञान की यह शाखा बहुत कठिन है।

रूप-विज्ञान—वाक्य की रचना पदों या रूपों के आधार पर होती है। अत: वाक्य के बाद पद या रूप का विचार महत्त्वपूर्ण हो जाता है। रूप-विज्ञान के अन्तर्गत धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि उन सभी उपकरणों पर विचार करना पड़ता है जिनसे रूप बनते हैं।

शब्द-विज्ञान—रूप या पद का आधार शब्द है। शब्दों पर रचना या इतिहास इन दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। किसी व्यक्ति या भाषा का विचार भी इसके अन्तर्गत किया जाता है। कोश-निर्माण तथा व्युत्पत्ति-शास्त्र शब्द-विज्ञान के ही विचार-क्षेत्र की सीमा में आते हैं। भाषा के शब्द समूह के आधार पर बोलने वाले का सांस्कृतिक इतिहास जाना जा सकता है।

ध्वनि-विज्ञान—शब्द का आधार है ध्वनि। ध्वनि-विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनियों का अनेक प्रकार से अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत ध्वनि-शास्त्र एक अलग से उपविभाग है जिसमें ध्वनि उत्पन्न करने वाले अंगों-मुख-विवर, नासिका-विवर, स्वर तंत्री, ध्वनि यंत्र के साथ-साथ सुनने की प्रक्रिया का भी अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन के दो रूप हैं-ऐतिहासिक और तुलनात्मक। ग्रिम नियम का सम्बन्ध इसी से है।

अर्थ-विज्ञान—वाक्य का बाहरी अंग ध्वनि पर समाप्त हो जाता है। यह भाषा का बाहरी कलेवर है। इसके आगे उसकी आत्मा का क्षेत्र प्रारम्भ होता है जिसे हम अर्थ कहते हैं। अर्थ-रहित शब्द आत्मारहित शरीर की भाँति व्यर्थ होता है। अत: अर्थ भाषा का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। अर्थ-विज्ञान में शब्दों के अर्थों का विकास तथा उसके कारणों पर विचार किया जाता है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ अथवा प्रकार

किसी भी अध्ययन को हम वैज्ञानिक तब कहते हैं जब उसमें एक निश्चित प्रक्रिया को अपना कर चलते हैं। भाषा-विज्ञान भी किसी भाषा के कारण-कार्यपरक युक्तिपूर्ण विवेचन-विश्लेषण के लिए कुछ निश्चित प्रक्रियाओं में बंध कर चलता है। इन्हीं प्रक्रियाओं के आधार पर अभी तक भाषा-विज्ञान के पाँच प्रकार के अध्ययन हमें प्राप्त होते हैं।

सामान्यतया भाषा का अध्ययन निम्नांकित दृष्टियों से किया जाता है–

वर्णनात्मक पद्धति

वर्णात्मक पद्धति द्वारा एक ही काल की किसी एक भाषा के स्वरूप का विश्लेषण किया जाता है। इसके लिए इसमें उन सिद्धांतों पर प्रकाश डाला जाता, जिनके आधार पर भाषा-विशेष की रचनागत विशेषताओँ को स्पष्ट किया जा सके। ध्यातव्य है कि इस पद्धति में एक साथ विभिन्न कालों को भाषा का समावेश नहीं किया जा सकता, क्योंकि हर काल की भाषा के विश्लेषण के लिए पृथक्-पृथक् सिद्धांतों का प्रयोजन पड़ेगा।

पाणिनि न केवल भारत के, अपितु संसार के सबसे बड़े भाषा-विज्ञानी हैं, जिन्होंने वर्णनात्मक रूप में भाषा का विशद एवं व्यापक अध्ययन किया। कात्यायन एवं पतंजलि भी इसी कोटि में आते हैं। ग्रीक विद्वानों में थ्रैक्स, डिस्कोलस तथा इरोडियन ने भी इस क्षेत्र में उल्लेख्य कार्य किया था।

पाणिनि से पूर्ण प्रभावित होकर ब्लूमफील्ड (अमरीका) ने सन् 1932 ई. में 'लैंग्वेज' नामक अपना ग्रन्थ प्रकाशित करवाकर वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इधर पश्चिमी देशों - विशेषकर अमरीका में वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान का आशातीत विकास हुआ है।

ऐतिहासिक पद्धति या कालक्रमिक पद्धति (कपंबीतवदपब सपदहनपे. जपबे)

किसी भाषा में विभिन्न कालों में परिवर्तनों पर विचार करना एवं उन परिवर्तनों के सम्बन्ध में सिद्धांतों का निर्माण ही ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान का उद्देश्य होता है। वर्णनात्मक पद्धति का मूल अन्तर यह है कि वर्णनात्मक पद्धति जहाँ एककालिक है, वहाँ ऐतिहासिक पद्धति द्विकालिक।

संकृत भाषा की प्राचीनता ने ऐतिहासिक पद्धति की ओर भाषाविज्ञानियों का ध्यान आकृष्ट किया। 'फिलॉलोजी' का मुख्य प्रतिपाद्य प्राचीन ग्रन्थों की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन ही था। मुख्यतः संस्कृत, जर्मन, ग्रीक, लॉतिन जैसी भाषाओं पर ही विद्वानों का ध्यान केन्द्रित रहा। फ्रेडरिक औगुस्ट वुल्फ ने सन् 1777 ई. में ही ऐतिहासिक पद्धति की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था।

वस्तुतः, किसी भी भाषा के विकासात्मक रूप को समझने के लिए ऐतिहासिक पद्धति का सहारा लेना ही पड़ेगा। पुरानी हिन्दी अथवा मध्यकालीन

हिन्दी और आधुनिक हिन्दी में क्या परिवर्तन हुआ है, इसे ऐतिहासिक पद्धति द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है।

तुलनात्मक पद्धति

तुलनात्मक पद्धति द्वारा दो या दो से अधिक भाषाओं की तुलना की जाती है। इसे मिश्रित पद्धति भी कह सकते हैं, क्योंकि विवरणात्मक पद्धति तथा ऐतिहासिक पद्धति दोनों का आधार लिया जाता है। विवरण के लिए किसी एक काल को निश्चित करना होता है और तुलना के लिए कम-से-कम दो भाषाओं की अपेक्षा होती है। इस प्रकार, तुलनात्मक पद्धति को वर्णनात्मक पद्धति और ऐतिहासिक पद्धति का योग कहा जा सकता है।

तुलनात्मक पद्धति किन्हीं दो भाषाओं पर लागू हो सकती है। जैसे, भारतीय भाषाओं-भोजपुरी आदि में भी परस्पर तुलना की जाती है या फिर हिन्दी-अंग्रेजी, हिन्दी-रूसी, हिन्दी-फारसी का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है अर्थात् इसमें क्षेत्रगत सीमा नहीं है।

विलियम जोन्स (1746-1794तक), फ्रांस बॉप्प (1791-1867), मैक्समूलर (1823-1900), कर्टिअस (1820-1885), औगुस्ट लाइखर (1823-1868) प्रभृति विद्वानों ने तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। पर, अबतक तुलनात्मक भाषा-विज्ञान में उन सिद्धांतों की बड़ी कमी है, जिनके आधार पर दो भिन्न भाषाओं का वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं बन सका।

संरचनात्मक (गठनात्मक) पद्धति

संरचनात्मक पद्धति वर्णनात्मक पद्धति की अगली कड़ी है। अमरीका में इस पद्धति का विशेष प्रचार हो रहा है। इसमें यांत्रिक उपकरणों को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है, जिससे अनुवाद करने में विशेष सुविधा होगी। जैलिग हैरिस ने 'मेथेड्स इन स्ट्रक्चरल लिंग्युस्टिक्स ' नामक पुस्तक लिखकर इस पद्धति को विकसित किया।

भाषा-विज्ञान का प्रयोगात्मक पक्ष

विज्ञान की अन्य शाखाओं के समान भाषा-विज्ञान के भी प्रयोगात्मक पक्ष हैं, जिनके लिये प्रयोग की प्रणालियों और प्रयोगशाला की अपेक्षा होती

है। भिन्न-भिन्न यांत्रिक प्रयोगों के द्वारा उच्चारणात्मक स्वरविज्ञान, भौतिक स्वनविज्ञान और श्रवणात्मक स्वनविज्ञान का अध्ययन किया जाता है। इसे प्रायोगिक स्वनविज्ञान, यांत्रिक स्वनविज्ञान या प्रयोगशाला स्वनविज्ञान भी कहते हैं। इसमें दर्पण जैसे सामान्य उपकरण से लेकर जटिलतम विद्युत उपकरणों का प्रयोग हो रहा है। परिणामस्वरूप भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में गणितज्ञों, भौतिकशास्त्रियों और इंजीनियरों का पूर्ण सहयोग अपेक्षित हो गया है। कृत्रिम तालु और कृत्रिम तालु प्रोजेक्टर की सहायता से व्यक्ति-विशेष के द्वारा उच्चारित स्वनों के उच्चारण स्थान की परीक्षा की जाती है। कायमोग्राफ स्वानों का घोषणत्व और प्राणत्व निर्धारण करने अनुनासिकता और कालमात्र जानने के लिये उपयोगी है। लैरिंगो स्कोप से स्वरयंत्र (काकल) की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। एंडोस्कोप लैरिंगोस्कोप का ही सुधरा रूप है। ऑसिलोग्राफ की तरंगें स्वनों के भौतिक स्वरूप को पर्दे पर या फिल्म पर अत्यंत स्पष्टता से अंकित कर देती है। यही काम स्पेक्टोग्राफ या सोनोग्राफ द्वारा अधिक सफलता से किया जाता है। स्पेक्टोग्राफ जो चित्र प्रस्तुत करता है उन्हें पैटर्न प्लेबैक द्वारा फिर से सुना जा सकता है। स्पीचस्ट्रेचर की सहायता से रिकार्ड की हुई सामग्री को धीमी गति से सुना जा सकता है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे बड़े यंत्र हैं, जिनसे भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में पर्याप्त सहायता ली जा रही है।

फ्रांसीसी भाषा वैज्ञानिकों में रूइयों ने स्वनविज्ञान के प्रयोगों के विषय में (1924) ग्रंथ लिखा था। लंदन में प्रो. फर्थ ने विशेष तालुयंत्र का विकास किया। स्वरों के मापन के लिये जैसे स्वरत्रिकोण या चतुष्कोण की रेखाएँ निर्धारित की गई हैं, वैसे ही इन्होंने व्यंजनों के मापन के लिये आधार रेखाओं का निरूपण किया, जिनके द्वारा उच्चारण स्थानों का ठीक-ठीक वर्णन किया जा सकता है। डेनियल जांस और इडा वार्ड ने भी अंग्रेजी स्वनविज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। फ्रांसीसी, जर्मन और रूसी भाषाओं के स्वनविज्ञान पर काम करने वालों में क्रमशः आर्मस्ट्राँग, बिथेल और बोयानस मुख्य हैं। सैद्धांतिक और प्रायोगिक स्वनविज्ञान पर समान रूप से काम करनेवाले व्यक्तियों में निम्नलिखित मुख्य हैं– स्टेटसन (मोटर फोनेटिक्स 1928), नेगस (द मैकेनिज्म ऑव दि लेरिंग्स,1919) पॉटर, ग्रीन और कॉप (विजिबुल स्पीच), मार्टिन जूस (अकूस्टिक फोनेटिक्स, 1948), हेफनर (जनरल फोनेटिक्स 1948), मौल (फंडामेंटल्स ऑव फोनेटिक्स, 1963) आदि।

इधर एक नया यांत्रिक प्रयास आरंभ हुआ है जिसका संबंध शब्दावली, अर्थतत्त्व तथा व्याकरणिक रूपों से है। यांत्रिक अनुवाद के लिए विद्युत कम्प्यूटरों का उपयोग वैज्ञानिक युग की एक विशेष देन है। यह अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान का अत्यंत रोचक और उपादेय विषय है।

1. भौगोलिक भाषा-विज्ञान
2. नृजातीय भाषा-विज्ञान
3. अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान

भाषा-विज्ञान की परिभाषा, स्वरूप एवं व्याप्ति

भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषा-विज्ञान कहते हैं। प्राचीन काल में भाषा विषयक अध्ययन निरुक्त, शब्दानुशासन,निर्वसन-शास्त्र, व्याकरण और प्रतिशाख्य आदि में होता रहा है। आधुनिक भाषा-विज्ञान की प्रक्रिया शुरू हुए दो शताब्दी हो चुकी है। भाषा-विज्ञान के लिए समय-समय पर अनेक नाम दिए गए हैं। सर्वप्रथप इसके तुलनात्मक अध्ययन को देखते हुए इसे कम्पेरेटिव ग्रामर कहा गया। कुछ समय पश्चात् यह देखा गया कि इसमें केवल व्याकरण का ही तुलनात्मक अध्ययन न होकर भाषा के अन्य पक्षों का भी तुलनात्मक अध्ययन होता है, तो इसके स्थान पर कम्पेरेटिव फिलोलॉजी नाम रखा गया। कुछ समय तक यह नाम चलता रहा फिर यह अनुभव किया गया कि ऐसे अध्ययन में सदा ही तुलनात्मक दृष्टिकोण रहता है इसलिए तुलानात्मक भाव की स्वत: अभिव्यक्ति के कारण फिलोलॉजी नाम चलने लग गया। इसमें भाषा-विज्ञान सर्वाधिक प्रचलित शब्द है। वर्तमान समय की प्रयोग-स्थिति में भाषा-विज्ञान शब्द लिंग्विस्टिक्स का समानार्थी बन गया है। भाषा-विज्ञान सर्वाधिक प्रचलित होने के साथ सहज रूप में भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का भाव प्रकट करता है।

भाषा-विज्ञान की परिभाषा

भाषा के क्रमबद्ध तथा सुसंगठित अध्ययन को भाषा-विज्ञान कहते हैं। इसमें मानव-मुखोच्चरित और लिखित भाषा-रूपों का अध्ययन किया जाता है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने समय-समय पर भाषा-विज्ञान की परिभाषा की है।

डॉ. देवेन्द्र शर्मा ने भाषा-विज्ञान की भूमिका के पृष्ठ 176 पर भाषा-विज्ञान की परिभाषा करते हुए लिखा है–''भाषा-विज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा-विज्ञान कहलाएगा।''

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा विशिष्ट, कई और सामान्य का समकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक दृष्टि से अध्ययन और द्वितोषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।''

डॉ. देवी शंकर ने लिखा है–''भाषा-विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।''

डॉ. मंगल देव शास्त्री ने लिखा है–''भाषा-विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गो की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

इस प्रकार भाषा-विज्ञान की परिभाषा के संदर्भ में दिए गए भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के प्रत्येक मन्तव्य का अपना महत्त्व है। भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की दिशाएँ भिन्न हो सकती हैं, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण होना अनिवार्य है।

भाषा-विज्ञान की व्याप्ति

भाषा-विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसका क्षेत्र विश्व की समस्त भाषाओं तक फैला हुआ है। भाषा-विज्ञान मानव मात्र की भाषा से सम्बन्धित होता है इसलिए इसका विस्तार मानव के चिन्तन तक है। इसमें यदि साहित्यिक भाषाओं का अध्ययन किया जाता है, तो विभिन्न बोलियों का भी अध्ययन किया जाता है। वर्तमान समय में बोलियों का अध्ययन भाषा-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है, इसमें भाषा विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक अध्ययन के साथ उत्पत्ति तथा विकास का भी अध्ययन किया जाता है।

भाषा-विज्ञान में वर्तमान तथा अतीत से सम्बन्धित भाषाओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि इसमें एक तरफ उन भाषाओं का अध्ययन किया जाता है, जो अब वाचिक रूप में प्रयुक्त नहीं होती हैं, उनका केवल साहित्य प्राप्त होता है। भाषा के विभिन्न कालों में भाषा-विज्ञान का

सम्बन्ध होता है। भाषाकी विभिन्न इकाइयाँ–ध्वनि, वर्ण, शब्द, पद, वाक्य तथा अर्थ भाषा–विज्ञान क्षेत्र के विभिन्न आयाम हैं।

भाषा-विज्ञान की अध्ययन की दिशाएँ

इसे भाषा–विज्ञान अध्ययन की प्रणालियाँ भी कहते हैं। भाषा–विज्ञान में एक भाषा, दो भाषाओं अथवा विविध भाषाओं का विशिष्ट अध्ययन करते हैं। भाषा के उच्चरित या लिखित अथवा दोनों स्वरूपों पर चिन्तन किया जाता है। भाषा–विज्ञान–अध्ययन की प्रणालियाँ हैं–

वर्णनात्मक पद्धति

जब किसी भाषा के विशिष्ट काल का संगठनात्मक अध्ययन किया जाता है, तो उसे वर्णनात्मक अध्ययन कहते हैं। प्रसिद्ध विद्वान पाणिनी के अष्टाध्यायी में इसी प्रकार का भाषा–अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।इसमें भाषा के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया तथा विशेषण आदि की वर्णनात्मक समीक्षा करते हुए ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि पर विचार किया जाता है। भाषा की सब इकाइयों पर अध्ययन करते हुए उनसे सम्बन्धित नियम निर्धारित किया जाता है। भाषा के सीमित काल का ही अध्ययन होता है, फिर भी इसका प्राचीन काल से विशेष महत्त्व रहा है। इस प्रकार के अध्ययन में भाषा के साधु–असाधु रूपों पर चिन्तन करते हुए उसके वनि, शब्द आदि इकाइयों रूपी शरीरांग के साथ उसकी अर्थरूपी आत्मा पर भी विचार किया जाता है। वर्तमान समय में वर्णनात्मक पद्धति के भाषा–अध्ययन की ओर विद्वानों का विशेष झुकाव दिखाई पड़ता है।

ऐतिहासिक अध्ययन

इस पद्धति में भाषा विशेष के काल-क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है। यदि किसी विशेष भाषा के कालों के विवरणात्मक अध्ययन को कालक्रम से व्यवस्थित कर दिया जाए, तो ऐतिहासिक अध्ययन हो जाएगा। भाषा–विकास या परिवर्तन की विभिन्न धाराओं का अध्ययन इसी पद्धति में होता है। भारतीय आर्य भाषाओं के विकास-क्रम में हिन्दी का अध्ययन करना चाहें तो इसी पद्धति से वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, भाषाओं पर विचार करते हुए हिन्दी भाषा का अध्ययन किया जाएगा। यदि हिन्दी शब्दों का उद्‌भव और विकास जानना चाहेंगे तो संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश

के साथ हिन्दी का कालक्रमिक अध्ययन करना होगा, यथा–कर्म (संस्कृत) झ कम्म (प्राकृत) झ काम (हिन्दी)। भाषा चिर परिवर्तनशील है। समय तथा स्थान परिवर्तन के साथ भाषा में परिवर्तन होना स्वभाविक ही है। समय-समय पर भाषा की ध्वनियों, शब्दों तथा वाक्यों में ही नहीं अर्थ में भी परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन हमें ऐतिहासिक पद्धति के अध्ययन से ही ज्ञात होता है।

तुलनात्मक पद्धति

भाषा–अध्ययन की जिस पद्धति में दो या दो से अधिक भाषाओं की ध्वनियों, वर्णों, शब्दों, पदों, वाक्यों और अर्थों आदि की तुलना की जाती है, उसे भाषा–अध्ययन की तुलनात्मक पद्धति कहते हैं। इस अध्ययन के अन्तर्गत एक भाषा के विभिन्न कालों के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन कर उसकी विकासात्मक स्थिति का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करते हैं। एक भाषा की विभिन्न बोलियों की समता-विषमता जानने के लिए भी भाषा–अध्ययन की इस पद्धति से ही उभरा है। इसका प्रबल प्रमाण है कि प्रारम्भ में इसके लिए तुलनात्मक भाषा-विज्ञान नाम दिया गया था। यह भी सत्य है कि बिना तुलनात्मक अध्ययन–दृष्टिकोण अपनाए किसी नियम का निर्धारण अत्यन्त कठिन होता है। भाषा–परिवार के निर्धारण में भी तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक होता है। भाषा की सरसता, सरलता या विशेषताओं को स्पष्ट रूप से रेखांकित करने के लिए तुलनात्मक अध्ययन सर्वाधिक उपयोगी होता है।

प्रयोगात्मक पद्धति

भाषा–अध्ययन का महत्त्व दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है। इसे देखते हुए भाषा-अध्ययन की इस नई पद्धति का प्रारम्भ हुआ है। इसमें भाषा के जीवन्तरूप का व्यावहारिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन किसी क्षेत्र विशेष से जुड़ा होता है। इसलिए इसे क्षेत्रीय कार्य कहते हैं। इस पद्धति के अध्ययन में अध्येता को किसी क्षेत्र विशेष में जाकर सम्बन्धित भाषा-भाषी से निकट सम्पर्क करना होता है। प्रायोगिक अध्ययन में किसी भाषा या बोली की ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों के साथ बोलने वाले की भाषा में प्रयुक्त मुहावरे, कहावतों आदि की प्रयोग-स्थिति भी अध्ययन किया जाता है। प्रयोगात्मक अध्ययन से ही विभिन्न बोलियों की सहजता, स्वाभाविकता तथा अभिव्यक्ति की स्पष्टता की बात सामने आ रही है जैसे-जैसे क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग की बात जोर पकड़ रही है,

वैसे-वैसे इस पद्धति के अध्ययन में गति आ रही है। वर्तमान समय में विभिन्न विद्वानों की भाषा-विशेषताओं को जानने के लिए भी प्रयोगात्मक पद्धति अपनायी जाती है। आधुनिक भाषा-विज्ञान में प्रयोगात्मक पद्धति के अध्ययन का विशेष महत्त्व है।

संचनात्मक पद्धति

जिस पद्धति में भाषा की संरचना के आधार पर अध्ययन किया जाए उसे भाषा-अध्ययन की संरचनात्मक पद्धति कहते हैं। भाषा-अध्ययन की यह पद्धति भाषा की विभिन्न इकाइयों के सूक्ष्म चिन्तन पर आधारित है। इसमें भाषा का विवेचन और विश्लेषण संगठनात्मक दृष्टिकोण से करते हैं। भाषा के संरचनात्मक अध्ययन में पारस्परिक सम्बद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है, वर्णनात्मक भाषा-अध्ययन में भी यत्र-तत्र संरचनात्मक रूप उभर आता है। वर्णनात्मक पद्धति और संरचनात्मक पद्धति के अध्ययन में विशिष्ट अन्तर यह है किवर्णनात्मक पद्धति में भाषा की इकायों का अध्ययन एकाकी रूप में किया जाता है, जबकि संरचनात्मक अध्ययन में विभिन्न इकाइयों के पारम्परिक सम्बन्ध पर भी विचार किया जाता है, यथा-''काम'' शब्द के संरचनात्मक अध्ययन में इसके विभिन्न ध्वनि-चिह्नों-क्. आ. म्. अ के लिखित तथा विभिन्न ध्वनियों क्. आ. म् के उच्चरित रूप पर चिन्तन करते हैं। इस प्रकार शब्द-संरचना के अध्ययन में उससे सम्बन्धित ध्वनियों के साथ वाक्यों में प्रयोग की स्थिति पर भी विचार करते हैं। इससे उक्त शब्द के लिखित तथा उच्चरित रूपों का सुस्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। वर्तमान समय में भाषा-अध्ययन की संरचनात्मक पद्धति पर विशेष बल दिया जा रहा है।

भाषा-विज्ञान के परिचय में हम यह देखते हैं कि भाषा क्या है? भाषा का विकास कैसे हुआ? और समाज में भाषा का प्रयोग कैसे होता है? इन सारे प्रश्नों का उत्तर हमें भाषा-विज्ञान में मिलता है। भाषा-विज्ञान में भाषा का अध्ययन किस प्रकार से होता है? यह सारी बातों का पता हमें भाषा-विज्ञान से चलता है। भाषा-विज्ञान क्या है? भाषा और विज्ञान का क्या संबध है? भाषा-विज्ञान का अध्ययन किस तरह किया जाए? आदि बिन्दुओं को जानने का प्रयत्न करते हैं। हम यहाँ भाषा तथा विज्ञान का क्या संबंध है। यह जानते हैं।

भाषा–संसार में मनुष्य द्वारा प्रयुक्त सार्थक ध्वनि समूहों को भाषा कहते है, जिसमें ध्वनि, शब्द, वाक्य, अर्थ अदि का प्रयोग होता है। संसार में रहने वाले

सर्व-सामान्य मनुष्य भाषा का प्रयोग अपने विचारों को व्यक्त करने तथा दूसरों के साथ सम्प्रेषण (वार्तालाप) करने के लिए करते हैं। एक भाषा-भाषी व्यक्ति अपने भाषा समूह के व्यक्ति के साथ सम्प्रेषण कर सकता है, परन्तु अन्य भाषा-भाषी समूह के व्यक्ति के साथ उसे सम्प्रेषण करने में कठिनाई आ सकती है या सम्प्रेषण संभव नहीं होता है। इसका कारण यह है कि भाषा संकेतों की वह व्यवस्था है, जिसको भाषाई चिन्हों से कोडित किया जाता है। यह भाषाई चिन्ह वक्ता एवं श्रोता दोनों के मस्तिष्क में होते हैं तभी तो वक्ता द्वारा भेजे गए भाषाई सन्देश को श्रोता समझ लेता है। यदि उसे यह कोड पता नहीं है तो वह भाषा के संकेतों को डिकोड नहीं कर सकेगा, जिससे वह भाषा को समझ नहीं पाता। हम यह कह सकते हैं कि इस तरह से मनुष्य भाषा का प्रयोग समाज में करता है।

विज्ञान का अर्थ है कि किसी भी वस्तु या विषय का अध्ययन कर उससे संबंधित सम्पूर्ण तथ्यों को सामने लाना या किसी भी विषय का शास्त्रशुद्ध पद्धति से अध्ययन करना विज्ञान है। विज्ञान हमें विषय के बारे में विशिष्ट ज्ञान प्रदान करता है और उससे संबंधित तथ्यों को सामने रखता है। यहाँ भाषा-विज्ञान के सन्दर्भ में कह सकते हैं कि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषा-विज्ञान कहा जा साकता है। यहाँ विज्ञान, भाषा के सन्दर्भ में वही कार्य करता है, जो विज्ञान अन्य विषयों के सन्दर्भ में करता है, यहाँ भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान तथा प्रोक्ति विज्ञान, आदि का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान को अध्ययन की सुविधा के लिए आगे दो भागों में बाँट सकते हैं, 1 सैद्धांतिक भाषा-विज्ञान 2. अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान आदि को निम्न बिंदु द्वारा समझ सकते हैं-

1. सैद्धांतिक भाषा-विज्ञान-यह भाषा-विज्ञान का वह पक्ष है जिसमें भाषा-विज्ञान से संबंधित सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है। सैद्धांतिक पक्ष में ऐसे नियम दिए जाते हैं, जो भाषा के उच्चारण से लेकर उसके प्रयोग से संबंधित होते हैं इसमें भाषा की उत्पत्ति से लेकर उसके उच्चारण और भाषा के व्याकरण का अध्ययन करते हैं। जिसमें- ध्वनि-विज्ञान, रूप-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान आदि को संक्षेप में देख सकते हैं।

1. ध्वनि-विज्ञान-ध्वनि-विज्ञान, भाषा-विज्ञान का वह सैद्धांतिक पक्ष है, जिसमें मानव मुख से उच्चरित सार्थक ध्वनियों की उत्पत्ति, प्रसार और श्रवण का अध्ययन किया जाता है। इसमें मनुष्य मुख से उच्चारित ध्वनियाँ और उनका

उच्चारण स्थान और प्रयत्न के आधार पर वर्गीकरण और अध्ययन किया जता है, साथ ही स्वर ध्वनियाँ और व्यंजन ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। उनके प्रयोग से संबंधित नियमों को बताया जाता है। ध्वनिविज्ञान की तीन शाखाएँ हैं जिसमें औच्चारिकी शाखा, संचारिकी शाखा और श्रौतिकी शाखा का समावेश है। औच्चारिकी शाखा- ध्वनियों के उच्चारण से संबंधित है। इसमें ध्वनियों का उच्चारण मुख विवर से किस प्रकार होता है, उच्चारण स्थान और उच्चारण प्रयत्न के आधार पर स्वर ध्वनियाँ और व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण का अध्ययन किया जाता है। जैसे- 'अ, आ,इ, ई,' आदि स्वर ध्वनियाँ हैं और 'क, ख, ग, घ,' आदि व्यंजन ध्वनियाँ हैं स्वर धनियों के उच्चारण में वायु मुख विवर से निर्बाध रूप से बाहर निकलती है, तो वही दूसरी ओर व्यंजनों के उच्चारण में वायु को मुख विवर में बाधा आती है।

2. रूप-विज्ञान–इस विज्ञान में ध्वनियों से मिलकर शब्द कैसे बनते हैं, इसका अध्ययन किया जाता है। इसमें देखते हैं कि भाषा में ध्वनियाँ मिलकर शब्द कैसे बनाती है। इन निरर्थक ध्वनियों से अर्थवान शब्द कैसे बनते हैं। धातुओं में उपसर्ग और प्रत्यय लगाने से नए शब्द किस प्रकार बनते हैं, आदि का अध्ययन किया जाता है। रूप-विज्ञान में अक्षर, शब्द और पद क्या है यह भी देखते हैं। जैसे- 'क,' 'म,' 'ल', एक-एक अक्षर हैं और इनसे शब्द बनेगा 'कमल' जो हमें कोश में मिलेगा और एक पुष्प विशेष का नाम बताएगा, जब इस शब्द का प्रयोग हम वाक्य में करेंगे तो वह शब्द 'पद' कहलाएगा। रूप-विज्ञान में रूप और रूपिम के अंतर को भी देखा जाता है साथ ही संरूपों का भी अध्ययन होता है। जैसे- 'लड़की' शब्द एक रूप है, परन्तु इसमें 'लड़काई' प्रत्यय जुड़े हैं, जो अपने आप में मुक्त और बद्ध रूपिम है।

3. वाक्य-विज्ञान–वाक्य-विज्ञान में शब्दों से मिलकर वाक्य किस प्रकार से बनते हैं और उनका भाषा में प्रयोग कैसे होता है, इसका अध्ययन किया जाता है। वाक्य की आतंरिक संरचना और बाह्य संरचना को यहाँ देखा जाता है। साथ ही उनके अर्थ को भी देखा जाता है और उनके प्रयोग से संबंधित नियमों का अध्ययन भी किया जाता है। वाक्य-विज्ञान में वाक्य के प्रकार को अर्थ और संरचना के आधार पर भी देखते हैं। व्याकरण की दृष्टि से व्याकरणिक शुद्धता भी वाक्य-विज्ञान में देखी जाती है। रचना के आधार पर वाक्य के प्रकार निम्नवत हैं- सरल वाक्य, मिश्र वाक्य तथा संयुक्त वाक्य।

सरल वाक्य–सरल वाक्य में एक ही क्रिया होती है। सरल वाक्य को उप वाक्य भी कह सकते है। जैसे-राम घर जाता है। यह एक सरल वाक्य है।

मिश्र वाक्य–मिश्र वाक्य में कम से कम दो उप-वाक्य होते हैं, जिसमें एक मुख्य और दूसरा उसपर आश्रित होता है, जैसे- लड़के ने कहा कि मैं कल दिल्ली जाऊंगा। इस वाक्य में पहला वाक्य 'लड़के ने कहा।' मुख्य है, तो दूसरा वाक्य 'मैं कल दिल्ली जाऊंगा।' प्रथम वाक्य पर आश्रित है।

संयुक्त वाक्य–संयुक्त वाक्यों में कम से कम दो सरल वाक्य होते हैं, जिसमें दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं, यानि वे एक दूसरे पर आश्रित नहीं होते हैं। जैसे- मोहन घर गया और सो गया। इसमें मोहन घर गया और मोहन सो गया दोनों स्वतंत्र वाक्य है।

4. अर्थ विज्ञान–अर्थ विज्ञान, सैद्धांतिक भाषा-विज्ञान का वह पक्ष है, जिसमें भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन किया जाता है। यहाँ पर शब्द और अर्थ का संबंध, वाक्य और अर्थ का संबंध आदि का अध्ययन होता है। अर्थ के बिना भाषा का महत्त्व न के बराबर होता है। शब्द और अर्थ के संबंध में पर्यायी अर्थ वाले शब्द, विलोम अर्थ वाले शब्द, समनामता वाले शब्द, अवनामता वाले शब्द तथा अर्थ विस्तार, अर्थ संकोच और अर्थादेश का अध्ययन भी किया जाता है। अर्थ ग्रहण करने में जो समस्याएँ आती हैं उनका भी अध्ययन किया जाता है। वाक्य और अर्थ के संबंध में अनुलग्नता, पूर्वमान्यता, खण्डीकरण, पर्ययता आदि सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है।

2. अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान–अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान, भाषा-विज्ञान का वह पक्ष है, जिसमें भाषा का प्रयोग समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में किया जाता है या कह सकते हैं कि भाषा से संबंधित कार्य, जो अलग- अलग क्षेत्रों में किए जाते हैं वे सारे अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान में आते हैं।

1. कंप्यूटेशनल भाषा-विज्ञान–यह भाषा-विज्ञान का वह अनुप्रयोगात्मक पक्ष है, जिसमें भाषा का प्रयोग कंप्यूटर के माध्यम से करके ऐसे उपकरणों का निर्माण करना है, जो मनुष्य को बेहतर सुविधा प्रदान कर सके, जिसके प्रयोग से मनुष्य को समाज में भाषा से संबंधित कार्यों के लिए परेशानी न हो।

कंप्यूटेशनल भाषा-विज्ञान में कंप्यूटर के माध्यम से भाषा का विकास करने का कार्य किया जाता है। इसके लिए कंप्यूटर प्रोग्रामिंग की सहायता ली जाती है और मशीनी अनुवाद, वाक् से पाठ, पाठ से वाक् आदि उपकरणों का निर्माण किया जाता है। मशीनी अनुवाद का क्षेत्र व्यापक है। इसमे स्त्रोत भाषा से

लक्ष भाषा में अनुवाद का कार्य किया जाता है, जो मशीन की सहायता से होता है।

2. अनुवाद—अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान का वह पक्ष है जिसमें एक भाषा से दूसरी भाषा में पाठ का स्थानांतरण करना है। अनुवाद में स्रोत भाषा से लक्ष भाषा में अर्थ का स्थानांतरण भी किया जाता है, जिससे एक भाषा समुदाय का व्यक्ति अन्य भाषाओं में जो ज्ञान है उसे अपनी भाषा के माध्यम से ग्रहण कर सके। अनुवाद की प्रक्रिया को विद्वानों ने इस प्रकार से स्पष्ट किया है। स्रोत भाषा..... विश्लेषण..... अंतरण .....पुनर्गठन.....लक्ष भाषा।

3. कोश विज्ञान—कोश विज्ञान भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के अर्थों को स्पष्ट करता है। इसमें पर्यायी शब्द, विरुद्धार्थी शब्द आदि का समावेश होता है। कोश विज्ञान में एक भाषा कोश, द्विभाषी कोश और बहुभाषी कोश आदि का निर्माण किया जाता है, जो एक भाषा के शब्दों के लिए दूसरी भाषा में अर्थ को प्रतिपादित करता है।

4. समाज भाषा-विज्ञान—भाषा समाज का एक अभिन्न अंग है और समाज के बिना भाषा अधूरी है। मनुष्य भाषा का प्रयोग समाज के बाहर नहीं करता। यदि समाज नहीं रहेगा तो भाषा का भी कोई अस्तित्त्व नहीं रहेगा। मनुष्य समाज में भाषा का प्रयोग आयु में छोटे, बड़े और बराबर के लोगों से अलग-अलग भांति से करता है। वह घर, बाजार और दफ्तर में भी भाषा का प्रयोग श्रोता के अनुरूप करता है, समाज भाषा-विज्ञान में इन्हीं बातों का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है।

5. भाषा-शिक्षण—भाषा शिक्षण में भाषा के अध्ययन अध्यापन से संबंधित कार्य को किस प्रकार से आसन बनाया जा सकता है। इसका अध्ययन किया जाता है। इसमें प्रथम भाषा, द्वितीय भाषा और अन्य भाषा शिक्षण, व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटी विश्लेषण आदि का अध्ययन होता है। साथ ही इसमें व्यक्ति बोली, बोली, विभाषा और भाषा का भी विचार करते हैं।

6. प्रोक्ति—प्रोक्ति विज्ञान, भाषा-विज्ञान का एक अनुप्रयुक्त पक्ष है जिसमें भाषा को वाक्य से ऊपर के स्तर पर देखा जाता है। भाषा में एक वाक्य दूसरे वाक्य से किस प्रकार संबंधित है। आपस में वाक्य मिलकर किस तरह पाठ बनाते हैं। पाठ भाषा के निश्चित संप्रेशनात्मक प्रकार्य को कहते। यानि कोई भी पाठ तब तक पाठ नहीं कहलाएगा जब तक उससे पूर्ण संप्रेषण न हो। कुछ भाषाविद पाठ और प्रोक्ति को अलग-अलग मानते हैं तो कुछ पाठ और प्रोक्ति

को एक ही मानते हैं। वैसे देखा जाए तो पाठ भाषा के उत्पादन और उसके निर्वाचन पर बल देता है और प्रोक्ति अर्थ निर्धारण की प्रक्रिया और उसके विश्लेषण पर बल देती है। प्रोक्ति विश्लेषण में हम भाषा के पाठगत सन्दर्भ और पाठ बाह्य सन्दर्भों को देखते हैं। पाठगत संदर्भ वे होते हैं, जो पाठ के भीतर की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं तो दूसरी तरफ पाठ बाह्य सन्दर्भ पाठ में किसी वाह्य वस्तु की उपस्थिति को बताने का कार्य करते हैं। पाठगत सन्दर्भों में संसक्ति और संगति का समावेश हैं .

7. शैली-विज्ञान–प्रत्येक साहित्यकार अपनी अनुभूति को किसी-न-किसी ढंग या पद्धति का निर्धारण गुणों के आधार पर किया जाता है। इस निर्धारण को रीति या शैली कहते हैं। बीसवीं सदी के आरम्भ में जेनेवा स्कूल के भाषा वैज्ञानिक चार्ल्स बेली ने शैली के भाषा वैज्ञानिक विवेचन की बात उठायी। उनके मतानुसार वैयक्तिक भाषा में भावात्मक निहित रहती है, जो विशिष्ट परिस्थितियों में सहज भाव से मनुष्य के उच्चारणोपयोगी अवयवों से निससृत होती है। शैली विज्ञान में शैली का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। यह विज्ञान काव्यशास्त्र के पर्याप्त निकट है। भारतीय साहित्यशास्त्र के रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि सम्प्रदाय इसमें प्रमुखतया आते हैं और शेष रस, अलंकार तथा वक्र भी अपनी भूमिका निभाते हैं। पाश्चात काव्यशास्त्र में 'स्टाइल' के लक्षण भी आधुनिक विश्लेषण में अपना महत्व जमाये हुए हैं। भाषा के दो विशिष्ट रूप होते हैं-रूप और अर्थ-रीति रूप के बारे में कहती है, ध्वनि अर्थ के बारे में वक्रोक्ति इन दोनों को साथ लेकर चलती है। 'स्टाइल' भी कुछ-कुछ रूप और अर्थ के गुणों को अपने में संजोए हुए है। इस विज्ञान की दृष्टि से ध्वनि,रूप,शब्द,वाक्य आदि पर विचार किया जाता है जैसे-

1. ध्वनीय शैली-विज्ञान
2. रूपीय शैली-विज्ञान
3. शब्दीय शैली-विज्ञान
4. वाक्यीय शैली-विज्ञान
5. अर्थीय शैली-विज्ञान

इन पांच उपभेदों से साहित्य-रचना या बातचीत में प्रभाव आदि की दृष्टि से किस प्रकार की धविनयों,रूपों,शब्दों,वाक्यों या अर्थों को छोड़ा जाए और किन्हें प्रयुक्त किया जाए। इस तरह इसमें चयन-पद्धति एवं उसके आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है। इस प्रकार का विचार साहित्यिक भाषा के

संबंध में तो होता ही है,रोज बोली जाने बोली जानेवाली भाषा में भी वक्ता के सामाजिक स्तर,सन्दर्भ या विषय आदि की दृष्टि से रूपों या शब्दों आदि के चयन में पर्याप्त अन्तर पड़ता है। इसी प्रकार विशिष्ट प्रभाव के लिए सामान्य भाषा में परिवर्तन करके भी भाषा को आकर्षक बनाया जाता है।

8. व्युत्पत्ति-विज्ञान–व्युत्पत्ति-विज्ञान में शब्दों के मूल का अध्ययन किया जाता है। यह ध्वनि-विज्ञान, रूप-विज्ञान, शब्द-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान का सम्मिलित योग है। इसके लिए अंग्रेजी शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह यूनानी भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है etymon और logi। etymon का अर्थ है- किसी भाषा का शाब्दिक अर्थ है उसकी उत्पत्ति के अनुसार तथा logi का अर्थ है लेखा-जोखा अर्थात किसी शब्द का उसकी व्युत्पत्ति के अनुसार लेखा-जोखा ही एटिमेलॉजी है।

9. सांखिकी भाषा-विज्ञान–भाषा-विज्ञान की इस शाखा में सांख्यिकी के आधार पर भाषा के विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाता है। सांख्यिकी का प्रयोग ध्वनि, शब्द-रूप तथा रचना तीनों क्षेत्रों में किया जाता है। स्वनग्राम के स्तर पर स्वरावृत्ति, व्यंजनावृत्ति, संयुक्त स्वरावृत्ति, स्वर-व्यंजन के विविध संयोग लिए जाते हैं।

इस पद्धति में शब्दों की आवृत्ति, वाक्य-रचना, विराम-चिह्नों के प्रयोग, वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों की संख्या आदि सभी से काम लिया जाता है।

10. मनो-भाषा-विज्ञान–यह भाषा-विज्ञान की वह शाखा है जिसमें भाषा की उत्पत्ति मन में कैसे होती है? भाषा केवल वार्तालाप का ही माध्यम है? व्यक्ति स्वलाप के लिए भी भाषा का ही प्रयोग करता है। मनुष्य समाज में भाषा का व्यवहार करने से पहले उसकी मानसिक स्थिति क्या होती है ? मस्तिष्क में भाषा व्यवस्था के नियम कैसे काम करते हैं? भाषा से संबंधित दोष या भाषिक रोग जैसे- वाचाघात, अपठन, लेखन वैकल्य, मानसिक मंदन, प्रमस्तिष्कीय घात, वाग्दोष आदि का अध्ययन किया जाता है।

11. जैविक भाषा-विज्ञान–भाषा के विकास और प्रयोग के लिए कौन-सी जैविक परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं। समाज में भाषा का विकास और मनुष्य में भाषा विकास की क्षमता आदि का अध्ययन इस शाखा में करते हैं। सन 2000 में जेनाकिंग नाकाम भाषाविद ने एक किताब प्रकाशित की जिसका नाम था उसी से इस शाखा का आरंभ मन जाता है। यह क्षेत्र भाषा क्या है? भाषा क्षमता कैसे प्राप्त होती है? भाषा व्यवहार क्या है?भाषा के पीछे कोनसी

स्नायविक प्रक्रिया कार्य करती है? मानव जाति में भाषा का विकास कैसे हुआ? आदि बिंदुओं पर प्रकाश डालती है। यह भाषा-विज्ञान की नई शाखाओं में से एक है, जिस पर अभी बहुत कार्य होना शेष है।

12. नृभाषा-विज्ञान—नृभाषा-विज्ञान, भाषा-विज्ञान का वह अनुप्रयुक्त क्षेत्र है जिसमें मनुष्य जाति की उत्पत्ति से लेकर उसके विकास तक भाषा किस तरह से उस विशेष समुदाय के साथ विकसित हुई या भाषा के आधार पर समुदायों को कैसे बाँटा गया। विशिष्ट समुदाय के लुप्त होने से भाषा किस प्रकार लुप्त हो गई तथा उस समुदाय की संस्कृति, प्रथा, परम्परा, प्रशासकीय कार्य, आदि से संबंधित कार्य इस क्षेत्र में करते हैं।

13. क्षेत्रीय भाषा-विज्ञान—क्षेत्रीय भाषा-विज्ञान, भाषा-विज्ञान की वह शाखा है जिसमें किसी क्षेत्र विशेष से जुड़ी भाषा का अध्ययन होता है। इस शाखा को बोली भूगोल या भाषा भूगोल भी कहते हैं। इसमें किसी विशिष्ट क्षेत्र से जुडी भाषा, बोली का अध्ययन करते हैं। इससे क्षेत्र के अनुसार भाषा का किस प्रकार प्रयोग होता है और भाषा के अंतर्गत बोली जाने वाली बोलियों के क्षेत्र के बारे में पता चलता है।

14. फोरेंसिक भाषा-विज्ञान—यह भाषा-विज्ञान की एक अनुप्रयुक्त शाखा है। जो अपराधिक जगत से जुड़े लोग तथा उनकी भाषा का अध्ययन करती है। इसमें यह देखा जाता है कि आपराधिक मामलों से जुड़े लोग किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं। वह आपराधिक गतिविधियों में कौनसी कूट भाषा का प्रयोग करते हैं। इसमें दिए गए बयान तथा फोन से किया हुआ संभाषण, रिकॉर्डर भाषा और अन्य अपराधों से संबंधित लिखित दस्तावेजों का सूक्ष्म वलोकन भाषा विशेषज्ञ द्वारा करते हैं।

15. क्षेत्र-कार्य भाषाविज्ञान—क्षेत्र कार्य भाषा-विज्ञान, भाषा-विज्ञान का एक अनुप्रयुक्त पक्ष हैं। यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें उन भाषाओं का अध्ययन किया जाता जो लुप्त होने की कगार पर है या जिनको सरकार द्वारा संरक्षित भाषा घोषित किया है। संसार में ऐसी अनेक भाषाएँ हैं, जो लुप्त हो गई है इन्हें मृत भाषा भी कहते हैं। जिनको बोलने वाला कोई व्यक्ति नहीं बचा, कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें बोलने वाले केवल एक या दो ही व्यक्ति बचे हैं। कुछ भाषाएँ ऐसी हैं एक समुदाय मात्र के लिए सिमित हो गई है, उस समुदाय के खत्म होने से वह भाषा भी खत्म हो जाएगी। कुछ भाषाएँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग केवल कुछ समुदाय ही

करते हैं। ऐसी भाषाओं का डेटा या कॉर्पस रिकार्ड कर उनका संरक्षण करते हैं और उनको जीवित रखने का कार्य इस क्षेत्र में किया जाता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भाषा तथा विज्ञान क्या है? कैसे ध्वनियों से भाषा बनती है? समाज में भाषा का प्रयोग कैसे किया जाता है? मस्तिष्क में भाषा का निर्माण कैसे होता है? इत्यादि का अध्ययन भाषा-विज्ञान में करते हैं। भाषा की ध्वनियों का अध्ययन ध्वनि-विज्ञान सिखाता है। भाषा का समाज में विकास कैसे हुआ तथा समाज में भाषा का प्रयोग कैसे होता है यह समाज भाषा-विज्ञान से पता चलता है। भाषा की शब्दावली साथ ही भाषा में नए शब्दों का प्रयोग कैसे होता है आदि के बारे में कोशविज्ञान से पता चलता है, जिससे अलग-अलग भाषा में एकभाषीय, द्विभाषी कोष का निर्माण किया जाता है, भाषा शिक्षण यह बताता है कि किस तरह शिक्षा का कार्य करना चाहिए। शिक्षा को सरल बनाने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में कौन-से उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे शिक्षा का कार्य अधिक प्रभावी माध्यम से हो सके। भाषा का सही प्रयोग किस प्रकार से किया जाए।

इसके लिए भाषा का व्याकरण नियम बताता है। भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषा-विज्ञान के विकास के लिए बहुत संभावनाएं हैं, फिर भी इस विशाल देश में इस विषय के बहुत कम ही जानकर है, इसका मुख्य कारण है इस विषय के बारे में जागरूकता कम होने की वजह कह सकते हैं। बहुत कम ही लोग इस विषय के बारे में जानते हैं। भाषा वैज्ञानिक क्या है यह जानते हैं। आज के इस आधुनिक युग में कंप्यूटर का महत्त्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। आज कंप्यूटर के द्वारा कोई भी काम मिनटों में होता है। कंप्यूटर भाषा-विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है, जो कंप्यूटर में कृत्रिम बुद्धि विकास के लिए कार्यरत है। इसके लिए भाषा वैज्ञानिक, कंप्यूटर भाषा वैज्ञानिक, कंप्यूटर इंजीनियर आदि मिलकर कार्य कर रहे जो भाषा से संबंधित मशीनी अनुवाद, जोकि अपने आप में बहुत ही बड़ा विकासशील क्षेत्र है, वाक् से पाठ और पाठ से वाक् निर्माण प्रक्रिया में भी कार्य हो रहा है, जोकि अभी विकास की दिशा में आगे बढ़ रहा है। मोटे तौर पर देखें तो कंप्यूटर में भाषा से संबंधित कोई भी कार्य जो कम्पूटर पर किया जाता वह भाषा वैज्ञानिक के बिना संभव नहीं है। आदि क्षेत्र में भाषा-विज्ञान को और आगे जाना है साथ ही इसके विकास की बहुत अधिक संभावनाएं है। इसलिए आने वाले कुछ सालों में भाषा-विज्ञान एक नयी ऊँचाई को छुएगा और इसका अध्ययन और विकास जिस प्रकार यूरोपीय देशों में हो रहा है। भारत में भी होगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि आनेवाले दिनों में भाषा-विज्ञान का भविष्य बहुत अधिक उज्ज्वल है।

भाषा-विज्ञान भाषा के अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा की उत्पत्ति, स्वरूप, विकास आदि का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान के अध्ययेता 'भाषा-विज्ञानी' कहलाते हैं। भाषा-विज्ञान संबंधित आरंभिक गतिविधियों में पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' का प्रमुख रूप से उल्लेख किया जाता है। भाषा-विज्ञान, व्याकरण से भिन्न है। व्याकरण में किसी भाषा का कार्यात्मक अध्ययन किया जाता है जबकि भाषा-विज्ञानी इसके आगे जाकर भाषा का अत्यन्त व्यापक अध्ययन करता है। अध्ययन के अनेक विषयों में से आजकल भाषा-विज्ञान को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

2

भाषा-विज्ञान का इतिहास

प्राचीन काल में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन मूलतः भाषा के सही व्याख्या करने की कोशिश के रूप में था। सबसे पहले चौथी शदी ईसा पूर्व में पाणिनि ने संस्कृत का व्याकरण लिखा। संसार के प्रायः सभी देशों में भाषा-चिन्तन होता रहा है। भारत के अतिरिक्त चीन, यूनान, रोंम, फ्रांस, इंग्लैंड, अमरीका, रूस, चेकोस्लाविया, डेनमार्क आदि देशों में भाषाध्ययन के प्रति अत्यधिक सचेष्टता बरती गई है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से भाषाध्ययन के इतिहास को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. पौरस्त्य
2. पाश्चात्य

पौरस्त्य अथवा भारतीय भाषा-चिन्तन

भारत में भाषाध्ययन की सुदीर्घ परम्परा रही है। यहाँ भाषा के सभी अंगों एवं तत्त्वों पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से विचार किया गया है। संक्षेप में भारतीय भाषाशास्त्रीय चिन्तन को निम्नांकित रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है–

(अ) प्राचीन भाषा-चिन्तन तथा

(आ) आधुनिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन

प्राचीन भाषा-चिन्तन

भारत के प्राचीन भाषा-चिन्तन पर निम्नलिखित रूपों में विचार करना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है–

(क) पाणिनिपूर्व भाषा-चिन्तन,

(ख) पाणिनि और पाणिनिकालीन भाषाशास्त्रीय चिन्तन

(ग) पाणिनि-पश्चात् भाषाध्ययन।

पाणिनि पूर्व भाषा-चिन्तन

प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में अनेक बार 'वाक्' के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। भाषाशास्त्र में वाक (स्पीच)-विवेचन एक अत्यंत जटिल विषय है। 'वाक्' वह मूल शक्ति है, जिसे हम सामाजिक सन्दर्भों के माध्यम से भाषा के रूप में ग्रहण करते हैं। वेद में इसी वाक्-शक्ति की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सरस्वती का आह्वान किया गया है, जिसमें इस बात की कामना की गई है कि वे वाक्-शक्ति का पान कराकर विश्व को पुष्ट करें अर्थात् मनुष्यों को सम्यरूपेण वाणी-प्रयोग के योग्य बनाए। 'उच्चारण भाषा का प्राणतत्त्व होता है', इसे सभी भाषा-विज्ञानी स्वीकार करते हैं। वेद में शुद्ध उच्चारण को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। चूँकि वेद 'अपौरुषेय' है, इसलिए उसका समय निश्चित नहीं है।

वेदों के बाद ब्राह्मणग्रन्थों का समय आता है। ऐतरेय ब्राह्मण में भाषा-विज्ञान के दो मुख्य विषयों - भाषा-वर्गीकरण एवं शब्द-अर्थ का विवेचन किया गया है। वेद-पाठ थोड़ा कठिन है। उसके अध्ययन को सरल बनाने के लिए पदपाठ की रचनाकर 'वेद-वाक्य' को पदों में विभक्त किया गया और इस क्रम में सन्धि, समास, स्वराघात जैसे विषयों का विश्लेषण भी हुआ। यह निश्चय ही भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन था। 'पदपाठ' के पश्चात् प्रातिशाख्यों एवं शिक्षाग्रन्थों का निर्माण कर ध्वनियों का वर्गीकरण, उच्चारण, स्वराघात, मात्र आदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषा वैज्ञानिक विषयों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया। विभिन्न संहिताओं के उच्चारण-भेदों को सुरक्षित रखने एवं ध्वनि की सूक्ष्मताओं का विवेचन करने में क्रमशः प्रातिशाख्यों और शिक्षाग्रन्थों का अपना विशिष्ट स्थान है।

प्रातिशाख्यों में ऋप्रातिशाख्य (शौनक), शुक्लयजुः प्रातिशाख्य (कात्यायन), मैत्रयणी प्रातिशाख्य आदि प्रमुख हैं और शिक्षाग्रन्थों (ध्वनिशास्त्रों) के निर्माताओं

में याज्ञवल्क्य, व्यास, वसिष्ठ आदि विख्यात हैं। इसी क्रम में उपनिषदों की चर्चा भी अपेक्षित है – विशेषकर तैत्तिरीय उपनिषद् की। इसमें अक्षर, अथवा वर्ण, स्वर, मात्र, बल आदि भाषीय तत्त्वों पर भी चिन्तन किया गया है।

वैदिक शब्दों का जो कोश तैयार किया गया, उसे 'निघंटु' की संज्ञा दी गई। इसका निर्माण-काल 800 ई. पू. के आस-पास माना जाता है। 'निघंटु' में संगृहीत वैदिक शब्दों का अर्थ-विवेचन किया गया 'निरुक्त' में। निरुक्तकार यास्क ने अर्थ के साथ-शाथ शब्द-भेद, शब्द-अर्थ का सम्बन्ध जैसे विषयों पर भी विचार किया।

पाणिनि और पाणिनिकालीन भाषाशास्त्रीय चिन्तन

पाणिनि और उनकी अष्टाध्यायी

संसार के भाषाविज्ञानियों में पाणिनि (450 ई.पू.) का स्थान सर्वोपरि है। न केवल पौरस्त्य विद्वानों ने, अपितु पाश्चात्य विद्वानों ने भी पाणिनि की श्रेष्टता मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर ली है। ईसा के लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व ऐसा विलक्ष्ण भाषा-विज्ञानी उत्पन्न हुआ था, यह प्रसंग विश्व को प्रेरित करने के साथ ही चकित करने वाला भी रहा है।

पाणिनि का अप्रतिम भाषा वैज्ञानिक ग्रन्थ, आठ अध्यायों में विभक्त रहने के कारण, अष्टाध्यायी कहलाता है। आठों अध्यायों में चार-चार पाद हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ सूत्र रूप में रचित है और कुल सूत्रों की संख्या लगभग चार सहस्र (3997) है। प्रसिद्ध चौदह माहेश्वर सूत्र ही अष्टाध्यायी के मूलाधार माने गए हैं। अष्टाध्यायी के आठ अध्यायों में संज्ञा (सुबन्त), क्रिया (तिङन्त), समास, कारक, सन्धि, कृत् और तद्धित प्रत्यय, स्वर-ध्वनि-विकार और पद का विवेचन किया गया है। परिशिष्ट में गणपाठ एवं धातुपाठ देकर ग्रन्थ की उपादेयता और बढ़ा दी गई है।

'अष्टाध्यायी' की प्रमुख विशेषताएँ हैं–

1. वाक्य को भाषा की मूल इकाई मानना।
2. ध्वनि-उत्पादन-प्रक्रिया का वर्णन एवं ध्वनियों का वर्गीकरण।
3. सुबन्त एवं तिङन्त के रूप में सरल और सटीक पद-विभाग।
4. व्युत्पत्ति – प्रकृति और प्रत्यय के आधार पर शब्दों का विवेचन।

पाणिनि के अन्य ग्रन्थ हैं - उणादिसूत्र, लिंगानुशासन और पाणिनीय शिक्षा। पाणिनिकालीन (कुछ विद्वानों के अनुसार उत्तरकालीन) में कात्यायन एवं पतंजलि विशेष उल्लेखनीय हैं। कात्यायन ने कार्तिक में पाणिनि के सूत्रों का विश्लेषण तो किया ही, अनेक दोषों की ओर भी संकेत किया। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उन संकेतों का भी बड़ा महत्त्व है, क्योंकि समय-परिवर्तन तथा भाषा-विकास के साथ भाषा-सम्बन्धी नियमों में भी परिवर्तन की अपेक्षा हुआ करती है।

पतंजलि और उनका महाभाष्य

अब तक सम्पूर्ण संसार में महाभाष्यकार के रूप में प्रतिष्ठित होने का श्रेय केवल पतंजलि को है। पतंजलि (150 ई.पू.) कात्यायन के समकालीन थे अथवा नहीं, यह अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। परन्तु इतना निश्चित है कि महाभाष्य लिखने के मूल में कात्यनीय वार्तिकों की प्रेरणा काम करती रही है। कारण यह कि महाभाष्य का अधिकांश भाग कात्यायन द्वारा उठायी गई शंकाओं के समाधान से सम्बद्ध हैं। पतंजलि का मुख्य उद्देश्य उन पाणिनीय सूत्रों को दोषमुक्त सिद्ध करने का रहा है, जो कात्यायन की दृष्टि में या तो दोषमुक्त थे अथवा बहुत उपादेय नहीं थे। इसके अतिरिक्त, उन्होने अष्टाध्यायी के कठिन सूत्रों का भाष्य भी प्रस्तुत किया है, जो अत्यन्त स्पष्ट और विस्तृत है। महाभाष्य में कुल 1689 सूत्रों की व्याख्या की गई है। यद्यपि महाभाष्य का आधार अष्टाध्यायी ही रही है, तथापि इसमें पतंजलि ने जनभाषा का जैसा विस्तृत विवेचन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनका भाषा विषयक अध्ययन तो गहन एवं व्यापक था ही, भाषा-विश्लेषण की क्षमता भी उनमें विलक्षण थी। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश इन तीनों प्रकार की भाषाओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने भाषा को एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। भाषा-चिन्तन के क्षेत्र में उनका यह विशिष्ट अवदान माना जाता है।

पाणिनि, कात्यायन एवं पतंजलि को 'मुनित्रय' के रूप में सादर स्मरण किया जाता है। इन तीनों महान भाषा चिन्तकों को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। ये तीनों भाषाशास्त्री विश्व-विश्रुत हो चुके हैं और जब तक भाषा-विश्लेषण होता रहेगा, उनका उल्लेख अपेक्षित समझा जाएगा।

पाणिनि-पश्चात् का भाषाध्ययन

अष्टाध्यायी की टीका एवं उसकी मौलिक व्याख्या की दृष्टि से क्रमशः काशिका एवं कौमुदी ग्रन्थों का विशिष्ट महत्त्व है। कौमुदी ग्रन्थों में सिद्धांत कौमुदी (भट्टोजि दिक्षित) एवं लघुकौमुदी प्रसिद्ध हैं।

मण्डन मिश्र प्रसिद्ध भाषा चिन्तक थे। इन्होंने 'स्फोटसिद्धि' नामक ग्रन्थ की रचना की। आप आदि जगद्गुरु शंकराचार्य के समकालीन थे। पर, कुछ लोग शंकराचार्य का समय 782-820 ई. मानते हैं। ऐसा मानना उचित नहीं प्रतीत होता। मण्डन मिश्र ओर शंकराचार्य इससे पहले हुए थे।

भाषा-विज्ञान को भृर्तहरि की देन–वाक्यपदीय का महत्त्व पाणिनि-पतंजलि-पश्चात् के भाषाशास्त्रियों में वाक्यपदीयकार भृर्तहरि (सातवीं शताब्दी) का स्थान अत्युच्च है। न केवल प्राचीन भाषाशास्त्र की दृष्टि से भृर्तहरि महान है, अपितु आधुनिक भाषा-विज्ञानी भी उनके चिन्तन से अत्यधिक प्रभावित हैं। तीन काण्डों - ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड और पदकाण्ड में विभक्त वाक्यपदीय भाषा-विज्ञान का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। अत्यन्त संक्षेप में इस ग्रंथ की विशेषताओं पर निम्नांकित रूपों में प्रकाश डाला जा सकता है–

1. भाषा की इकाई वाक्य ही होता है, चाहे उसका अस्तित्त्व एक वर्ण के रूप में क्यों न हो।
2. वाक्शक्ति विश्व-व्यवहार का सर्वप्रमुख आधार है।
3. वाक्-प्रयोग एक मनोवैज्ञानिक क्रिया है, जिसमें वक्ता और श्रोता दोनों का होना आवश्यक है। ज्ञातव्य है कि गार्डीनर, जेस्पर्सन एवं चॉम्सकी प्रभृति अधिक चर्चित आधुनिक भाषा-विज्ञानी भी इसका पूर्ण समर्थन करते हैं।
4. हर वर्ण में उसके अतिरिक्त भी किंचित वर्णांश सम्मिलित रहता है। अमरीकी भाषा-विज्ञान ने भी प्रयोग द्वारा इसे सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है। भौतिक विज्ञान भी यही बतलाता है।
5. ध्वनि उत्पादन, उच्चारण, ध्वनि-ग्रहण, स्फोट आदि का विस्तृत विवेचन भर्तृहरि ने किया है। भाषा-विज्ञान के ये प्रमुख विषय हैं।
6. भर्तृहरि अर्थग्रहण में लोक प्रसिद्ध को ही महत्त्व देते हैं। पतंजलि के बाद इन्होंने ही इस पर विशद रूप से विचार किया है।
7. भर्तृहरि ने शिष्ट भाषा के साथ-साथ लोक भाषा के अध्ययन पर भी बहुत बल दिया है। यही प्रवृति आज सम्पूर्ण विश्व में दिखाई पड़ती है। इस प्रकार, भर्तृहरि के भाषा सिद्धांत अत्यन्त व्यापक अथच पूर्ण वैज्ञानिक हैं।

कौण्ड भट्ट एवं नागेश भट्ट

भर्तृहरि के बाद के भाषा चिन्तकों में कौण्डभट्ट (1500ई) और नागेश भट्ट (1670 ई.) प्रमुख हैं। नागेश ने अपने 'शब्देन्दुशेखर', 'परिभाषेन्दुशेखर', 'स्फोटवाद' एवं 'वैयाकरण सिद्धांत-मंजूषा' ग्रन्थों का बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन किया है।

प्राचीन एवं मध्यकाल

भारत की तुलना में यूरोप में भाषा विषयक अध्ययन बहुत देर से प्रारंभ हुआ और उसमें वह पूर्णता और गंभीरता न थी जो हमारे शिक्षाग्रंथों, प्रातिशाख्यों और पाणिनीय व्याकरण में थी। पश्चिमी दुनिया के लिये भाषा विषयक प्राचीनतम उल्लेख ओल्ड टेस्टामेंट में बुक ऑव जेनिसिस के दूसरे अध्याय में पशुओं के नामकरण के संबंध में मिलता है। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस (पाँचवीं शताब्दी ई. पू.) ने मिस्र के राजा संमेतिकॉस द्वारा संसार की भाषा ज्ञात करने के लिये दो नवजात शिशुओं पर प्रयोग करने का उल्लेख किया है। यूनान में प्राचीनतम भाषावैज्ञानिक विवेचन प्लेटो (425-348 47 ई. पू.) के संवाद में मिलता है और यह मुख्यतया ऊहापोहात्मक है। अरस्तू (384-322,21 ई. पू.) पाश्चात्य भाषाविज्ञान के पिता कहे जाते हैं। उन्होंने भाषा की उत्पति और प्रकृति के संबंध में उपने गुरु प्लेटो से कुछ विरोधी विचार व्यक्त किए। उनके अनुसार भाषा समझौते और परंपरा का परिणाम है। अर्थात् उन्होंने भाषा को यादृच्छिक कहा है। अरस्तू का यह मत आज भी सर्वमान्य है। गाय को 'गाय' इसलिये नहीं कहा जाता है कि इस शब्द से इस विशेष चौपाए जानवर का बोध होना अनिवार्य है, किंतु इसलिये कहा जाता है कि कभी उक्त पशु का बोध कराने के लिये इस शब्द का यादृच्छिक प्रयोग कर लिया गया था, जिसे मान्यता मिल गई और जो परंपरा से चला आ रहा है, उन्होंने 'संज्ञा', 'क्रिया', 'निपात' ये शब्दभेद किए।

यूनान में भाषा का अध्ययन केवल दार्शनिकों तक ही सीमित रहा। यूनानियों की दूसरी विशेषता यह थी कि उन्होंने अपनी भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं में कोई रुचि नहीं दिखाई। यह बात इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि सिकंदर की सेनाओं ने यूनान से लेकर भारत की उत्तरी सीमा तक के विस्तृत प्रदेश को पदाक्रांत किया, किंतु उनके विवरणों में उन प्रदेशों की बोलियों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। यूनान में कुछ भाषा विषयक कार्य भी हुए

अरिस्तार्कस ने होमर की कविता की भाषा का विश्लेषण किया। अपोलोनिअस डिस्कोलस ग्रीक वाक्य प्रक्रिया पर प्रकाश डाला। डिओनिसओस थ्रौक्स ने एक प्रभावशाली व्याकरण लिखा। कुछ शब्दकोश ऐसे भी मिलते हैं जिनमें ग्रीक और लैटिन के अतिरिक्त एशिया माइनर में बोली जाने वाली भाषाओं के अनेक शब्दों का समावेश किया गया है। संक्षेप में यूनानियों ने भाषा को तत्त्व मीमांसा की दृष्टि से परखा। उनके द्वारा प्रस्तुत भाषा विश्लेषण को दार्शनिक व्याकरण की संज्ञा दी गई है। रोम वालों ने यूनानियों के अनुकरण पर व्याकरण और कोश बनाए। वारो (116-27 ई. पू.) ने 26 खंडों में लैटिन व्याकरण रचा। प्रिस्किअन (512-60) का 20 खंडोवाला लैटिन व्याकरण बहुत प्रसिद्ध है।

मध्य युग

मध्य युग में ईसाई मिशनरियों को औरों की भाषाएँ सीखनी पड़ी। जनता को जनता की भाषा में उपदेश देना प्रचार के लिये अनिवार्य था। फलस्वरूप परभाषा सीखने की व्यावहारिक पद्धतियाँ निकलीं। मिशनरियों ने अनेक भाषाओं के व्याकरण तथा कोश बनाए। पर ग्रीक लैटिन व्याकरण के ढाँचों में रचे जाने के कारण ये अपूर्ण तथा उनुपयुक्त थे। उसी युग में सैनिकों और उपनिवेशों ने शासकीय वर्ग के लोगों ने स्थानीय भाषाओं का विश्लेषण शुरू किया। साथ ही व्यापार विस्तार के कारण अनेकानेक भाषाओं से यूरोपीयों का परिचय बढ़ा। 17वीं शताब्दी में (1647 में) फैंसिस लोडविक तथा रेवरेंड केव डेक जैसे विद्वानों ने 'ए कॉमन राइटिंग' तथा 'यूनिवर्सल कैरेक्टर' जैसे ग्रंथ लिखे थे, जिससे उनके स्वनविज्ञान के ज्ञान का परिचय मिलता है। लोडविक ने एक आशुलिपि का आविष्कार किया था, जो अंग्रेजी और डच दोनों के लिये 1650 ई. के लगभग व्यवहृत की गई थी। मध्यकाल में सभी ज्ञात भाषाओं के सर्वेक्षण का प्रयत्न हुआ। अतएव अनेक बहुभाषी कोश तथा बहुभाषी संग्रह निकले। 18वीं शताब्दी में पल्लास की विश्वभाषाओं की तुलनात्मक शब्दावली में 285 शब्द ऐसे हैं, जो 272 भाषाओं में मिलते हैं। एडेलुंग की माइथ्रोडेटीज में 500 भाषाओं में 'ईश प्रार्थना' है।

18वीं शती

इस प्रकार 18वीं शती के पूर्व भाषा विषयक प्रचुर सामग्री एकत्र हो चुकी थी। किंतु विश्लेषण तथा प्रस्तुतीकरण की पद्धतियाँ वही पुरानी थीं। इनमें

सर्वप्रथम जर्मन विद्वान् लाइबनित्स ने परिष्कार किया। इन्होंने ही संभवतः सर्वप्रथम यह बताया कि 'यूरेशियाई' भाषाओं का एक ही प्रागैतिहासिक उत्स है। इस प्रकार 18वीं शती में तुलात्मक ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की भूमिका बनी, जो 19वीं शती में जाकर विकसित हुई। संक्षेप में, 19वीं शताब्दी से पूर्व यूरोपीय भाषाओं का जो अध्ययन किया गया, वह भाषावैज्ञानिक की अपेक्षा तार्किक अधिक, रूपात्मक की अपेक्षा संकल्पनात्मक अधिक और वर्णनात्मक की अपेक्षा विध्यात्मा अधिक था।

19वीं शती (ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषाविज्ञान)—उन्नीसवीं शती ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषाविज्ञान का युग था। इसके प्रारंभ का श्रेय संस्कृत भाषा से पाश्चात्यों के परिचय को है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान का सूत्रपात एक प्रकार से उस समय हुआ जब 2 फरवरी, 1786 को सर विलियम जोंस ने कलकत्ते में यह घोषणा की कि संस्कृत भाषा की संरचना अद्‌भुत है, वह ग्रीक से अधिक पूर्ण, लैटिन से अधिक समृद्ध और दोनों से ही अधिक परिष्कृत है। फिर भी इसका दोनों से घनिष्ठ संबंध है। उन्होंने देखा कि संस्कृत की एक ओर ग्रीक और लैटिन तथा दूसरी और गॉथीक, केल्टी से इतनी अधिक समानता है कि निश्चय ही इन सबका एक ही स्रोत रहा होगा। यह पारिवारिक धारणा इस नए विज्ञान के मूल में है।

इस दिशा में पहला सुव्यवस्थित कार्य डेनमार्क वासी रास्क (1787-1832) का है। रास्क ने भाषाओं की समग्र संरचना की तुलना पर अधिक बल दिया और केवल शब्दावली साम्य आगत शब्दों के कारण भी हो सकता है। इन्होंने स्वनों के साम्य को भी पारिवारिक संबंध निर्धारण का महत्वपूर्ण अंग माना। इस धारणा को सुव्यवस्थित पुष्टि दी याकोव ग्रीम (1785-1863) ने, जिनके स्वन नियम भाषा विज्ञान में प्रसिद्ध है। इन स्वन नियमों में भारत यूरोपीय से प्राग्जर्मनीय में, तदनंतर उच्चजर्मनीय में होने वाले व्यवस्थित व्यंजन स्वन परिवर्तनों की व्याख्या है। इसी बीच संस्कृत के अधिकाधिक परिचय से पारिवारिक तुलना का क्रम अधिकाधिक गहरा होता गया। बॉप (1791-1967) ने संस्कृत, अवेस्ता ग्रीक, लैटिन, लिथुएनी, गॉथिक, जर्मन, प्राचीन स्लाव केल्टी और अल्बानी भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण प्रकाशित किया। रास्क और ग्रिम ने स्वन परिवर्तनों पर प्रकाश डाला, बॉप ने मुख्यतः रूपप्रक्रिया का आधार ग्रहण किया।

रास्क, ग्रिम और बॉप के पश्चात् मैक्समूलर (1823-1900) और श्लाइखर (1823-68) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मैक्समूलर की

महत्वपूर्ण कृति 'लेसंस इन दि सायंस ऑव लैंग्वेज' (1861) है। श्लाइखर ने भारत-यूरोपीय परिवार की भाषाओं का एक सुव्यवस्थित सर्वांगीण तुलनात्मक व्याकरण प्रस्तुत किया। श्लाइखर ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान के सैद्धांतिक पक्ष पर भी विशेष कार्य किया। इनके अनुसार यदि दो भाषाओं में समान परिवर्तन पाए जाते हैं, तो ये दोनों भाषाएँ किसी काल में एक साथ रही होंगी। इस प्रकार उन्होंने तुलनात्मक आधार पर आदिभाषा की पुनर्रचना के लिये मार्ग प्रशस्त किया। पुनर्रचना के अतिरिक्त भाषाविज्ञान को इनकी एक और मुख्य देन भाषाओं का प्ररूपसूचक वर्गीकरण है। इन दिनों भाषाविज्ञान के क्षेत्र में आने वाली अमेरिकी विद्वानों में हिवटनी (1827-1894) अग्रणी हैं। इन्होंने भाषा के विकास और भाषा के अध्ययन पर पुस्तकें लिखीं। 1876 में प्रकाशित इनके संस्कृत व्याकरण अपने क्षेत्र का अद्वितीय ग्रंथ है। श्लाइखर के तुरंत बाद फिक (1833-1916) ने 1868 में सर्वप्रथम भारत-यूरोपीय भाषाओं का तुलनात्मक शब्दकोश प्रकाशित किया, जिसमें आदि भाषा के पुनर्रचित रूप भी दिए गए थे।

कुछ समय बाद विद्वानों का ध्यान ग्रिम नियम की कुछ अंसगतियों पर गया। डेनमार्क वासी वार्नर ने 1875 में एक ऐसी असंगति को नियमबद्ध अपवाद के रूप में स्थापित किया। यह असंगति थी भारत-यूरोपीय प्, त्, क् का जर्मनीय में संघ बन जाना। वार्नर ने ग्रीक और संस्कृत की तुलना से इसका अपवाद ढूँढ़ निकाला जो वार्नर नियम के नाम से प्रचलित है। ऐसे अपवादों की स्थापना से विद्वानों के एक संप्रदाय को उनके अपने विश्वासों में पुष्टि मिली। ये नव्य वैयाकरण कहलाते हैं। इनके मत से स्वन नियमों का कोई अपवाद नहीं होता। स्वन परिवर्तन आकस्मिक और अव्यवस्थित नहीं है, प्रत्युत नियत और सुव्यवस्थित हैं। असंगति इस कारण मिलती है कि हम उनकी प्रक्रिया को पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं, क्योंकि भाषा के नमूनों की कमी है। कुछ असंगतियों के मूल में सादृश्य है, जिसकी पूर्वाचार्यो ने उपेक्षा की थी। इस प्रकार ये नव्य वैयाकरण बड़े व्यवस्थावादी थे।

20वीं शती

ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषाविज्ञान पर 20वीं सदी में भी कार्य हुआ है। भारत यूरोपीय परिवार पर ब्रुगमैन और डेलब्रुक एवं हर्मन हर्ट के तुलनात्मक व्याकरण महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। मेइए का भारत-यूरोपीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की भूमिका नामक ग्रंथ सनातन महत्व का कहा जा सकता है। हिटाइट

नामक प्राचीन भाषा का पता लगने के बाद भारत-यूरोपीय भाषा विज्ञान पर नये सिरे से कार्य प्रारंभ हुआ। भारत यूरोपीयेतर परिवारों पर ऐतिहासिक तुलनात्मक कार्य हो रहा है। ग्रीनबर्ग का अफ्रीकी भाषाओं का वर्गीकरण अनुकरणीय है। इसकी अधुनातन शाखा भाषा कालक्रम विज्ञान है, जिसके अंतर्गत तुलनात्मक पद्धति से उस समय के निरूपण का प्रयास किया जाता है जब किसी भाषापरिवार के दो सदस्य पृथक्-पृथक् हुए थे। अमरीकी मानव विज्ञानी मॉरिस स्वेडिश इस प्रक्रिया के जन्मदाता हैं। यह पद्धति रेडियो रसायन द्वारा ली गई है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

बीसवीं शती का भाषाविज्ञान मुख्यत: वर्णनात्मक अथवा संरचनात्मक भाषाविज्ञान कहा जा सकता है। इसे आधुनिक रूप देने वालों में प्रमुख बॉदें, हेनरी स्वीट और सोसुर हैं। स्विस भाषा वैज्ञानिक सोसुर (1857-1913) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों से भी पूर्व हंबोल्ट ने प्रतिपादित किया था कि भाषा-विशेष का अध्ययन किसी अन्य भाषा से तुलना किए बिना उसी भाषा के आंतरिक अवयवों के आधार पर होना चाहिए। सोसुर ने सर्वप्रथम भाषा की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए संकेतित और संकेतन के संबंध को वस्तु न मानकर प्रकार्य माना और उसे भाषाई चिह्न से अभिहित किया। चिह्न यादृच्छिक है अर्थात् 'संकेतित' का 'संकेतक' से कोई तर्कसंगत संबंध नहीं है। वृक्ष के लिये 'पेड़' कहने में कोई तर्क नहीं है, 'प', 'ए', 'ड', 'स्वनों कुछ ऐसा नहीं कि वह वृक्ष का ही संकेतक हो, यह केवल परंपरा के कारण है। इसके अतिरिक्त चिह्न का मूल्य भाषा में प्रयुक्त पूरी शब्दावली (अन्य सभी चिह्नों) के परिप्रेक्ष्य में होता है, अर्थात् उनके विरोध से होता है। भाषा का इन्हीं विरोधों की प्रकार्यता पर निर्भर रहना वर्णनात्मक भाषा विज्ञान का आधारस्तंभ है। इन (स्वनिम, रूपिम, अर्थिम आदि) की सत्ता विरोध के सिद्धांत पर ही आश्रित है।

सोसुर ने भाषा के दो प्रयोगों पैरोल (वाक) और लांग (भाषा) में भी भेद किया। प्रथम भाषा का जीवित रूप है, हमारा भाषण उच्चार पैरोल है। किंतु द्वितीय भावानयन की प्रक्रिया से उद्‌भुत एक अमूर्त भावना है। आपकी हिंदी, हमारी हिंदी, सभी की हिंदी व्यक्तिगत स्तर पर उच्चारण शब्दप्रयोगादि भेद से भिन्न है– फिर भी हिंदी भाषा जैसी अमूर्त धारणा लांग है, जो भावानयन प्रक्रिया का परिणाम है और जो इन अनेक वैयक्तिक भेदों से परे और सामान्यकृत हैं। यह साकालिक है। सोसुर का महत्व संरचनत्मक भाषाविज्ञान में क्रांतिकारी माना

जा सकता है। परकालीन यूरोप के अनेक स्कूल कोपेनहेगन, प्राहा (प्राग) लंदन तथा अमेरिका के भाषावैज्ञानिक संप्रदाय इनके कुछ मूल सिद्धांतों को लेकर विकसित हुए हैं।

प्राहा स्कूल

यूरोप में सोसुर की प्रेरणा से विकसित एक संप्रदाय प्राहा स्कूल के नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रवर्तक रूसी विद्वान् त्रुबेजकोय (Trubetzkoy, 1890–1938) थे। इस समय इसके मुख्य प्रचारक रोमन यॉकोबसन हैं। इस स्कूल की सिद्धांत प्रदर्शिका पुस्तक त्रबेजकोआ लिखित (Grundzige der Phonologie), 1936 स्वनप्रक्रिया के सिद्धांत है इस स्कूल में स्वनप्रक्रिया (Phonology) पर विशेष बल दिया जाता है। इनके यहाँ यह शब्द एक विशेष विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसके अंतर्गत भाषण स्वनों के प्रकार्य का सर्वांगीण अध्ययन आ जाता है, और इसी कारण ये लोग प्रकार्यवादी (Functionalists) कहलाते हैं। इस संप्रदाय की महत्ता भाषा संरचना की निर्धारक पद्धति में है जिसमें विचार किया जाता है स्वन इकाइयाँ विशिष्ट भाषा संबंधी व्यवस्थाओं में किस प्रकार संघटित होती है। यह पद्धति विरोध पर आश्रित है। स्वनात्मक अंतर जब अर्थात्मक अंतर को भी प्रकट करते हैं, विरोधात्मक अर्थात् स्वनिमात्मक माने जाते हैं। उदाहरण के लिये हिंदी काल और गाल शब्दों को लें। इनमें स्वनात्मक अंतर स्वनिमात्मक है। परिणामस्वरूप 'क' और 'ग' दो पृथक्-पृथक् स्वनिम हैं। यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि क और ग स्वत: स्वनिम नहीं है, ये स्वनिम केवल इस कारण हैं कि अर्थ के अनुसार ये विरोधात्मक हैं। स्वन स्वत: स्वनिम को निर्धारित नहीं करते स्वनिमत्व की निर्धारक है। इन स्वनों की विरोधात्मक प्रकार्यता। इस प्रकार, स्वनिम 'क, ग' (क ग) स्वनों के समान वास्तविक नहीं है। ये केवल अमूर्त भाव या विरोधात्मक प्रकार्यों के योग हैं। यह विरोध इस संप्रदाय में बड़े विस्तार के साथ वर्णित हुआ है। इसके अनेक प्रतिरूप युग्म, जैसे द्विपार्श्विक, बहुपार्श्विक आनुपातिक, विलगति आदि परिभाषित किए गए हैं। निवैषम्यीकरण, आर्कीस्वनिम, सहसंबध, आदि टेकनिकल शब्द इसी स्कूल के हैं। फ्रांस के आंद्रे मार्तिने ने इस विरोध की महत्ता का ऐतिहासिक स्वन-विकास में भी प्रयोग किया और कालक्रमिक स्वन-प्रक्रिया की नींव डाली। कालक्रम से उत्पन्न अनेक स्वन परिवर्तन भाषा की स्वन-संघटना में भी अंतर उपस्थित करते हैं। ये प्रकार्यात्मक परिवर्तन कहलाते हैं। ये प्रकार्यात्मक परिवर्तन भी व्यवस्था से आते हैं और

सामंजस्य अथवा लाघव की दिशा में होते हैं। इस प्रकार प्राहा स्कूल ऐतिहासिक विकासों की भी तर्कसंगत व्याख्या में सफल हुआ है।

कोपेनहेगन स्कूल

इन्हीं दिनों यूरोप में एक अन्य संप्रदाय चल निकला। यह 'कोपेनहेगन स्कूल', 'डेनिश स्कूल', अथवा 'ग्लासेमेटिक्स' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रर्वतक ह्येल्मस्लेव (सन् 1899) हैं और इनकी सिद्धांत दर्शिका है Omkring Sprogteorienx Grundloeggelse, 1943 अंग्रेजी अनुवाद ह्विटफील्ड द्वारा Prolegomena to a Theory of Language, 1953। यह संप्रदाय अधिकतर सिद्धांतों के विवेचन में सीमित रहा। पर अभी इन सिद्धांतों का भाषा-विशेष पर प्रयोग अत्यल्प मात्र में हुआ है इस संप्रदाय की महत्ता इसमें है कि यह शुद्ध रूपवादी है। भाषा को यह भी सोसुर की भाँति मूल्यों की व्यवस्था मानता है, किंतु भाषा-विश्लेषण में भाबेतर तत्त्वों का तथा भाषाविज्ञानेतर विज्ञानों का, जैसे भौतिकी, शरीर प्रक्रिया विज्ञान, समाजशास्त्र आदि का आश्रय नहीं लेना चाहता। विश्लेषण पद्धति शुद्ध भाषापरक होनी चाहिए स्वयं में समर्थ और स्वयं में पूर्ण। इस संप्रदाय में अभिव्यक्ति और आशय प्रत्येक के दो-दो भेद किए गए रूप और सार भाषेतर तत्त्व है। रूप शुद्ध भाषापरक तत्त्व है, जो सार तत्त्वों की संघटना व्यवस्था के रूप में है। इस प्रकार अभिव्यक्ति बनती है, और अभिव्यक्ति के रूप में संरचना व्यवस्था, जैसे, स्वनिम, रूपिम आदि है। इसी प्रकार आशय के सार के अंतर्गत शब्दार्थ हैं और रूप में अर्थसंघटना है।

लंदन स्कूल

हेनरी स्वीट इसके आधारस्तंभ कहे जा सकते हैं। इसका विशेष परिवर्धन लंदन विश्वविद्यालय के भाषा विज्ञान तथा स्वनविज्ञान के विद्वान् प्रोफेसर फर्थ द्वारा हुआ है। यह स्कूल अर्थ को भी मान्यता देता है। इसके अनुसार भाषा एक सार्थक क्रिया है और अर्थप्रसंग के महत्व को भी स्वीकार किया गया है। इस स्कूल में ध्वन्यात्मक विवेचन के साथ ही साथ रागात्मक तत्त्वों की चर्चा होती है। रागात्मक विश्लेषण अमेरिकी स्वनिम वैज्ञानिक विश्लेषण से भिन्न है और इसका क्षेत्र कहीं अधिक विस्तृत है। रागात्मक विश्लेषण बहुव्यवस्थाजनित है, जबकि स्वनिम विज्ञान एकव्यवस्थाजनित है। फर्थ ने जिस रागात्मक स्वनप्रक्रिया का प्रवर्तन किया उसे आगे बढ़ानेवालों में मुख्य है रॉबिंस, लायंस, हेलिडे और

डिक्शन। जहाँ तक स्वनविज्ञान का संबंध है, लंदन स्कूल के अंतर्गत स्वीट के बाद डेनियल जोन्स का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अमरिकी स्कूल

यद्यपि 'प्राहा स्कूल' और 'कोपेनहेगन स्कूल' जैसे शब्दों के वजन पर अमरीकी स्कूल नामकरण उचित नहीं होगा, क्योंकि यहाँ केवल एक पद्धति पर काम नहीं हुआ, फिर भी सुविधा के लिये अमेरिकी स्कूल कहा गया है। अमरीका में संरचनात्मक भाषा विज्ञान के प्रवर्तकों में बोआज (1858-1942), सैपीर (1884-1939) तथा ब्लूमफील्ड (1887-1949) के नाम आते हैं। इनमें पहले दो मूलत: मानव विज्ञानी थे तथा भाषा-विश्लेषण उनके लिये व्यावहारिक आवश्यकता थी। उन्होंने अमरीकी जंगली जातियों की भाषाओं के वर्णन का प्रयास किया है। ब्लूमफील्ड निस्संदेह ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे और जर्मनीय भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। ब्लूमफील्ड अमरीकी भाषाविज्ञान के प्रेरणास्रोत रहे हैं अैर आप की पुस्तक भाषा (लैंग्वेज) बड़े आदर के साथ पढ़ी-पढ़ाई जाती है। ब्लूमफील्ड की महत्ता इसमें है कि इन्होंने भाषाविज्ञान को विज्ञान की कोटि में स्थापित किया और व्याकरण तथा भाषाई विवेचन को सही अर्थो में विज्ञान का रूप दिया। इनका आग्रह रहा है कि भाषा का विश्लेषण वर्गीकरण तथा प्रस्तुतीकरण वैज्ञानिक रीति से होना चाहिए। अर्थ का भाषा-विश्लेषण से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। मनोविज्ञान दर्शन आदि का आश्रय नहीं लेना चाहिए, न अटकलें लगानी चाहिए और न शिथिल अस्पष्ट शब्दावली में तथ्यों को प्रकट करना चाहिए। स्वन नियमों की अटूटता में इनका विश्वास था। किंतु ब्लूमफील्ड ने विश्लेषण पद्धति पर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला। यह कमी उनकी अगली पीढ़ी के विद्वानों ने पूरी की। पाइक ने 'स्वनिविज्ञान' में और नाइडा ने रूपप्रक्रिया में विश्लेषण पद्धति का विस्तार से विवेचन किया है। पाइक ने टैग्मेमिक पद्धति निकाली जो कि रूप प्रक्रिया और वाक्य प्रक्रिया दोनों में एक समान प्रयुक्त होने से स्पृहणीय हो गई है। इस पद्धति पर अनेकानेक भाषाओं के विश्लेषण और विवरण प्रस्तुत किए गए हैं और सर्वत्र यह सफल रही है। इन्हीं के समकालीन जैलिग हैरिस ने भी संरचनात्मक पद्धति पर अपनी पुस्तक लिखी। इसी समय वेल्स ने अव्यवहित अवयव की पद्धति से वाक्यों का विश्लेषण करना शुरू किया, जिसे अनेक भाषाविदों ने अपनाया। फिर हैरिस के शिष्य चौमस्की ने एक नितांत गणितीय एवं तर्कसंगत पद्धति निकाली।

यह है रूपांतरण-जनन (ट्रांसफॉर्मेशन जैनरेटिव) पद्धति। यह अधुनातन पद्धति है और भाषावैज्ञानिकों को सर्वाधिक प्रिय हो चली है। अब हैरिस ने अव्यवहित अवयव पद्धति और रूपांतरण विश्लेषण पद्धति की कमियों को देखते हुए सूत्र अवयव विश्लेषण पद्धति और रूपांतरण पद्धति के बीच का रास्ता है। यह प्रत्येक वाक्य में से एक 'मौलिक वाक्य' पृथक् कर देती है अव्यवहित अवयव विश्लेषण पद्धति में इस तरह 'मौलिक वाक्य' का पृथक्करण नहीं होता जबकि रूपांतरण विश्लेषण पद्धति में पूरे वाक्य को अलग-अलग 'मौलिक वाक्यों' और उनके 'अनुलग्नक शब्दों' में पृथक् कर दिया जाता है। स्वनिमिक, रूपिमिक और वाक्य स्तर पर भाषा का विश्लेषण प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य जितना पुस्तकें लिखकर किया गया है, उससे कहीं अधिक भाषाविज्ञान ने संबंधित अमरीकी पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से हुआ है। इनके लेखकों में से कुछ हैं–ब्लॉक, हैरिस, हॉकेट, स्मिथ, ट्रेगर, वेल्स आदि।

भौगोलिक भाषा विज्ञान

भौगोलिक भाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा भूगोल भाषिका (बोली) विज्ञान का अध्ययन किया जाता है। किसी एक उल्लिखित क्षेत्र में पाई जाने वाली भाषा संबंधी विशेषताओं का व्यवस्थित अध्ययन भाषा भूगोल या बोली भूगोल के अंतर्गत आता है। ये विशेषताएँ उच्चारणगत, शब्दालीगत या व्याकरणगत हो सकती है। सामग्री एकत्र करने के लिये भाषाविज्ञानी आवश्यकतानुसार सूचक चुनता है और टेपरिकार्डर पर या विशिष्ट स्वनात्मक लिपि में नोटबुक पर सामग्री एकत्र करता है। इस सामग्री के संकलन और संपादन के बाद वह उन्हें अलग-अलग मानचित्रों पर अंकित करता है। इस प्रकार तुलनात्मक आधार पर वह समभाषां रेखाओं द्वारा क्षेत्रीय अंतर स्पष्ट कर भाषागत या बोलीगत भौगोलिक सीमाएँ स्पष्ट कर देता है। इस प्रकार बोलियों का निर्धारण हो जाने पर प्रत्येक का वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक सर्वेक्षण किया जाता है। उनके व्याकरण तथा कोश बनाए जाते हैं। बोलियों के इसी सर्वांगीण वर्णनात्मक तुलनात्मक या ऐतिहासिक अध्ययन को भाषिका (बोली) विज्ञान कहते हैं।

भाषा भूगोल का अध्ययन 19 वीं शताब्दी में शुरू हुआ। इस क्षेत्र में प्रथम उल्लेखनीय नाम श्लेमर का है, जिन्होंने बवेरियन बोली का अध्ययन प्रस्तुत किया। 19वीं शताब्दी के अंत में पश्चिमी यूरोप में भाषा भूगोल का कार्य व्यापक रूप से हुआ। इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं जर्मनी और फ्रांस।

जर्मनी में जार्ज बैंकर आका हरौर रीड का कार्य तथा फ्रांस में गिलेरी और एडमंट का कार्य महत्वपूर्ण है। लगभग इसी समय 'इंग्लिश डायलेक्ट सोसायटी' ने भी कार्य शुरू किया जिसके प्रणेता स्वीट थे। सन् 1889 से अमेरिका में बोली कोश या भाषा एटलस के लिये सामग्री एकत्र करने के लिये अमेरिकन डायलेक्ट सोसायटी की स्थापना हूई। व्यवस्थित कार्य मिशिगन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. हंस कुरेथ के नेतृत्व में सन 1928 में शुरू हुआ। अमेरिका के ब्राउन विश्वविद्यालय और अमेरिकन कौंसिल ऑव लर्नेड सोसायटीज ने उनके 'लिंग्विस्टिक एटलस ऑव न्यू इंग्लैंड' को छह जिलें में प्रकाशित किया है (1936-43)। उन्हीं के निदेशन में एटलस ऑव दि यूनाइटेड स्टेट्स ऐंड कैनाडा जैसा बृहत् कार्य संपन्न हुआ।

मानव विज्ञानाश्रित भाषाविज्ञान

जब से मानव वैज्ञानिक अध्ययन में भाषाविज्ञान और भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण में मानवविज्ञान की सहायता ली जाने लगी है, मानवविज्ञानश्रित भाषाविज्ञान को एक विशिष्ट कोटि का अध्ययन माना जाने लगा है। इसमें ऐसी भाषाओं का अध्ययन किया जाता है जिनका अपना कोई लिखित रूप न हो और न उनपर पहले विद्वानों ने कार्य ही किया हो अर्थात् ज्ञात संस्कृति से अछूत आदिम जातियों की भाषाओं का वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन इस कोटि के अंतर्गत आता है। इसका एक रूप मानव जाति भाषा विज्ञान कहलाता है। अलबर्ट गलेशन (Albert Gallation 1761-1840) ने भाषा आधार पर अमरीकी वर्गों का विभाजन किया। जे. डब्ल्यू पावेल (1843-1902) और डी. जी. ब्रिंटन (1837-1890) ने अमरीकी इंडियनों की भाषा का अध्ययन किया। हबोल्ट (1767-1835) के अध्ययन के बाद 19वीं शताब्दी के मध्य में मानव जाति-विज्ञान और भाषाविज्ञान में घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ और तदनंतर इस क्षेत्र में अधिकाधिक कार्य होने लगा। सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य सपीर का है, जो (1916) के नाम से सामने आया। वूर्फ होपी ने बौली पर कार्य किया है। ब्लूफील्ड ने केंद्रीय एल्गोंकियन, सी. मीनॉफ ने (बांटू और ओ. डैम्पोल्फ ने मलाया पोलेनीशियम क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किया। ली का विंटो पर और हैरी का नाहोवो पर किया गया कार्य भाषा और संस्कृति के पारस्परिक संबंध पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इस प्रकार अमेरिकी स्कूल के भाषावैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में बड़ा कार्य किया है। अमेरिका से ही

(Athropological Linguistics) नामक पत्रिका निकलती है जिसमें इस क्षेत्र में होने वाला अनुसंधानकार्य प्रकाशित होता रहता है।

भाषाविज्ञान का प्रयोगात्मक पक्ष

विज्ञान की अन्य शाखाओं के समान भाषाविज्ञान के भी प्रयोगात्मक पक्ष हैं, जिनके लिये प्रयोग की प्रणालियों और प्रयोगशाला की अपेक्षा होती है। भिन्न भिन्न यांत्रिक प्रयोगों के द्वारा उच्चारणात्मक स्वनविज्ञान, भौतिक स्वनविज्ञान और श्रवणात्मक स्वनविज्ञान का अध्ययन किया जाता है। इसे प्रायोगिक स्वनविज्ञान, यांत्रिक स्वनविज्ञान या प्रयोगशाला स्वनविज्ञान भी कहते हैं। इसमें दर्पण जैसे सामान्य उपकरण से लेकर जटिलतम विद्युत उपकरणों का प्रयोग हो रहा है। परिणामस्वरूप भाषाविज्ञान के क्षेत्र में गणितज्ञों, भौतिक शास्त्रियों और इंजीनियरों का पूर्ण सहयोग अपेक्षित हो गया है। कृत्रिम तालु और कृत्रिम तालु प्रोजेक्टर की सहायता से व्यक्ति-विशेष के द्वारा उच्चारित स्वनों के उच्चारण स्थान की परीक्षा की जाती है। कायमोग्राफ स्वानों का घोषणत्व और प्राणत्व निर्धारण करने अनुनासिकता और कालमात्र जानने के लिये उपयोगी है। लैरिंगो स्कोप से स्वरयंत्र (काकल) की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। एंडोस्कोप लैरिंगोस्कोप का ही सुधरा रूप है। ऑसिलोग्राफ की तरंगें स्वनों के भौतिक स्वरूप को पर्दे पर या फिल्म पर अत्यंत स्पष्टता से अंकित कर देती है। यही काम स्पेक्टोग्राफ या सोनोग्राफ द्वारा अधिक सफलता से किया जाता है। स्पेक्टोग्राफ जो चित्र प्रस्तुत करता है उन्हें पैटर्न प्लेबैक द्वारा फिर से सुना जा सकता है। स्पीचस्ट्रेचर की सहायता से रिकार्ड की हुई सामग्री को धीमी गति से सुना जा सकता है। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-बड़े यंत्र हैं, जिनसे भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में पर्याप्त सहायता ली जा रही है।

फ्रांसीसी भाषा वैज्ञानिकों में रूइयो ने स्वनविज्ञान के प्रयोगों के विषय में ग्रंथ लिखा था। लंदन में प्रो. फर्थ ने विशेष तालुयंत्र का विकास किया। स्वरों के मापन के लिये जैसे स्वरत्रिकोण या चतुष्कोण की रेखाएँ निर्धारित की गई हैं, वैसे ही इन्होंने व्यंजनों के मापन के लिये आधार रेखाओं का निरूपण किया, जिनके द्वारा उच्चारण स्थानों का ठीक-ठीक वर्णन किया जा सकता है। डेनियल जांस और इडा वार्ड ने भी अंग्रेजी स्वनविज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। फ्रांसीसी, जर्मन और रूसी भाषाओं के स्वनविज्ञान पर काम करने वालों में क्रमशः आर्मस्ट्राँग, बिथेल और बोयानस मुख्य हैं। सैद्धांतिक और प्रायोगिक

स्वनविज्ञान पर समान रूप से काम करने वाले व्यक्तियों में निम्नलिखित मुख्य हैं– स्टेटसन (मोटर फोनेटिक्स 1928), नेगस (द मैकेनिज्म ऑव दि लेरिंग्स,1919) पॉटर, ग्रीन और कॉप (विजिबुल स्पीच), मार्टिन जूस (अकूस्टिक फोनेटिक्स, 1948), हेफनर (जनरल फोनेटिक्स 1948), मौल (फंडामेंटल्स ऑव फोनेटिक्स, 1963) आदि।

इधर एक नया यांत्रिक प्रयास आरंभ हुआ है जिसका संबंध शब्दावली, अर्थतत्त्व तथा व्याकरणिक रूपों से है। यांत्रिक अनुवाद के लिए विद्युत कम्प्यूटरों का उपयोग वैज्ञानिक युग की एक विशेष देन है। यह अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का अत्यंत रोचक और उपादेय विषय है।

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

जिस प्रकार सामान्य विज्ञान का व्यावहारिक पक्ष अनुप्रयुक्त विज्ञान है, उसी प्रकार भाषाविज्ञान का व्यावहारिक पक्ष अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान है। भाषा संबंधी मौलिक नियमों के विचार की नींव पर ही अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की इमारत खड़ी होती है। संक्षेप में, इसका संबंध व्यावहारिक क्षेत्रों में भाषाविज्ञान के अध्ययन के उपयोग से है। इंग्लैंड में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के केंद्र लंदन विश्वविद्यालय और एडिनबरा विश्वविद्यालय है। भाषाविज्ञान का सर्वाधिक उपयोग भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में किया जा रहा है। भाषा देशी हो या विदेशी, स्वयं सीखनी हो या दूसरों को सिखानी हो, सभी कार्यों के लिये भाषाविज्ञान का ज्ञान उपयोगी होता है। इस भाषा-शिक्षण के अंतर्गत वास्तविक शिक्षण पद्धति और पाठ्य पुस्तकों की रचना, दोनों ही सम्मिलित हैं। इस कार्य के लिये तुलनात्मक वर्णनात्मक-भाषाविज्ञान और शब्दावली-अध्ययन से भरपूर सहायता मिल सकती है। विदेशी छात्रों को अँग्रजी, फ्रांसीसी, रूसी आदि भाषाओं की शिक्षा देने के लिए इंग्लैड, अमरीका, फ्रांस और रूस आदि देशों में व्यापक अनुसंधान कार्य हो रहा है। आशु लिपि की व्यवस्थित पद्धति के निर्माण में शब्दावली अध्ययन की बड़ी उपादेयता है। टाइपराइटर के की-बोर्ड की क्रम-व्यवस्था में भी भाषाविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है।

वर्तमान युग

आज के युग में भाषाविज्ञान का महत्व इसलिये भी बढ़ रहा है कि उसका उपयोग भाषा-शिक्षण के अतिरिक्त स्वचालित या यांत्रिक अनुवाद के क्षेत्र में भी

बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो रहा है। एक भाषा के सूचनापरक तथा वैज्ञानिक साहित्य का दूसरी भाषा में मानव मस्तिष्क के अनुरूप ही इलेक्ट्रॉनिक कंप्यूटरों (परिकलन यंत्रों) की सहायता से अनुवाद कर देना दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक संभव होता जा रहा है इस क्षेत्र में व्यापक अनुसंधान अमरीका और रूस में हो रहा है, जो भाषा वैज्ञानिकों और विद्युत इंजीनियरों के परस्पर सहयोग का फल है। यांत्रिक अनुवाद का मूल विचार सन् 1946 में वारेन वीवर और ए. डी. बूथ के बीच स्वचालित अंक परिकलन यंत्र के विषय में परिचर्चा के समय उठा। बूथ और डौ. एच. बी. ब्रिटन ने 1947 में इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी, प्रिंस्टन में स्वचालित कंप्यूटर से कोश का अनुवाद करने के लिए, एक विस्तृत 'कोड' तैयार किया। 1948 में आर. एच. रिचनस ने कोरे शब्दानुवाद के साथ साथ ब्याकरणिक रूपों का यांत्रिक अनुवाद कर सकने की संभावना प्रकट की। अमेरिका में यांत्रिक अनुवाद पर महत्वपूर्ण कार्य जुलाई सन् 1946 में वारैन वीवर के अनुवाद नामक ज्ञापन के प्रकाशित होने पर शुरू हुआ। अनेक विश्व विद्यालयों और टेकनॉलॉजी संस्थानों ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया। 1950 में रेफलर ने Studies in Mechanical Translation नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें अनुवाद पर पूर्व संपादन और अनुवादोत्तर संपादन का प्रस्ताव रखा। फिर यांत्रिक अनुवाद पर अतरराष्ट्रीय सम्मेलन होने लगे, पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं ओर रूसी से अंग्रेजी में अनुवाद होने लगे। इस विषय पर इंग्लैड, अमरीका, जर्मनी और रूस में शोध कार्य चल रहा है।

भारतीय भाषा वैज्ञानिक

1. पाणिनि -- अष्टाध्यायी
2. कात्यायन -- वार्तिक
3. पतंजलि -- महाभाष्य
4. हेमचन्द्राचार्य -- सिद्धहेमशब्दानुशासन
5. सुनीति कुमार चटर्जी -- भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी
6. कामताप्रसाद गुरु -- हिन्दी व्याकरण
7. धीरेन्द्र वर्मा -- हिन्दी भाषा का इतिहास (1933)
8. बाबूराम सक्सेना -- सामान्य भाषा-विज्ञान (1971), अवधी का विकास (1978)
9. किशोरीदास वाजपेयी -- हिन्दी शब्दानुशासन (1957), भारतीय भाषा-विज्ञान (1959), हिन्दी निरुक्त

10. उदयनारायण तिवारी -- हिन्दी का उद्‌गम और विकास (1955), भारत भाषा का सर्वेक्षण
11. भोलानाथ तिवारी -- भाषा-विज्ञान (1951) तथा अनेकों अन्य ग्रन्थ

पाणिनि

पाणिनि (700 ई. पू.) संस्कृत भाषा के सबसे बड़े वैयाकरण हुए हैं। इनका जन्म तत्कालीन उत्तर पश्चिम भारत के गांधार में हुआ था। इनके व्याकरण का नाम अष्टाध्यायी है जिसमें आठ अध्याय और लगभग चार सहस्र सूत्र हैं। संस्कृत भाषा को व्याकरण सम्मत रूप देने में पाणिनि का योगदान अतुलनीय माना जाता है। अष्टाध्यायी मात्र व्याकरण ग्रंथ नहीं है। इसमें प्रकारांतर से तत्कालीन भारतीय समाज का पूरा चित्र मिलता है। उस समय के भूगोल, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा और राजनीतिक जीवन, दार्शनिक चिंतन, खान-पान, रहन-सहन आदि के प्रसंग स्थान-स्थान पर अंकित हैं।

जीवनी एवं कार्य

पाणिनि का जन्म शलातुर नामक ग्राम में हुआ था। जहाँ काबुल नदी सिंधु में मिली है उस संगम से कुछ मील दूर यह गाँव था। उसे अब लहुर कहते हैं। अपने जन्म स्थान के अनुसार पाणिनि शालातुरीय भी कहे गए हैं और अष्टाध्यायी में स्वयं उन्होंने इस नाम का उल्लेख किया है। चीनी यात्री युवान्च्वां (7वीं शती) उत्तर-पश्चिम से आते समय शालातुर गाँव में गए थे। पाणिनि के गुरु का नाम उपवर्ष पिता का नाम पाणिन और माता का नाम दाक्षी था। पाणिनि जब बड़े हुए तो उन्होंने व्याकरणशास्त्र का गहरा अध्ययन किया। पाणिनि से पहले शब्दविद्या के अनेक आचार्य हो चुके थे। उनके ग्रंथों को पढ़कर और उनके परस्पर भेदों को देखकर पाणिनि के मन में वह विचार आया कि उन्हें व्याकरणशास्त्र को व्यवस्थित करना चाहिए। पहले तो पाणिनि से पूर्व वैदिक संहिताओं, शाखाओं, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि का जो विस्तार हो चुका था उस वांग्मय से उन्होंने अपने लिये शब्दसामग्री ली जिसका उन्होंने अष्टाध्यायी में उपयोग किया है। दूसरे निरुक्त और व्याकरण की जो सामग्री पहले से थी उसका उन्होंने संग्रह और सूक्ष्म अध्ययन किया। इसका प्रमाण भी अष्टाध्यायी में है, जैसा शाकटायन, शाकल्य, भारद्वाज, गार्य, सेनक, आपिशलि, गालब और स्फोटायन आदि आचार्यों के मतों के उल्लेख से ज्ञात होता है। शाकटायन निश्चित

रूप से पाणिनि से पूर्व के वैयाकरण थे, जैसा निरुक्तकार यास्क ने लिखा है। शाकटायन का मत था कि सब संज्ञा शब्द धातुओं से बनते हैं। पाणिनि ने इस मत को स्वीकार किया किंतु इस विषय में कोई आग्रह नहीं रखा और यह भी कहा कि बहुत से शब्द ऐसे भी हैं, जो लोक की बोलचाल में आ गए हैं और उनसे धातु प्रत्यय की पकड़ नहीं की जा सकती। तीसरी सबसे महत्वपूर्ण बात पाणिनि ने यह की कि उन्होंने स्वयं लोक को अपनी आँखों से देखा और घूमकर लोगों के बहुमुखी जीवन का परिचय प्राप्त करके शब्दों को छाना। इस प्रकार से कितने ही सहस्र शब्दों को उन्होंने इकट्ठा किया। शब्दों का संकलन करके उन्होंने उनको वर्गीकृत किया और उनकी कई सूचियाँ बनाई। एक सूची 'धातु पाठ' की थी जिसे पाणिनि ने अष्टाध्यायी से अलग रखा है। उसमें 1943 धातुएँ हैं। धातु पाठ में दो प्रकार की धातुएँ हैं—जो पाणिनि से पहले साहित्य में प्रयुक्त हो चुकी थीं और दूसरी वे जो लोगों की बोलचाल में उन्हें मिली।

उनकी दूसरी सूची में वेदों के अनेक आचार्य थे। किस आचार्य के नाम से कौन सा चरण प्रसिद्ध हुआ और उसमें पढ़नेवाले छात्र किस नाम से प्रसिद्ध थे और उन छन्द या शाखाओं के क्या नाम थे, उन सब की निष्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रत्यय लगाकर पाणिनि ने दी है, जैसे एक आचार्य तित्तिरि थे। उनका चरण तैत्तरीय कहा जाता था और उस विद्यालय के छात्र एवं वहाँ की शाखा या संहिता भी तैत्तिरीय कहलाती थी। पाणिनि की तीसरी सूची 'गोत्रों' के संबंध में थी। मूल सात गोत्र वैदिक युग से ही चले आते थे। पाणिनि के काल तक आते-आते उनका बहुत विस्तार हो गया था। गोत्रों की कई सूचियाँ श्रौत सूत्रों में हैं। जैसे बोधायन श्रौत सूत्र में जिसे महाप्रवर कांड कहते हैं। किंतु पाणिनि ने वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं के परिवार या कुटुंब के नामों की एक बहुत बड़ी सूची बनाई जिसमें आर्ष गोत्र और लौकिक गोत्र दोनों थे। छोटे-मोटे पारिवारिक नाम या अल्लों को उन्होंने गोत्रवयव कहा है। एक गोत्र या परिवार में होनेवाला दादा, बूढ़े एवं चाचा (सपिंड स्थविर पिता, पुत्र, पौत्र) आदि व्यक्तियों के नाम कैसे रखे जाते थे, इसका ब्योरेवार उल्लेख पाणिनि ने किया है। बीसियों सूत्रों के साथ लगे हुए गणों में गोत्रों के अनेक नाम पाणिनि के 'गणपाठ' नामक परिशिष्ट ग्रंथ में हैं। पाणिनि की चौथी सूची भौगोलिक थी। पाणिनि का जन्मस्थान उत्तर पश्चिम में था, जिस प्रदेश को हम गांधार कहते हैं। यूनानी भूगोल लेखकों ने लिखा है कि उत्तर-पश्चिम अर्थात् गांधार और पंजाब में लगभग 500 ऐसे ग्राम थे जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या दस सहस्र के लगभग थी। पाणिनि ने उन 500

ग्रामों के वास्तविक नाम भी दे दिए हैं जिनसे उनके भूगोल संबंधी गणों की सूचियाँ बनी हैं। ग्रामों और नगरों के उन नामों की पहचान टेढ़ा प्रश्न है, किंतु यदि बहुत परिश्रम किया जाय तो यह संभव है जैसे सुनेत और सिरसा पंजाब के दो छोटे गाँव हैं जिन्हें पाणिनि ने सुनेत्र और शैरीषक कहा है। पंजाब की अनेक जातियों के नाम उन गाँवों के अनुसार थे जहाँ वह जाति निवास करती थी या जहाँ से उसके पूर्वज आए थे। इस प्रकार निवास और अभिजन (पूर्वजों का स्थान) इन दोनों से जो उपनाम बनते थे वे पुरुष नाम में जुड़ जाते थे क्योंकि ऐसे नाम भी भाषा के अंग थे।

पाणिनि ने पंजाब के मध्यभाग में खड़े होकर अपनी दृष्टि पूर्व और पश्चिम की ओर दौड़ाई। उन्हें दो पहाड़ी इलाके दिखाई पड़े। पूर्व की ओर कुल्लू काँगड़ाँ जिसे उस समय त्रिगर्त कहते थे, पश्चिमी ओर का पहाड़ी प्रदेश वह था जो गांधार की पूर्वी राजधानी तक्षशिला से पश्चिमी राजधानी पुष्कलावती तक फैला था। इसी में वह प्रदेश था जिसे अब कबायली इलाका कहते हैं और जो सिंधु नदी के उत्तर से दक्षिण तक व्याप्त था और जिसके उत्तरी छोर पर दरद (वर्तमान गिलगित) और दक्षिणी छोर पर सौबीर (वर्तमान सिंध) था। पाणिनि ने इस प्रदेश में रहनेवाले कबीलों की विस्तृत सूची बनाई और संविधानों का अध्ययन किया। इस प्रदेश को उस समय ग्रामणीय इलाका कहते थे क्योंकि इन कबीलों में, जैसा आज भी है और उस समय भी था, ग्रामणी शासन की प्रथा थी और ग्रामणी शब्द उनके नेता या शासक की पदवी थी। इन जातियों की शासनसभा को इस समय जिर्गा कहते हैं और पाणिनि के युग में उसे 'ब्रातपूग', 'संघ' या 'गण' कहते थे। वस्तुतः सब कबीलों के शासन का एक प्रकार न था किंतु वे संघ शासन के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में थे। पाणिनि ने व्रात और पूग इन संज्ञाओं से बताया है कि इनमें से बहुत से कबीले उत्सेधजीवी या लूटपाट करके जीवन बिताते थे जो आज भी वहाँ के जीवन की सच्चाई है। उस समय ये सब कबीले या जातियाँ हिंदू थीं और उनके अधिपतियों के नाम संस्कृत भाषा के थे जैसे देवदत्तक, कबीले का पूर्वपुरुष या संस्थापक कोई देवदत्त था। अब नाम बदल गए हैं, किंतु बात वही है जैसे ईसाखेल कबीले का पूर्वज ईसा नामक कोई व्यक्ति था। इन कबीलों के बहुत से नाम पाणिनि के गणपाठ में मिलते हैं, जैसे अफरीदी और मोहमद जिन्हें पाणिनि ने आप्रीत और मधुमंत कहा है। पाणिनि की भौगोलिक सूचियों में एक सूची जनपदों की है। प्राचीन काल में अपना देश जनपद भूमियों में बँठा हुआ था। मध्य एशिया की वंक्षु नदी के उपरिभाग में

स्थित कंबोज जनपद, पश्चिम में सौराष्ट्र का कच्छ जनपद, पूरब में असम प्रदेश का सूरमस जनपद (वर्तमान सूरमा घाटी) और दक्षिण में गोदावरी के किनारे अश्मक जनपद (वर्तमान पेठण) इन चार खूँटों के बीच में सारा भूभाग जनपदों में बँटा हुआ था और लोगों के राजनीतिक और सामाजिक जीवन एवं भाषाओं का जनपदीय विकास सहस्रों वर्षों से चला आता था।

पाणिनि ने सहस्रों शब्दों की व्युत्पत्ति बताई जो अष्टाध्यागी के चौथे-पाँचवें अध्यायों में है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, सैनिक, व्यापारी किसान, रँगरेज, बढ़ई, रसोइए, मोची, ग्वाले, चरवाहे, गड़रिये, बुनकर, कुम्हार आदि सैकड़ों पेशेवर लोगों से मिलजुलकर पाणिनि ने उनके विशेष पेशे के शब्दों का संग्रह किया।

पाणिनि ने यह बताया कि किस शब्द में कौन सा प्रत्यय लगता है। वर्णमाला के स्वर और व्यंजन रूप जो अक्षर है उन्हीं से प्रत्यय बनाए गए। जैसे- वर्षा से वार्षिक, यहाँ मूल शब्द वर्षा है उससे इक् प्रत्यय जुड़ गया और वार्षिक अर्थात् वर्षा संबंधी यह शब्द बन गया।

अष्टाध्यायी में तद्धितों का प्रकरण रोचक है। कहीं तो पाणिनि की सूक्ष्म छानबीन पर आश्चर्य होता है, जैसे व्यास नदी के उत्तरी किनारे की बाँगर भूमि में जो पक्के बारामासी कुएँ बनाए जाते थे उनके नामों का उच्चारण किसी दूसरे स्वर में किया जाता था और उसी के दक्खिनी किनारे पर खादर भूमि में हर साल जो कच्चे कुएँ खोद लिए जाते थे उनके नामों का स्वर कुछ भिन्न था। यह बात पाणिनि ने 'उदक् च बिपाशा' सूत्र में कही है। गायों और बैलों की तो जीवनकथा ही पाणिनि ने सूत्रों में भर दी है।

आर्थिक जीवन का अध्ययन करते हुए पाणिनि ने उन सिक्कों को भी जाँचा जो बाजारों में चलते थे। जैसे 'शतमान', 'कार्षापण', 'सुवर्ण', 'अंध', 'पाद', 'माशक' 'त्रिंशत्क' (तीस मासे या साठ रत्ती तौल का सिक्का), 'विंशतिक' (बीस मासे की तोल का सिक्का)। कुछ लोग अदला-बदली से भी माल बेचते थे। उसे 'निमान' कहा जाता था।

पाणिनि के काल में शिक्षा और वांग्मय का बहुत विस्तार था। संस्कृत भाषा का उन्होंने बहुत ही गहरा अध्ययन किया था। वैदिक और लौकिक दोनों भाषाओं से वे पूर्णतया परिचित थे। उन्हीं की सामग्री से पाणिनि ने अपने व्याकरण की रचना की पर उसमें प्रधानता लौकिक संस्कृत की ही रखी। बोलचाल की लौकिक संस्कृत को उन्होंने भाषा कहा है। उन्होंने न केवल ग्रंथरचना की बल्कि अध्यापन कार्य भी किया। पाणिनि का शिक्षा विषयक संबंध, संभव है, तक्षशिला

के विश्वविद्यालय से रहा हो। कहा जाता है, जब वे अपनी सामग्री का संग्रह कर चुके तो उन्होंने कुछ समय तक एकांतवास किया और अष्टाध्यायी की रचना की। पाणिनि का समय क्या था, इस विषय में कई मत हैं। कोई उन्हें 7 वीं शती ई. पू., कोई 5 वीं शती या चौथी शती ई. पू. का कहते हैं। पतंजलि ने लिखा है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी का संबंध किसी एक वेद से नहीं बल्कि सभी वेदों की परिषदों से था (सर्व वेद परिषद)। पाणिनि के ग्रंथों की सर्वसम्मत प्रतिष्ठा का यह भी कारण हुआ।

पाणिनि को किसी मत विशेष में पक्षपात न था। शब्द का अर्थ एक व्यक्ति है या जाति, इस विषय में उन्होंने दोनों पक्षों को माना है। गऊ शब्द एक गाय का भी वाचक है और गऊ जाति का भी। वाजप्यायन और व्याडि नामक दो आचार्यों में भिन्न मतों का आग्रह या पर पाणिनि ने सरलता से दोनों को स्वीकार कर लिया। पाणिनि से पूर्व एक प्रसिद्ध व्याकरण इंद्र का था। उसमें शब्दों का प्रातिकंठिक या प्रातिपदिक विचार किया गया था। उसी की परंपरा पाणिनि से पूर्व भारद्वाज आचार्य के व्याकरण में ली गई थी। पाणिनि ने उसपर विचार किया। बहुत सी पारिभाषिक संज्ञाएँ उन्होंने उससे ले लीं, जैसे सर्वनाम, अव्यय आदि और बहुत सी नई बनाई, जैसे टि, घु, भ आदि।

पाणिनि को मांगलिक आचार्य कहा गया है। उनके हृदय की उदार वृत्ति मंगलात्मक कर्म और फल की इच्छुक थी। इसकी साक्षी यह है कि उन्होंने अपने शब्दानुशासन का आरंभ 'वृद्ध' शब्द से किया। कुछ विद्वान् कहते हैं कि पाणिनि के ग्रंथ में न केवल आदिमंगल बल्कि मध्यमंगल और अंतमंगल भी है। उनका अंतिम सूत्र अ आ है। ह्स्वकार वर्णसमन्वय का मूल है। पाणिनि को सुहृद्भूत आचार्य अर्थात् सबके मित्र एवं प्रमाणभूत आचार्य भी कहा है।

पंतजलि का कहना है कि पाणिनि ने जो सूत्र एक बार लिखा उसे काटा नहीं। व्याकरण में उनके प्रत्येक अक्षर का प्रमाण माना जाता है। शिष्य, गुरु, लोक और वेद धातुलि शब्द और देशी शब्द जिस ओर आचार्य ने दृष्टि डाली उसे ही रस से सींच दिया। आज भी पाणिनि 'शब्दरूलोके प्रकाशते', अर्थात् उनका नाम सर्वत्र प्रकाशित है।

समय काल

इनका समय काल अनिश्चित तथा विवादित है। इतना तय है कि छठी सदी ईसा पूर्व के बाद और चौथी सदी ईसा पूर्व से पहले की अवधि में इनका

अस्तित्त्व रहा होगा। ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म पंजाब (पाकिस्तान) के शालातुला में हुआ था जो आधुनिक पेशावर (पाकिस्तान) के करीब है। इनका जीवनकाल 520-460 ईसा पूर्व माना जाता है।

पाणिनि के जीवनकाल को मापने के लिए यूनानी शब्द के उद्धरण का सहारा लिया जाता है। इसका अर्थ यूनान की स्त्री या यूनान की लिपि से लगाया जाता है। गांधार में यवनों के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी सिकंदर के आक्रमण के पहले नहीं थी। सिकंदर भारत में ईसा पूर्व 330 के आस-पास आया था। पर ऐसा हो सकता है कि पाणिनि को फारसी यौन के जरिये यवनों की जानकारी होगी और पाणिनि दारा प्रथम (शासनकाल - 521-485 ईसा पूर्व) के काल में भी हो सकते हैं। प्लूटार्क के अनुसार सिकंदर जब भारत आया था तो यहां पहले से कुछ यूनानी बस्तियां थीं।

लेखन

ऐसा माना जाता है कि पाणिनि ने लिखने के लिए किसी न किसी माध्यम का प्रयोग किया होगा क्योंकि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द अति क्लिष्ट थे तथा बिना लिखे उनका विश्लेषण संभव नहीं लगता है। कई लोग कहते हैं कि उन्होंने अपने शिष्यों की स्मरण शक्ति का प्रयोग अपनी लेखन पुस्तिका के रूप में किया था। भारत में लिपि का पुनः प्रयोग (सिन्धु घाटी सभ्यता के बाद) 6वीं सदी ईसा पूर्व में हुआ और ब्राह्मी लिपि का प्रथम प्रयोग दक्षिण भारत के तमिलनाडु में हुआ जो उत्तर पश्चिम भारत के गांधार से दूर था। गांधार में 6वीं सदी ईसा पूर्व में फारसी शासन था और ऐसा संभव है कि उन्होंने आर्माइक वर्णों का प्रयोग किया होगा।

कृतियां

पाणिनि का संस्कृत व्याकरण चार भागों में है–

1. माहेश्वर सूत्र - स्वर शास्त्र,
2. अष्टाध्यायी या सूत्रपाठ - शब्द विश्लेषण,
3. धातुपाठ - धातुमूल (क्रिया के मूल रूप),
4. गणपाठ।

पतंजलि ने पाणिनि के अष्टाध्यायी पर अपनी टिप्पणी लिखी जिसे महाभाष्य का नाम दिया (महा़भाष्य (समीक्षा, टिप्पणी, विवेचना, आलोचना))।

पाणिनि का महत्त्व

एक शताब्दी से भी पहले प्रसिद्ध जर्मन भारतविद् मैक्स मूलर (1823-1900) ने अपने साइंस ऑफ थाट में कहा–

"मैं निर्भीकतापूर्वक कह सकता हूँ कि अंग्रेजी या लैटिन या ग्रीक में ऐसी संकल्पनाएँ नगण्य हैं जिन्हें संस्कृत धातुओं से व्युत्पन्न शब्दों से अभिव्यक्त न किया जा सके। इसके विपरीत मेरा विश्वास है कि 2,50,000 शब्द सम्मिलित माने जाने वाले अंग्रेजी शब्दकोश की सम्पूर्ण सम्पदा के स्पष्टीकरण हेतु वांछित धातुओं की संख्या, उचित सीमाओं में न्यूनीकृत पाणिनीय धातुओं से भी कम है। .... अंग्रेजी में ऐसा कोई वाक्य नहीं जिसके प्रत्येक शब्द का 800 धातुओं से एवं प्रत्येक विचार का पाणिनि द्वारा प्रदत्त सामग्री के सावधानीपूर्वक वेश्लेषण के बाद अविशष्ट 121 मौलिक संकल्पनाओं से सम्बन्ध निकाला न जा सके।"

पाणिनि की सूत्र शैली

पाणिनि के सूत्रों की शैली अत्यंत संक्षिप्त है। वे सूत्रयुग में ही हुए थे। श्रौत सूत्र, धर्म सूत्र, गृहस्थसूत्र, प्रातिशाख्य सूत्र भी इसी शैली में है किंतु पाणिनि के सूत्रों में जो निखार है वह अन्यत्र नहीं है। इसीलिये पाणिनि के सूत्रों को प्रतिष्णात सूत्र कहा गया है। पाणिनि ने वर्ण या वर्णमाला को 14 प्रत्याहार सूत्रों में बाँटा और उन्हें विशेष क्रम देकर 42 प्रत्याहार सूत्र बनाए। पाणिनि की सबसे बड़ी विशेषता यही है जिससे वे थोड़े स्थान में अधिक सामग्री भर सके। यदि अष्टाध्यायी के अक्षरों को गिना जाय तो उसके 3995 सूत्र एक सहस्र श्लोक के बराबर होते हैं। पाणिनि ने संक्षिप्त ग्रंथरचना की और भी कई युक्तियाँ निकालीं जैसे अधिकार और अनुवृत्ति अर्थात् सूत्र के एक या कई शब्दों को आगे के सूत्रों में ले जाना जिससे उन्हें दोहराना न पड़े। अर्थ करने की कुछ परिभाषाएँ भी उन्होंने बनाई। एक बड़ी विचित्र युक्ति उन्होंने असिद्ध सूत्रों की निकाली। अर्थात् बाद का सूत्र अपने से पहले के सूत्र के कार्य को ओझल कर दे। पाणिनि का यह असिद्ध नियम उनकी ऐसी तंत्र युक्ति थी जो संसार के अन्य किसी ग्रंथ में नहीं पाई जाती।

वार्तिक सूची

1. ऋवर्णयोः मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्।
2. अकच्स्वरौ तु कर्तव्यौ प्रत्यंगम् मुक्तसंशयौ।
3. अपुरि इति वक्तव्यम्।

4. विभाषाप्रकरणे तीयस्य ङित्सूपसंख्यानम्।
5. अन्त्यात् पूर्वो मस्जेरनुषंगसंयोगाऽदिलोपार्थम्।
6. लपर इति वक्तव्यम्।
7. स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेशः न स्थानिवत्।
8. क्विलुगुपधात्वचंपरनिर्ह्रासकुत्वेषु उपसंख्यानम्।
9. पूर्वत्रसिद्धे न स्थानिवत्।
10. तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु।
11. वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम्।
12. उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ।
13. नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे।
14. अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्।
15. यस्मिन्विधिः तदादौ अल्ग्रहणे।
16. समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः।
17. उगिद्वर्णग्रहणवर्जम्।
18. सुसर्वार्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्य।
19. तोर्वृद्धिमद्विधाववयवानाम्।
20. पदांगाधिकारे तस्य च तदुत्तरस्य।
21. तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते।
22. अनिनस्मिन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति।
23. प्रत्ययग्रहणे चापंचम्याः।

पाणिनि और आधुनिक भाषाशास्त्र

पाणिनि का कार्य 19वीं सदी में यूरोप में जाना जाने लगा, जिससे इसका आधुनिक भाषाशास्त्र पर खूब प्रभाव पड़ा। आरंभ में फ्रेन्ज बोप् ने पाणिनि का अध्ययन किया। बाद में बहुत सी रचनाओं से योरपीय संस्कृत के विद्वान् जैसे फर्नांडीस डी. सॉसर, लियोनार्ड ब्लूमफील्ड और रोमन जैकब्सन् आदि प्रभावित हुए। फ्रिट्स् स्टाल ने यूरोप में भाषा पर भारतीय विचारों के प्रभाव की विवेचना की।

डी. सॉस

पाणिनि और बाद के भारतीय भाषाशास्त्री भर्तृहरि का फर्नांडीस डी सॉसर के कई बुनियादी विचारों पर काफी प्रभाव पड़ा। फर्नांडीस डी सॉसर

संस्कृत के प्राध्यापक थे, जो कि आधुनिक संरचनात्मक भाषाशास्त्र के जनक कहे जाते हैं। सॉसर ने स्वयं अपने कुछ विचारों पर भारतीय व्याकरण के प्रभाव का जिक्र किया है। अपने 1881 में प्रकाशित 'डी लेम्पलोइ डु जेनिटिफ् ब्सॉल्यू एन् सैन्स्क्रिट्' (संस्कृत में जेनेटिव् निरपेक्ष का प्रयोग) में, उन्होंने पाणिनि को विशेषरूप से जिक्र करके अपनी रचना को प्रभावित करने वाला बताया है।

लियोनॉर्ड ब्लूमफील्ड

अमेरिकी संरचनावाद के संस्थापक लियोनॉर्ड ब्लूम्फील्ड ने 1927 में एक शोधपत्र लिखा जिसका शीर्षक था 'ऑन सम रूल्स ऑफ पाणिनि' (यानी, पाणिनि के कुछ नियमों पर)।

आज के औपचारिक तन्त्रों के साथ तुलना

पाणिनि का व्याकरण संसार का पहला औपचारिक तन्त्र (फॉर्म्ल सिस्टम) है। इसका विकास 19वीं सदी के गोटलॉब फ्रेज के अन्वेषणों और उसके बाद के गणित के विकासों से बहुत पहले ही हो गया था। अपने व्याकरण का स्वरूप बनाने में पाणिनि ने 'सहायक प्रतीकों' का प्रयोग किया, जिसमें नये शब्दांशों को सिन्टैक्टिक श्रेणियों का विभाजन रखने के लिए प्रयोग किया, ताकि व्याकरण की व्युत्पत्तियों को यथेष्ट नियन्त्रित किया जा सके। ठीक यही तकनीक जब एमिल पोस्ट ने दोबारा 'खोजी', तो यह कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग भाषाओं की अभिकल्पना के लिए मानदण्ड बना। आज संस्कृतविद् स्वीकार करते हैं कि पाणिनि का भाषीय औजार अनुप्रयुक्त पोस्ट-सिस्टम् के रूप में भली-भाँति वर्णित है। पर्याप्त मात्रा में प्रमाण मौजूद हैं कि इन प्राचीन लोगों को सहपाठ-संवेदी-व्याकरण (कन्टेक्स्ट-सेन्सिटिव ग्रामर) में महारत थी और कई जटिल समस्याओं को सुलझाने में व्यापक क्षमता थी।

अन्य रचनाएँ

पाणिनि को दो साहित्यिक रचनाओं के लिए भी जाना जाता है, यद्यपि वे अब प्राप्य नहीं हैं।

जाम्बवती विजय आज एक अप्राप्य रचना है जिसका उल्लेख राजशेखर नामक व्यक्ति ने जह्लण की सूक्ति मुक्तावली में किया है। इसका एक भाग

रामयुक्त की नामलिंगानुशासन की टीका में भी मिलता है। राजशेखर ने जह्लण की सूक्तिमुक्तावली में लिखा है–

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविर भूदिह।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्॥

पाताल विजय, जो आज अप्राप्य रचना है, जिसका उल्लेख नामिसाधु ने रुद्रटकृत काव्यालंकार की टीका में किया है।

अष्टाध्यायी

अष्टाध्यायी महर्षि पाणिनि द्वारा रचित संस्कृत व्याकरण का एक अत्यंत प्राचीन ग्रंथ (700 ई. पू.) है। इसमें आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं, प्रत्येक पाद में 38 से 220 तक सूत्र हैं। इस प्रकार अष्टाध्यायी में आठ अध्याय, बत्तीस पाद और सब मिलाकर लगभग 3155 सूत्र हैं। अष्टाध्यायी पर महामुनि कात्यायन का विस्तृत वार्तिक ग्रन्थ है और सूत्र तथा वार्तिकों पर भगवान पतंजलि का विशद विवरणात्मक ग्रन्थ महाभाष्य है। संक्षेप में सूत्र, वार्तिक एवं महाभाष्य तीनों सम्मिलित रूप में 'पाणिनीय व्याकरण' कहलाता है और सूत्रकार पाणिनी, वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतंजलि – तीनों व्याकरण के 'त्रिमुनि' कहलाते हैं।

अष्टाध्यायी छह वेदांगों में मुख्य माना जाता है। अष्टाध्यायी में 3155 सूत्र और आरंभ में वर्णसमाम्नाय के 14 प्रत्याहार सूत्र हैं। अष्टाध्यायी का परिमाण एक सहस्र अनुष्टुप श्लोक के बराबर है। महाभाष्य में अष्टाध्यायी को 'सर्ववेद-परिषद्-शास्त्र' कहा गया है अर्थात् अष्टाध्यायी का संबंध किसी वेद-विशेष तक सीमित न होकर सभी वैदिक संहिताओं से था और सभी के प्रातिशरूय अभिमतों का पाणिनि ने समादर किया था। अष्टाध्यायी में अनेक पूर्वाचार्यों के मतों और सूत्रों का संनिवेश किया गया। उनमें से शाकटायन, शाकल्य, अभिशाली, गार्ग्य, गालव, भारद्वाज, कश्यप, शौनक, स्फोटायन, चाक्रवर्मण का उल्लेख पाणिनि ने किया है।

अष्टाध्यायी का समय

अष्टाध्यायी के कर्ता पाणिनि कब हुए, इस विषय में कई मत हैं। भंडारकर और गोल्डस्टकर इनका समय 7वीं शताब्दी ई.पू. मानते हैं। मैकडानेल, कीथ आदि कितने ही विद्वानों ने इन्हें चौथी शताब्दी ई.पू. माना है। भारतीय अनुश्रुति

के अनुसार पाणिनि नंदों के समकालीन थे और यह समय 5वीं शताब्दी ई.पू. होना चाहिए। पाणिनि में शतमान, विंशतिक और कार्षापण आदि जिन मुद्राओं का एक साथ उल्लेख है। उनके आधार पर एवं अन्य कई कारणों से हमें पाणिनि का काल यही समीचीन जान पड़ता है।

संरचना

अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। पहले दूसरे अध्यायों में संज्ञा और परिभाषा संबंधी सूत्र हैं एवं वाक्य में आए हुए क्रिया और संज्ञा शब्दों के पारस्परिक संबंध के नियामक प्रकरण भी हैं, जैसे क्रिया के लिए आत्मनेपद-परस्मैपद-प्रकरण, एवं संज्ञाओं के लिए विभक्ति, समास आदि। तीसरे, चौथे और पाँचवें अध्यायों में सब प्रकार के प्रत्ययों का विधान है। तीसरे अध्याय में धातुओं में प्रत्यय लगाकर कृदंत शब्दों का निर्वचन है और चौथे तथा पाँचवें अध्यायों में संज्ञा शब्दों में प्रत्यय जोड़कर बने नए संज्ञा शब्दों का विस्तृत निर्वचन बताया गया है। ये प्रत्यय जिन अर्थविषयों को प्रकट करते हैं, उन्हें व्याकरण की परिभाषा में वृत्ति कहते हैं, जैसे वर्षा में होनेवाले इंद्रधनु को वार्षिक इंद्रधनु कहेंगे। वर्षा में होने वाले इस विशेष अर्थ को प्रकट करनेवाला 'इक' प्रत्यय तद्धित प्रत्यय है। तद्धित प्रकरण में 1,190 सूत्र हैं और कृदंत प्रकरण में 631। इस प्रकार कृदंत, तद्धित प्रत्ययों के विधान के लिए अष्टाध्यायी के 1,821 अर्थात् आधे से कुछ ही कम सूत्र विनियुक्त हुए हैं। छठे, सातवें और आठवें अध्यायों में उन परिवर्तनों का उल्लेख है, जो शब्द के अक्षरों में होते हैं। ये परिवर्तन या तो मूल शब्द में जुड़नेवाले प्रत्ययों के कारण या संधि के कारण होते हैं। द्वित्व, संप्रसारण, संधि, स्वर, आगम, लोप, दीर्घ आदि के विधायक सूत्र छठे अध्याय में आए हैं। छठे अध्याय के चौथे पाद से सातवें अध्याय के अंत तक अंगाधिकार नामक एक विशिष्ट प्रकरण है जिसमें उन परिवर्तनों का वर्णन है, जो प्रत्यय के कारण मूल शब्दों में या मूल शब्द के कारण प्रत्यय में होते हैं। ये परिवर्तन भी दीर्घ, ह्रस्व, लोप, आगम, आदेश, गुण, वृद्धि आदि के विधान के रूप में ही देखे जाते हैं। अष्टम अध्याय में, वाक्यगत शब्दों के द्वित्वविधान, प्लुतविधान एवं षत्व और णत्वविधान का विशेषतः उपदेश है।

अष्टाध्यायी के अतिरिक्त उसी से संबंधित गणपाठ और धातुपाठ नामक दो प्रकरण भी निश्चित रूप से पाणिनि निर्मित थे। उनकी परंपरा आज तक अक्षुण्ण चली आती है, यद्यपि गणपाठ में कुछ नए शब्द भी पुरानी सूचियों में

कालान्तर में जोड़ दिए गए हैं। वर्तमान उणादि सूत्रों के पाणिनिकृत होने में संदेह है और उन्हें अष्टाध्यायी के गणपाठ के समान अभिन्न अंग नहीं माना जा सकता। वर्तमान उणादि सूत्र शाकटायन-व्याकरण के ज्ञात हाते हैं।

परिचय

पाणिनि ने संस्कृत भाषा के तत्कालीन स्वरूप को परिष्कृत एवं नियमित करने के उद्देश्य से भाषा के विभिन्न अवयवों एवं घटकों यथा ध्वनि-विभाग (अक्षरसमाम्नाय), नाम (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण), पद, क्रिया, वाक्य, लिंग इत्यादि तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों का समावेश अष्टाध्यायी के 32 पादों में, जो आठ अध्यायों में समान रूप से विभक्त है, किया है।

व्याकरण के इस महनीय ग्रन्थ में पाणिनि ने विभक्ति-प्रधान संस्कृत भाषा के विशाल कलेवर का समग्र एवं सम्पूर्ण विवेचन लगभग 4000 सूत्रों में किया है, जो आठ अध्यायों में संख्या की दृष्टि से असमान रूप से विभाजित है। तत्कालीन समाज में लेखन सामग्री की दुष्प्राप्यता को ध्यान में रखकर पाणिनि ने व्याकरण को स्मृतिगम्य बनाने के लिए सूत्र शैली की सहायता ली है। पुनः, विवेचन को अतिशय संक्षिप्त बनाने हेतु पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों से प्राप्त उपकरणों के साथ-साथ स्वयं भी अनेक उपकरणों का प्रयोग किया है जिनमे शिवसूत्र या माहेश्वर सूत्र सबसे महत्वपूर्ण हैं। प्रसिद्ध है कि महर्षि पाणिनि ने इन सूत्रों को देवाधिदेव शिव से प्राप्त किया था।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्।
उद्धर्तुकामो सनकादिसिद्धादिनेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

पाणिनि ने संस्कृत भाषा के सभी शब्दों के निर्वचन के लिए करीब 4000 सूत्रों की रचना की जो अष्टाध्यायी के आठ अध्यायों में वैज्ञानिक ढंग से संगृहीत हैं। ये सूत्र वास्तव में गणित के सूत्रों की भाँति हैं। जिस तरह से जटिल एवं विस्तृत गणितीय धारणाओं अथवा सिद्धान्तों को सूत्रों द्वारा सरलता से व्यक्त किया जाता है, उसी तरह पाणिनि ने सूत्रों द्वारा अत्यन्त संक्षेप में ही व्याकरण के जटिल नियमों को स्पष्ट कर दिया है। भाषा के समस्त पहलुओं के विवेचन हेतु ही उन्हें 4000 सूत्रों की रचना करनी पड़ी।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में प्रकरणों तथा तद्सम्बन्धित सूत्रों का विभाजन वैज्ञानिक रीति से किया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी को दो भागों में बाँटा है– प्रथम अध्याय से लेकर आठवें अध्याय के प्रथम पाद तक को सपादसप्ताध्यायी

एवं शेष तीन पादों को त्रिपादी कहा जाता है। पाणिनि ने पूर्वत्रऽसिद्धम् (8-2-1) सूत्र बनाकर निर्देश दिया है कि सपादसप्ताध्यायी में विवेचित नियमों (सूत्रों) की तुलना में त्रिपादी में वर्णित नियम असिद्ध हैं अर्थात्, यदि दोनो भागों में वर्णित नियमों के मध्य यदि कभी विरोध हो जाए तो पूर्व भाग का नियम ही मान्य होगा। इसी तरह, सपादसप्ताध्यायी के अन्तर्गत आने वाले सूत्रों (नियमों) में भी विरोध दृष्टिगोचर होने पर क्रमानुसार परवर्ती (बाद में आने वाले) सूत्र का प्राधान्य रहेगा–विप्रतिषेधे परं कार्यम्। इन सिद्धान्तों को स्थापित करने के बाद, पाणिनि ने सर्वप्रथम संज्ञा पदों को परिभाषित किया है और बाद में उन संज्ञा पदों पर आधारित विषय का विवेचन।

संक्षिप्तता बनाए रखने के लिए पाणिनि ने अनेक उपाय किए हैं। इसमें सबसे महत्वपूर्ण है–विशिष्ट संज्ञाओं का निर्माण। व्याकरण के नियमों को बताने में भाषा के जिन शब्दों/अक्षरों समूहों की बारम्बार आवश्यकता पड़ती थी, उन्हें पाणिनि ने एकत्र कर विभिन्न विशिष्ट नाम दे दिया जो संज्ञाओं के रूप में अष्टाध्यायी में आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रसंगों में प्रयुक्त किए गए हैं। नियमों को बताने के पहले ही पाणिनि वैसी संज्ञाओं को परिभाषित कर देते हैं, यथा–माहेश्वर सूत्र–'प्रत्याहार, इत, टि, नदी, घु, पद, धातु, प्रत्यय, अंग, निष्ठा इत्यादि। इनमें से कुछ को पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणों से उधार लिया है। लेकिन अधिकांश स्वयं उनके द्वारा बनाए गए हैं। इन संज्ञाओं का विवरण आगे दिया गया है।

व्याकरण के कुछ अवयवों यथा धातु, प्रत्यय, उपसर्ग के विवेचन में, पाणिनि को अनेक नियमों (सूत्र) की आवश्यकता पड़ी। ऐसे नियमों के निर्माण के पहले, प्रारंभ में ही पाणिनि उन सम्बन्धित अवयवों का उल्लेख कर बता देते हैं कि आगे एक निश्चित सूत्र तक इन अवयवों का अधिकार रहेगा। इन अवयवों को वे पूर्व में ही संज्ञा रूप में परिभाषित कर चुके हैं। दूसरे शब्दों में पाणिनि प्रकरण विशेष का निर्वचन उस प्रकरण की मूलभूत संज्ञा–यथा धातु, प्रत्यय इत्यादि–के अधिकार (ब्वअमतंहम) में करते हैं जिससे उन्हें प्रत्येक सूत्र में सम्बन्धित संज्ञा को बार-बार दुहराना नहीं पड़ता है। संक्षिप्तता लाने में यह उपकरण बहुत सहायक है।

अनुवृत्ति–सूत्र-शैली में लिखे गए ग्रन्थों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, 'अनुवृत्ति'। प्रायः एक उपविषय से सम्बन्धित सभी सूत्रों को एकत्र लिखा जाता है। दोहराव न हो, इसके लिए सभी सर्वनिष्ट (कॉमन) शब्दों को सावधानीपूर्वक

निकाल लिया जाता था और उनको सही जगह पर सही क्रम में रखा जाता था। अनुवृत्ति के अनुसार, किसी सूत्र में कही गयी बात आगे आने वाले एक या अधिक सूत्रों पर भी लागू हो सकती है। एक उदाहरण देखिए। अष्टाध्यायी का सूत्र (1-1-9) ' तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ' है। इसके बाद सूत्र (1-1-10) 'नाञ्झलौ (= न अच्-हलौ)' है। जब हम (1-1-10) नाञ्झलौ (न अच्-हलौ) का अर्थ निकालते हैं तो यह ध्यान में रखना होगा कि इसका अकेले मतलब न निकाला जाय बल्कि इसका पूरा मतलब यह है कि 'इसके पूर्व सूत्र में कही गयी 'सवर्ण' से सम्बन्धित बात अच्-हलौ (अच् और हल्) पर लागू नहीं (न) होती है।' अर्थात, सूत्र (1-1-10) को केवल 'नाञ्झलौ' न पढ़ा जाय बल्कि 'अच्-हलौ सवर्णौ न' पढ़ा जाय।

शब्दों/पदों के निर्वचन के लिए, प्रकृति के आधार पर पाणिनि ने छः प्रकार के सूत्रों की रचना की है–

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधम् सूत्रं मतम्।।

(1) संज्ञा सूत्र

नामकरणं संज्ञा - तकनीकी शब्दों का नामकरण।

(2) परिभाषा सूत्र

अनियमे नियमकारिणी परिभाषा।

(3) विधि सूत्र

विषय का विधान।

(4) नियम सूत्र

बहुत्र प्राप्तो संकोचनं हेतु।

(5) अतिदेश सूत्र

जो अपने गुणधर्म को दूसरे सूत्रों पर लागू करते हैं।

(6) अधिकार सूत्र

एकत्र उपात्तस्य अन्यत्र व्यापारः अधिकारः।

पाणिनीय व्याकरण के चार भाग

(क) अष्टाध्यायी - इसमें व्याकरण के लगभग 4000 सूत्र हैं।

(ख) शिवसूत्र या माहेश्वर सूत्र - यह प्रत्याहार बनाने में सहायक होता है। प्रत्याहार के प्रयोग से व्याकरण के नियम संक्षिप्त रूप में पूरी स्पष्टता से कहे गये हैं।

(ग) धातुपाठ - इस भाग में लगभग 2000 धातुओं (क्रियाओं) की सूची दी गयी हैं। इन धातुओं को विभिन्न वर्गों में रखा गया है।

(घ) गणपाठ - यह 261 शब्दों का संग्रह है।

पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन के लिये आवश्यक बातें

प्रत्याहार, इत्संज्ञक, अधिकार, अनुवृत्ति, अपकर्ष, सन्धिविषयक शब्द (एकादेश, पररूप, पूर्वरूप, प्रकृतिभाव आदि), कुछ ज्ञातव्य संज्ञाएँ - (अङ्ग, प्रतिपदिक, पद, भ संज्ञा, विभाषा, उपधा, टी, संयोग, संप्रसारण, गुण, वृद्धि, लोप, आदेश, आगम), शब्द-सिद्धि में सहायक कुछ अन्य उपाय।

पाणिनीय व्याकरण की प्रमुख विशेषताएँ

(1) सम्पूर्णता

पाणिनि का व्याकरण संस्कृत भाषा का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण करता है। यह उस समय की बोलचाल की मानक भाषा का तो वर्णन करता ही है, इसके साथ ही वैदिक संस्कृत और संस्कृत के क्षेत्रीय प्रयोगों का भी वर्णन करता है। यहाँ तक कि पाणिनि ने भाषा के सामाजिक-भाषिक प्रयोग पर भी प्रकाश डाला है।

(2) संक्षिप्तता

पाणिनि का व्याकरण सम्पूर्ण होने के साथ ही इतना छोटा है कि लोग इसे याद करते आये हैं।

(3) प्रयोग-सरलता

(4) सामान्य

यद्यपि पाणिनि ने अपना व्याकरण संस्कृत के लिये रचा, किन्तु इसकी युक्तियाँ और उपकरण सभी भाषाओं के व्याकरण के विश्लेषण में प्रयुक्त की जा सकती हैं।

अन्य विशेषताएँ

(क) वाक्य को भाषा की मूल इकाई मानना,

(ख) ध्वनि-उत्पादन-प्रक्रिया का वर्णन एवं ध्वनियों का वर्गीकरण,

(ग) सुबन्त एवं तिंन्त के रूप में सरल और सटीक पद-विभाग,

(घ) व्युत्पत्ति - प्रकृति और प्रत्यय के आधार पर शब्दों का विवेचन।

अष्टाध्यायी में वैदिक संस्कृत और पाणिनि की समकालीन शिष्ट भाषा में प्रयुक्त संस्कृत का सर्वांगपूर्ण विचार किया गया है। वैदिक भाषा का व्याकरण अपेक्षाकृत और भी परिपूर्ण हो सकता था। पाणिनि ने अपनी समकालीन संस्कृत भाषा का बहुत अच्छा सर्वेक्षण किया था। इनके शब्दसंग्रह में तीन प्रकार की विशेष सूचियाँ आई हैं–

1. जनपद और ग्रामों के नाम,
2. गोत्रों के नाम,
2. वैदिक शाखाओं और चरणों के नाम।

इतिहास की दृष्टि से और भी अनेक प्रकार की सांस्कृतिक सामग्री, शब्दों और संस्थाओं का सन्निवेश सूत्रों में हो गया है।

अष्टाध्यायी के बाद

अष्टाध्यायी के साथ आरंभ से ही अर्थों की व्याख्यापूरक कोई वृत्ति भी थी जिसके कारण अष्टाध्यायी का एक नाम, जैसा पतंजलि ने लिखा है, वृत्तिसूत्र भी था और भी, माथुरीवृत्ति, पुण्यवृत्ति आदि वृत्तियाँ थीं जिनकी परंपरा में वर्तमान काशिकावृत्ति है। अष्टाध्यायी की रचना के लगभग दो शताब्दी के भीतर कात्यायन ने सूत्रों की बहुमुखी समीक्षा करते हुए लगभग चार सहस्र वार्तिकों की रचना की जो सूत्रशैली में ही हैं। वार्तिकसूत्र और कुछ वृत्तिसूत्रों को लेकर पतंजलि ने महाभाष्य का निर्माण किया जो पाणिनीय सूत्रों पर अर्थ, उदाहरण और प्रक्रिया की दृष्टि से सर्वोपरि ग्रंथ है। 'अथ शब्दानुशासनम्'– यह महाभाष्य का प्रथम वाक्य है। पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि–ये तीन व्याकरणशास्त्र के प्रमुख आचार्य हैं जिन्हें 'मुनित्रय' कहा जाता है। पाणिनि के सूत्रों के आधार पर भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी की रचना की और उनके शिष्य वरदराज ने सिद्धान्त कौमुदी के आधार पर लघु सिद्धान्त कौमुदी की रचना

पाणिनीय व्याकरण की महत्ता पर विद्वानों के विचार

1. पाणिनीय व्याकरण मानवीय मष्तिष्क की सबसे बड़ी रचनाओं में से एक है। (लेनिनग्राड के प्रोफेसर टी. शेरवात्सकी)
2. पाणिनीय व्याकरण की शैली अतिशय-प्रतिभापूर्ण है और इसके नियम अत्यन्त सतर्कता से बनाये गये हैं। (कोल ब्रुक)

3. संसार के व्याकरणों में पाणिनीय व्याकरण सर्वशिरोमणि है।.. यह मानवीय मष्तिष्क का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आविष्कार है। (सर डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्डर)
4. पाणिनीय व्याकरण उस मानव-मष्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है जिसे किसी दूसरे देश ने आज तक सामने नहीं रखा। (प्रो. मोनियर विलियम्स)

पंतजलि

ये गोनर्द (संभवता गोंडा जिला) के निवासी थे, बाद में वे काशी में बस गए, इनकी माता का नाम गोणिका था ! पतंजलि योगसूत्र के रचनाकार है, जो हिन्दुओं के छः दर्शनों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त) में से एक है। भारतीय साहित्य में पतंजलि के लिखे हुए 3 मुख्य ग्रन्थ मिलते हैः योगसूत्र, अष्टाध्यायी पर भाष्य और आयुर्वेद पर ग्रन्थ। कुछ विद्वानों का मत है कि ये तीनों ग्रन्थ एक ही व्यक्ति ने लिखे, अन्य की धारणा है कि ये विभिन्न व्यक्तियों की कृतियाँ हैं। पतंजलि ने पाणिनि के अष्टाध्यायी पर अपनी टीका लिखी जिसे महाभाष्य का नाम दिया। इनका काल कोई 200 ई. पू. माना जाता है।

जीवन

पतंजलि शुंग वंश के शासनकाल में थे। डॉ. भंडारकर ने पतंजलि का समय 158 ई. पू. द बोथलिक ने पतंजलि का समय 200 ईसा पूर्व एवं कीथ ने उनका समय 140 से 150 ईसा पूर्व माना है। उन्होंने पुष्यमित्र शुंग का अश्वमेघ यज्ञ भी संपन्न कराया था। इनका जन्म गोनार्ध में हुआ था। साहित्यिक, पुरातात्विक,भौगोलिक एवं अन्य साक्ष्यों के आधार पर यह स्थान भोपाल के पास का गांव गोदरमऊ है। बाद में वे काशी में बस गए। ये व्याकरणाचार्य पाणिनी के शिष्य थे। काशीवासी आज भी श्रावण कृष्ण 5, नागपंचमी को छोटे गुरु का, बड़े गुरु का नाग लो भाई नाग लो कहकर नाग के चित्र बाँटते हैं क्योंकि पतंजलि को शेषनाग का अवतार माना जाता है।

योगदान

पतंजलि महान चिकित्सक थे और इन्हें ही 'चरक संहिता' का प्रणेता माना जाता है। 'योगसूत्र' पतंजलि का महान अवदान है। पतंजलि रसायन विद्या के

विशिष्ट आचार्य थे - अभ्रक विंदास, अनेक धातुयोग और लौहशास्त्र इनकी देन है। पतंजलि संभवत: पुष्यमित्र शुंग (195-142 ई.पू.) के शासनकाल में थे। राजा भोज ने इन्हें तन के साथ मन का भी चिकित्सक कहा है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शारीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतंजलिं प्रांजलिरानतोऽस्मि॥

(अर्थात् चित्त-शुद्धि के लिए योग (योगसूत्र), वाणी-शुद्धि के लिए व्याकरण (महाभाष्य) और शरीर-शुद्धि के लिए वैद्यकशास्त्र (चरकसंहिता) देनेवाले मुनिश्रेष्ठ पंतजलि को प्रणाम !)

ई.पू. द्वितीय शताब्दी में 'महाभाष्य' के रचयिता पतंजलि काशी-मण्डल के ही निवासी थे। मुनित्रय की परंपरा में वे अंतिम मुनि थे। पाणिनी के पश्चात् पतंजलि सर्वश्रेष्ठ स्थान के अधिकारी पुरुष हैं। उन्होंने पाणिनी व्याकरण के महाभाष्य की रचना कर उसे स्थिरता प्रदान की। वे अलौकिक प्रतिभा के धनी थे। व्याकरण के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों पर भी इनका समान रूप से अधिकार था। व्याकरण शास्त्र में उनकी बात को अंतिम प्रमाण समझा जाता है। उन्होंने अपने समय के जनजीवन का पर्याप्त निरीक्षण किया था। अत: महाभाष्य व्याकरण का ग्रंथ होने के साथ-साथ तत्कालीन समाज का विश्वकोश भी है। यह तो सभी जानते हैं कि पतंजलि शेषनाग के अवतार थे। द्रविड़ देश के सुकवि रामचन्द्र दीक्षित ने अपने 'पतंजलि चरित' नामक काव्य ग्रंथ में उनके चरित्र के संबंध में कुछ नये तथ्यों की संभावनाओं को व्यक्त किया है। उनके अनुसार आदि शंकराचार्य के दादागुरु आचार्य गौड़पाद पतंजलि के शिष्य थे किंतु तथ्यों से यह बात पुष्ट नहीं होती है।

प्राचीन विद्यारण्य स्वामी ने अपने ग्रंथ 'शंकर दिग्विजय' में आदि शंकराचार्य में गुरु गोविंद पादाचार्य को पतंजलि का रुपांतर माना है। इस प्रकार उनका संबंध अद्वैत वेदांत के साथ जुड़ गया।

काल निर्धारण

पतंजलि के समय निर्धारण के संबंध में पुष्यमित्र कण्व वंश के संस्थापक ब्राह्मण राजा के अश्वमेध यज्ञों की घटना को लिया जा सकता है। यह घटना ई.पू. द्वितीय शताब्दी की है। इसके अनुसार महाभाष्य की रचना का काल ई.पू. द्वितीय शताब्दी का मध्यकाल अथवा 150 ई.पूर्व माना जा सकता है। पतंजलि की एकमात्र रचना महाभाष्य है, जो उनकी कीर्ति को अमर बनाने के लिये

पर्याप्त है। दर्शन शास्त्र में शंकराचार्य को जो स्थान 'शारीरिक भाष्य' के कारण प्राप्त है, वही स्थान पतंजलि को महाभाष्य के कारण व्याकरण शास्त्र में प्राप्त है। पतंजलि ने इस ग्रंथ की रचना कर पाणिनी के व्याकरण की प्रामाणिकता पर अंतिम मुहर लगा दी है

हेमचन्द्राचार्य

आचार्य हेमचन्द्र (1145-1229) महान गुरु, समाज-सुधारक, धर्माचार्य, गणितज्ञ एवं अद्‌भुत प्रतिभाशाली मनीषी थे। भारतीय चिंतन, साहित्य और साधना के क्षेत्र में उनका नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साहित्य, दर्शन, योग, व्याकरण, काव्यशास्त्र, वांग्मय के सभी अंगों पर नवीन साहित्य की सृष्टि तथा नये पंथ को आलोकित किया। संस्कृत एवं प्राकृत पर उनका समान अधिकार था।

संस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों में हेमचन्द्र का नाम विशेष महत्व रखता है। वे महापण्डित थे और 'कलिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्रमर्मज्ञ थे, जैनधर्म और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे, टीकाकार थे और महान कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नाना शास्त्र पारंगत आचार्य थे वहीं दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एवं अनेक भाषा कोशकार भी थे।

समस्त गुर्जरभूमि को अहिंसामय बना दिया। आचार्य हेमचन्द्र को पाकर गुजरात अज्ञान, धार्मिक रुढ़ियों एवं अंधविश्वासों से मुक्त हो कीर्ति का कैलास एवं धर्म का महान केन्द्र बन गया। अनुकूल परिस्थिति में कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचंद्र सर्वजनहिताय एवं सर्वापदेशाय पृथ्वी पर अवतरित हुए। 12वीं शताब्दी में पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, वल्लभी, उज्जयिनी, काशी इत्यादि समृद्धिशाली नगरों की उदात्त स्वर्णिम परम्परा में गुजरात के अणहिलपुर ने भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

जीवनवृत्त

संस्कृत कवियों का जीवन चरित्र लिखना कठिन समस्या है। सौभाग्य की बात है कि आचार्य हेमचंद्र के विषय में यत्र-तत्र पर्याप्त तथ्य उपलब्ध है। प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल राजा के धर्मोपदेशक होने के कारण ऐतिहासिक लेखकों ने आचार्य हेमचन्द्र के जीवन चरित पर अपना अभिमत प्रकट किया है।

आचार्य हेमचंद्र का जन्म गुजरात में अहमदाबाद से 100 किलोमीटर दूर दक्षिण-पश्चिम स्थित धंधुका नगर में विक्रम सवंत 1145 के कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि में हुआ था। माता-पिता शिव-पार्वती उपासक मोढ वंशीय वैश्य थे। पिता का नाम चाचिंग अथवा चाच और माता का नाम पाहिणी देवी था। बालक का नाम चांगदेव रखा। माता पाहिणी और मामा नेमिनाथ दोनों ही जैन थे। आचार्य हेमचंद्र बहुत बड़े आचार्य थे। अत: उनकी माता को उच्चासन मिलता था। सम्भव है, माता ने बाद में जैन धर्म की दीक्षा ले ली हो। बालक चांगदेव जब गर्भ में था तब माता ने आश्चर्यजनक स्वप्न देखे थे। इस पर आचार्य देवचंद्र गुरु ने स्वप्न का विश्लेषण करते हुए कहा सुलक्षण सम्पन्न पुत्र होगा जो दीक्षा लेगा। जैन सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार-प्रसार करेगा।

बाल्यकाल से चांगदेव दीक्षा के लिये दृढ़ था। खम्भात में जैन संघ की अनुमति से उदयन मंत्री के सहयोग से नव वर्ष की आयु में दीक्षा संस्कार विक्रम सवंत 1154 में माघ शुक्ल चतुर्दशी शनिवार को हुआ और उनका नाम सोमचंद्र रखा गया।

अल्प आयु में शास्त्रों में तथा व्यावहारिक ज्ञान में निपुण हो गये। 21 वर्ष की अवस्था में समस्त शास्त्रो कां मंथन कर ज्ञान वृद्धि की। नागपुर (महाराष्ट्र) के पास धनज ग्राम के एक वणिक ने विक्रम सवंत 1166में सूरिपद प्रदान महोत्सव सम्पन्न किया। तब एक आश्चर्यजनक घटना घटी। चांगदेव जो अब सोमचन्द्र बन चुके थे एक मिट्टी के ढेर पर बैठे थे। आचार्य देवचन्द्रसूरी जी ने अपने ज्ञान में देखा और उदगार व्यक्त किये, 'सोम जहाँ बैठेगा वहाँ हेम ही होगा' और वह मिट्टी का ढेर सोने में बदल चुका था। उसके बाद सोमचन्द्र, हेमचन्द्र नाम से जाने लगे। शरीर सुवर्ण समान तेजस्वी एवं चंद्रमा समान सुन्दर था। आचार्य ने साहित्य और समाज सेवा करना आरम्भ किया। प्रभावकचरित अनुसार माता पाहिणी देवी ने जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की। अभयदेवसूरि के शिष्य प्रकांड गुरुश्री देवचंद्रसूरि हेमचंद्र के दीक्षागुरु, शिक्षागुरु या विद्यागुरु थे।

वृद्वावस्था में हेमचंद्रसूरी को लूता रोग लग गया। अष्टांगयोगाभ्यास द्वारा उन्होंने रोग नष्ट किया। 84 वर्ष की अवस्था में अनशनपूर्वक अन्त्याराधन क्रिया आरम्भ की। विक्रम सवंत 1229 में महापंडितों की प्रथम पंक्ति के पंडित ने दैहिक लीला समाप्त की। समाधिस्थल शंतुजय महातीर्थ पहाड़ स्थित है। प्रभावकचरित के अनुसार राजा कुमारपाल को आचार्य का वियोग असह्य रहा और छ: मास पश्चात स्वर्ग सिधार गया।

हेमचन्द्र अद्वितीय विद्वान थे। साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास में किसी दूसरे ग्रंथकार की इतनी अधिक और विविध विषयों की रचनाएं उपलब्ध नहीं है। व्याकरण शास्त्र के इतिहास में हेमचंद्र का नाम सुवर्णाक्षरों से लिखा जाता है। संस्कृत शब्दानुशासन के अन्तिम रचयिता हैं। इनके साथ उत्तर भारत में संस्कृत के उत्कृष्ट मौलिक ग्रन्थों का रचना काल समाप्त हो जाता है।

गुजराती कविता है, 'हेम प्रदीप प्रगटावी सरस्वतीनो सार्थक्य कीधुं निज नामनुं सिद्धराजेश अर्थात सिद्धराज ने सरस्वती का हेम प्रदीप जलाकर (सुवर्ण दीपक अथवा हेमचंद्र) अपना 'सिद्ध' नाम सार्थक कर दिया। हेमचंद्र का कहना था स्वतंत्र आत्मा के आश्रित ज्ञान ही प्रत्यक्ष है।

रचनाएँ

क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्वयाश्रयालंकारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्र नवम्।

तर्कः संजनितो नवो, जिनवरादीनां चरित्रं नवं बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतः दूरतः।।

इससे स्पष्ट है कि हेम ने व्याकरण, छन्द, द्वयाश्रय काव्य, अलंकार, योगशास्त्र, स्तवन काव्य, चरित कार्य प्रभृति विषय के ग्रन्थों की रचना की है।

व्याकरण ग्रन्थ

व्याकरण के क्षेत्र में सिद्धहेमशब्दानुशासन, सिद्धहेमलिंगानुशासन एवं धातुपारायण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आचार्य ने समस्त व्याकरण वांग्मय का अनुशीलन कर 'शब्दानुशासन' एवं अन्य व्याकरण ग्रंथों की रचना की। पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथो का सम्यक् अध्ययन कर सर्वांग परिपूर्ण उपयोगी एवं सरल व्याकरण की घचना कर संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं को पूर्णतया अनुशासित किया है।

इनके व्याकरण ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुए प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है-

भ्रातः संवृणु पाणिनिप्रलपितं कातन्त्रकन्था वृथा,
मा कार्षीः कटु शाकटायनवचः क्षुद्रेण चान्द्रेण किम्।
किं कण्ठाभरणादिभिर्वठरयत्यात्मानमन्यैरपि,
श्रूयन्ते यदि तावदर्थमधुरा श्रीसिद्धहेमोक्तयः।।

(पाणिनी ने संस्कृत व्याकरण में शाकटायन, शौनक, स्फोटायन, आपिशलि का उल्लेख किया। पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' में शोधन कात्यायन

और भाष्यकार पतंजलि किया। जिसका पुनरुद्धार भोजदेव के 'सरस्वती कंठाभरण' में हुआ।)

हैम व्याकरण

हेमचन्द्र ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' नामक नूतन पंचांग व्याकरण तैयार किया जो (1) मूलपाठ, (2) धातुपाठ, (3) गणपाठ, (4) उणादिप्रत्यय एवं (5) लिंगानुशासन - इन पाँचों अंगों से परिपूर्ण है। सिद्धहेमशब्दानुशासनम् राजा सिद्धराज जयसिंह की प्रेरणा से लिखा गया है। इस ग्रन्थ में आठ अध्याय और 3566 सूत्र हैं। आठवाँ अध्याय प्राकृत व्याकरण है, इसमें 1119 सूत्र हैं। आचार्य हेम ने इस व्याकरण ग्रन्थ पर छः हजार श्लोक प्रमाण लघुवृत्ति और अठारह हजार श्लोक प्रमाण बृहद्वृत्ति लिखी है। बृहद्वृत्ति सात अध्याय पर ही प्राप्त होती है, आठवें अध्याय पर नहीं है।

इस व्याकरण ग्रन्थ का श्वेतछत्र सुशोभित दो चामर के साथ चल समारोह हाथी पर निकाला गया। 300 लेखकों ने 300 प्रतियाँ 'शब्दानुशासन' की लिखकर भिन्न-भिन्न धर्माध्यक्षों को भेंट देने के अतिरिक्त देश-विदेश, ईरान, सिंहल, नेपाल भेजी गयी। 20 प्रतियाँ कश्मीर के सरस्वती भण्डार में पहुंची। ज्ञानपंचमी (कार्तिक सुदि पंचमी) के दिन परीक्षा ली जाती थी।

आचार्य हेमचन्द्र संस्कृत के अन्तिम महावैयाकरण थे। अपभ्रंश साहित्य की प्राचीन समृद्धि के सम्बध में विद्वान उन पदों के स्तोत्र की खोज में लग गये। 18000 श्लोक प्रमाण बृहदवृत्ति पर भाष्य कतिचिद दुर्गापदख्या व्याख्या लिखी गयी। इस भाष्य की हस्तलिखित प्रति बर्लिन में है।

काव्य-ग्रन्थ

आचार्य हेमचन्द्र ने अनेक विषयों पर विविध प्रकार के काव्य रचे हैं। अश्वघोष के समान हेमचंद्र सोद्देश्य काव्य रचना में विश्वास रखते थे। इनका काव्य 'काव्यमानन्दाय' न होकर 'काव्यं धर्मप्रचारय' है। अश्वघोष और कालिदास के सहज एवं सरल शैली जैसी शैली नहीं थी किन्तु उनकी कविताओं में हृदय और मस्तिष्क का अपूर्व मिश्रण था।

आचार्य हेमचन्द्र के काव्य में संस्कृत बृहत्त्रयी के पाण्डित्यपूर्ण चमत्कृत शैली है। भट्टि के अनुसार व्याकरण का विवेचन, अश्वघोष के अनुसार धर्मप्रचार

एवं कल्हण के अनुसार इतिहास है। आचार्य हेमचंद्र का पण्डित कवियों में मूर्धन्य स्थान है।

'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' एक पुराण काव्य है। संस्कृत स्त्रोत्र साहित्य में 'वीतरागस्तोत्र' का महत्वपूर्ण स्थान है। व्याकरण, इतिहास और काव्य का तीनों का वाहक द्ववाश्रय काव्य अपूर्व है। इस धर्माचार्य को साहित्य-सम्राट कहने में अत्युक्ति नहीं है।

द्वयाश्रय काव्य

'द्वयाश्रय' नाम से ही स्पष्ट है कि उसमें दो तथ्यों को सन्निबद्ध किया गया है। इसमें चालुक्य वंश के चरित के साथ व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हेमचन्द्र ने एक सर्वगुण-सम्पन्न महाकाव्य में सूत्रों का सन्दर्भ लेकर अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। इस महाकाव्य में 20 सर्ग और 2888 श्लोक हैं। सृष्टिवर्णन, ऋतुवर्णन, रसवर्णन आदि महाकाव्य के सभी गुण वर्तमान हैं।

अलंकार ग्रन्थ

काव्यानुशासन ने उन्हें उच्चकोटि के काव्यशास्त्रकारों की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया। पूर्वाचार्यो से बहुत कुछ लेकर परवर्ती विचारकों को चिन्तन के लिए विपुल सामग्री प्रदान की। काव्यानुशासन का - सूत्र, व्याख्या और सोदाहरण वृत्ति - ऐसे तीन प्रमुख भाग हैं। सूत्रों की व्याख्या करने वाली व्याख्या 'अलंकारचूड़ामणि' नाम प्रचलित है और स्पष्ट करने के लिए 'विवेक' नामक वृति लिखी गयी।

'काव्यानुशासन' 8 अध्यायों में विभाजित 208 सूत्रों में काव्यशास्त्र के सारे विषयों का प्रतिपादन किया गया है। 'अलंकारचूड़ामणि' में 807 उदाहरण प्रस्तुत है तथा 'विवेकश्में 825 उदाहरण प्रस्तुत है। 50 कवियों के तथा 81 ग्रंथो के नामोका उल्लेख है।

'काव्यानुशासन' का विवेचन-सम्पूर्ण एवं सर्वोत्कृष्ठ पाठ्य-पुस्तक

काव्यानुशासन प्राय: संग्रह ग्रंथ है। राजशेखर के 'काव्यमीमांसा', मम्मट के 'काव्य प्रकाश', आनंदवर्धन के 'ध्वन्यालोक', अभिनव गुप्त के 'लोचन' से पर्याप्त मात्रा में सामग्री ग्रहण की है।

मौलिकता के विषय में हेमचंद्र का अपना स्वतंत्र मत है। हेमचंद्र मत से कोई भी ग्रंथकार नयी चीज नहीं लिखता। यद्यपि मम्मट का 'काव्य प्रकाश' के साथ हेमचंद्र का 'काव्यानुशासन' का बहुत साम्य है। पर्याप्त स्थानों पर हेमचंद्राचार्य ने मम्मट का विरोध किया है। हेमचंद्राचार्य के अनुसार आनन्द, यश एव कान्तातुल्य उपदेश ही काव्य के प्रयोजन हो सकते हैं तथा अर्थलाभ, व्यवहार ज्ञान एवं अनिष्ट निवृत्ति हेमचंद्र के मतानुसार काव्य के प्रयोजन नहीं हैं।

काव्यानुशासन से काव्यशास्त्र के पाठकों कों समझने में सुलभता, सुगमता होती है। मम्मट का 'काव्यप्रकाश' विस्तृत है, सुव्यवस्थित है, सुगम नहीं है। अगणित टीकाएं होने पर भी मम्मट का 'काव्यप्रकाश' दुर्गम रह जाता है। 'काव्यानुशासन' में इस दुर्गमता को 'अलंकारचूड़ामणि' एवं 'विवेक' के द्वारा सुगमता में परिणत किया गया है।

'काव्यानुशासन' में स्पष्ट लिखते हैं कि वे अपना मत निर्धारण अभिनवगुप्त एवं भरत के आधार पर कर रहे हैं।

सचमुच अन्य ग्रंथो-ग्रंथकारों के उद्धरण प्रस्तुत करते हेमचन्द्र अपना स्वयं का स्वतंत्र मत, शैली, दृष्टिकोण से मौलिक है। ग्रंथ एवं ग्रंथकारों के नाम से संस्कृत-साहित्य, इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। सभी स्तर के पाठक के लिए सर्वोत्कृष्ठ पाठ्य-पुस्तक है। विशेष ज्ञानवृद्धि का अवसर दिया है। अतः आचार्य हेमचंद्र के 'काव्यानुशासन' का अध्ययन करने के पश्चात फिर दूसरा ग्रंथ पढ़ने की जरुरत नहीं रहती। सम्पूर्ण काव्य-शास्त्र पर सुव्यवस्थित तथा सुरचित प्रबन्ध है।

कोशग्रन्थ

आचार्य हेम ने संस्कृत में अनेक कोशों की रचना के साथ-साथ प्राकृत, अपभ्रंश, कोश भी (देशीनाममाला) उन्होंने सम्पादित किया। उन्होंने चार कोशों की रचना की- अभिधानचिन्तामणीमाला, अनेकार्थसंग्रह, निघण्टुशेष और देशीनाममाला।

अभिधानचिन्तामणि (या 'अभिधानचिन्तामणिनाममाला') इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश है। छह काण्डों के इस कोश का प्रथम काण्ड केवल जैन देवों और जैनमतीय या धार्मिक शब्दों से सम्बद्ध है। देव, मर्त्य, भूमि या तिर्यक, नारक और सामान्य, शेष पाँच काण्ड हैं। 'अभिधानचिन्तामणि' पर उनकी स्वविरचित 'यशोविजय' टीका है, जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर' (देवसागकरणि) और

'सारोद्धार' (वल्लभगणि) प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। इसमें नाना छन्दों में 1542 श्लोक है।

निघण्टुशेष अभिधानचिन्तामणि का पूरक कोश है जिसमें वनस्पतियों से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है। यह कोश छः काण्डों में बद्ध है।

दूसरा कोश 'अनेकार्थसंग्रह' (श्लोक संख्या 1829) है, जो छह काण्डों में है। एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से काण्डयोजन है। अन्त में परिशिष्टत काण्ड अव्ययों से सम्बद्ध है। प्रत्येक काण्ड में दो प्रकार की शब्द क्रम योजनाएँ हैं–(1) प्रथमाक्षरानुसारी और (2) अन्तिमाक्षरानुसारी।

'देशीनाममाला' प्राकृत का (और अंशतः अपभ्रंश का भी) शब्दकोश है जिसका आधार 'पाइयलच्छी' नाममाला है।

दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रन्थ

प्रमाण मीमांसा

सामान्यतः जैन और हिन्दू धर्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जैन धर्म वैदिक कर्म-काण्ड के प्रतिबन्ध एवं उसके हिंसा सम्बन्धी विधानों कों स्वीकार नहीं करता। आचार्य हेमचन्द्र के दर्शन ग्रन्थ 'प्रमाण मीमांसा' का विशिष्ट स्थान है। हेमचन्द्र के अन्तिम अपूर्ण ग्रन्थ प्रमाण मीमांसा का प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी द्वारा सम्पादन हुआ। सूत्र शैली का ग्रन्थ कणाद या अक्षपाद के समान है। दुर्भाग्य से इस समय तक 100 सूत्र ही उपलब्ध हैं। संभवतः वृद्धावस्था में इस ग्रन्थ को पूर्ण नहीं कर सके अथवा शेष भाग काल कवलित होने का कलंक शिष्यों को लगा।

हेमचन्द्र के अनुसार प्रमाण दो ही है, प्रत्यक्ष और परोक्ष। दोनों एक-दूसरे से बिलकुल अलग हैं। स्वतन्त्र आत्मा के आश्रित ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। आचार्य के ये विचार तत्त्वचिन्तन में मौलिक है। हेमचन्द्र ने तर्कशास्त्र में कथा का एक वादात्मक रूप ही स्थिर किया जिसमें छल आदि किसी भी कपट-व्यवहार का प्रयोग वर्ज्य है। हेमचन्द्र के अनुसार इंद्रियजन्म, मतिज्ञान और परमार्थिक केवलज्ञान में सत्य की मात्रा में अन्तर है, योग्यता अथवा गुण में नहीं। प्रमाण मीमांसा से सम्पूर्ण भारतीय दर्शन शास्त्र के गौरव में वृद्धि हुई।

योगशास्त्र

इसकी शैली पतंजलि के योगसूत्र के अनुसार ही है, किन्तु विषय और वर्णन क्रम में मौलिकता एवं भिन्नता है। योगशास्त्र नीति विषयक उपदेशात्मक काव्य की कोटि में आता है। योगशास्त्र जैन संप्रदाय का धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथ है। वह अध्यात्मोपनिषद् है। इसके अंतर्गत मदिरा दोष, मांस दोष, नवनीत भक्षण दोष, मधु दोष, उदुम्बर दोष, रात्रि भोजन दोष का वर्णन है। अंतिम 12 वें प्रकाश के प्रारम्भ में श्रुत समुद्र और गुरु के मुख से जो कुछ मैंने जाना है उसका वर्णन कर चुका हूँ, अब निर्मल अनुभव सिद्व तत्त्व को प्रकाशित करता हूँ। ऐसा निदेश कर के विक्षिप्त, यातायात, इन चित-भेंदो के स्वरुप का कथन करते बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरुप कहा गया है।

सदाचार ही ईश्वर प्रणिधान नियम है।
निर्मल चित ही मनुष्य का धर्म है।

संवेदन ही मोक्ष है जिसके सामने सुख कुछ नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है।

संवेदन के लिये पंतजलि योगसूत्र तथा हेमचंद्र योगशास्त्र में पर्याप्त साम्य है। योग से शरीर और मन शुद्ध होता है। योग का अर्थ है, 'चित्रवृति का निरोध'। मन को सबल बनाने के लिये शरीर सबल बनाना अत्यावश्यक है। योगसूत्र और योगशास्त्र में अत्यन्त सात्विक आहार की उपादेयता बतलाकर अभक्ष्य भक्षण का निषेध किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र सब से प्रथम 'नमो अरिहन्ताणं' से राग-द्वेषादि आन्तरिक शत्रुओं का नाश करने वाले को नमस्कार कहा है। योगसूत्र तथा योगशास्त्र पास-पास है। संसार के सभी वाद, संप्रदाय, मत, दृष्टिराग के परिणाम है। दृष्टिराग के कारण अशान्ति और दु:ख है। अत: विश्व शान्ति के लिये, दृष्टि राग उच्छेदन के लिये हेमचन्द्र का योगशास्त्र आज भी अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है।

साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र का स्थान

हेमचंद्र ने अपने योगशास्त्र से सभी को गृहस्थ जीवन में आत्म-साधना की प्रेरणा दी। पुरुषार्थ से दूर रहने वाले को पुरुषार्थ की प्रेरणा दी। इनका मूल मंत्र स्वावलंबन है। वीर और दृढ़ चित पुरुषों के लिये उनका धर्म है।

हेमचंद्राचार्य के ग्रंथों ने संस्कृत एवं धार्मिक साहित्य में भक्ति के साथ श्रवण धर्म तथा साधना युक्त आचार धर्म का प्रचार किया। समाज में से निद्रालस्य को भगाकर जागृति उत्पन्न की। सात्विक जीवन से दीर्घायु पाने के

उपाय बताये। सदाचार से आदर्श नागरिक निर्माण कर समाज को सुव्यवस्थित करने में आचार्य ने अपूर्व योगदान किया।

आचार्य हेमचंद्र ने तर्कशुद्ध, तर्कसिद्ध एवं भक्तियुक्त सरस वाणी के द्वारा ज्ञान चेतना का विकास किया और परमोच्च चोटी पर पहुंचा दिया। पुरानी जड़ता को जड़मूल से उखाड़ फेंक दिया। आत्मविश्वास का संचार किया। आचार्य के ग्रंथों के कारण जैन धर्म गुजरात में दृढ़मूल हुआ। भारत में सर्वत्र, विशेषत: मध्य प्रदेश में, जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार में उनके ग्रंथों ने अभूतपूर्व योगदान किया। इस दृष्टि से जैन धर्म के साहित्य में आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थों का स्थान अमूल्य है।

अन्य साहित्य

संस्कृत में उमास्वाति का 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र', सिद्धसेन दिवाकर का 'न्यायावतार', नेमिचंद्र का 'द्रव्यसंग्रह', मल्लिसेन की 'स्याद्धादमंजरी', प्रभाचंद्र का 'प्रमेय कमलमातंड', आदि प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथ है।

उमास्वाति से जैन देह में दर्शानात्मा ने प्रवेश किया। कुछ ज्ञान की चेतना प्रस्फुटित हुई जो आगे कुंदकुंद, सिद्धसेन, अकलंक, विद्यानंद, हरिभद्र, यशोविजय, आदि रूप में विकशीत होती गयी।

कृतियों की सूची

(1) काव्यानुशासन
(2) छन्दानुशासन
(3) सिद्धहैमशब्दानुशासन (प्राकृत और अपभ्रंश का ग्रन्थ)
(4) उणादिसूत्रवृत्ति
(5) अनेकार्थ कोश
(6) देशीनाममाला
(7) अभिधानचिन्तामणि
(8) द्वाश्रय महाकाव्य
(9) काव्यानुप्रकाश
(10) त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित
(11) परिशिष्ट-पर्वन
(12) अलंकारचूडामणि

(13) प्रमाण मीमांसा
(14) वीतरागस्तोत्र

भारतीय साहित्य को हेमचन्द्र की देन

संस्कृत सहित्य का आरम्भ सुदूर वैदिक काल से होता है। जैन साहित्य अधिकांशतः प्राकृत में था। 'चतुर्धपूर्व' और 'एकादश अंग' ग्रंथ संस्कृत में थे। ये पूर्व ग्रंथ लुप्त हो गये। जैन धर्म श्रमण प्रधान है। आचरण प्रमुख है।

गणितज्ञ के रूप में हेमचन्द्र सूरी

आचार्य हेमचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हेमचन्द्र सूरी (1089–1172) भारतीय गणितज्ञ तथा जैन विद्वान थे। इन्होंने हेमचन्द्र श्रेणी का लिखित उल्लेख किया था जिसे बाद में फिबोनाची श्रेणी के नाम से जाना गया।

हेम प्रशस्ति

सदा हृदि वहेम श्री हेमसूरेः सरस्वतीम्।
सुवत्या शब्दरत्नानि ताम्रपर्णा जितायया॥

ज्ञान के अगाध सागर कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र को पार पाना अत्यन्त दुष्कर है। जिज्ञासु को कार्य करने में थोड़ी सी प्रेरणा मिलने पर सब अपने आपको कृतार्थ समझेंगें। (सोमेश्वर भट्ट की 'कीर्ति कौमिदी' में)

हेमचंद्र अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति थे। राजा कुमारपाल के सामने किसी मत्सरी ने कहा 'जैन प्रत्यक्ष देव सूर्य को नहीं मानते', इस पर हेमचन्द्र ने उत्तर दिया। जैन साधु ही सूर्यनारायण को अपने हृदय में रखते हैं। सूर्यास्त होते ही जैन साधु अन्न जल त्याग देते हैं और ऐसा कौन करता है?

सुनीति कुमार चटर्जी

सुनीति कुमार चटर्जी भारत के जानेमाने भाषाविद् तथा साहित्यकार थे। वे एक लोकप्रिय कला-प्रेमी भी थे।

जीवनी

सुनीति कुमार चटर्जी का जन्म हावड़ा के शिवपुर गाँव में 26 अक्टूबर 1890 को हुआ। वे हरिदास चट्टोपाध्याय के पुत्र थे। वे मेधावी छात्र थे। उन्होंने

मोतीलाल सील के मुफ्त चलने वाले स्कूल से 1907 में एंट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण की और योग्यता सूची में छठे स्थान पर रहे। सन् 1911 में स्कॉटिश चर्च कॉलेज, कोलकाता से अंग्रेजी ऑनर्स से उन्होंने प्रथम श्रेणी तथा तृतीय स्थान प्राप्त किया। 1913 में अंग्रेजी में ही उन्होंने कोलकाता विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा पास की। सन् 1919 में अपनी संस्कृत योग्यता के कारण उन्होंने प्रेमचन्द रायचन्द छात्रवृत्ति तथा जुबली शोध पुरस्कार प्राप्त किया। भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर 1909 में लन्दन विश्वविद्यालय से उन्होंने ध्वनिशास्त्र में डिप्लोमा लिया साथ ही भारोपीय भाषा-विज्ञान, प्राकृत, पारसी, प्राचीन आयरिश, गौथिक और अन्य भाषाओं का अध्ययन किया। इसके बाद वे पेरिस गए और वहां के ऐतिहासिक विश्वविद्यालय सरबोन में भारतीय-आर्य, स्लाव और भारोपीय भाषा-विज्ञान, ग्रीक व लैटिन पर शोधकार्य किया। 1921 में उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय से ही डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त की। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मलय, सुमात्रा, जावा और बाली की यात्रा के समय वे उनके साथ रहे और भारतीय कला और संस्कृति पर अनेक व्याख्यान दिए।

भारत लौट कर वे 1922 से 1952 तक कोलकाता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर आसीन रहे। 1952 में सेवा निवृत्ति के बाद अवकाश प्राप्त प्रोफेसर बने और 1964 में उन्हें राष्ट्रीय प्रोफेसर की उपाधि मिली। पश्चिम बंगाल की विधान परिषद में वे 1952 से 1958 तक प्रवक्ता रहे। सन् 1961 में उन्होंने बंगीय साहित्य परिषद् में अध्यक्ष पद पर भी कार्य किया। इसके अतिरिक्त भारत सरकार के द्वारा उन्हें संस्कृत कमीशन का अध्यक्ष बनाया गया तथा 1969 से 1977 तक वे साहित्य अकादमी के अध्यक्ष पद पर कार्य करते रहे। भाषा के गंभीर अध्ययन तथा उससे सम्बन्धित प्रकाशित ग्रन्थों ने उन्हें प्रसिद्धि दिलाई। वे नागरी प्रचारणी सभा के भी पदाधिकारी रहे। उनकी बांग्ला भाषा का उद्भव तथा विकास ('ओरिजिन एंड डिवलपमेंट ऑफ द बेंगाली लेंगुएज') नामक पुस्तक विद्यार्थियों के बीच काफी प्रसिद्ध रही। वे ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, इतालवी, जर्मन, अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी तथा दर्जनों आधुनिक भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने 15 पुस्तकें बांग्ला भाषा में, 21 पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में तथा 7 पुस्तकें हिन्दी भाषा में प्रकाशित की। भाषातत्त्वज्ञ एवं मनीषी विद्वान् ने संस्कृत भाषा में अनेक लेख लिखे। वे एक अच्छे संस्कृत कवि भी थे। उन्हें सन् 1956 में निर्मित संस्कृत आयोग का अध्यक्ष बनाया गया था।

29 मई 1977 को कोलकाता में उनका देहांत हो गया।

सम्मान एवं पुरस्कार

1935–रायल एशियाटिक सोसायटी के फेलो निर्वाचित।

1948–हिन्दी भाषा में विशेष योगदान के लिए 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदत्त।

1950–लन्दन की 'सोसाइटि ऑफ आर्टस ऐण्ड साइन्स' की सदस्यता प्राप्त की।

1952-1958–पर्यन्त पश्चिम बंगाल विधान परिषद के अध्यक्ष रहे।

1956–संस्कृत आयोग के अध्यक्ष बनाए गए।

1963–भारत सरकार द्वारा पद्मविभूषण से सम्मानित

1966–भारत के 'राष्ट्रीय अध्यापक' का सम्मान

1969–साहित्य अकादमी के सभापति निर्वाचित।

किशोरीदास वाजपेयी

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी (1898-1981) हिन्दी के साहित्यकार एवं सुप्रसिद्ध व्याकरणाचार्य थे। हिन्दी की खड़ी बोली के व्याकरण की निर्मिति में पूर्ववर्ती भाषाओं के व्याकरणाचार्यो द्वारा निर्धारित नियमों और मान्यताओं का उदारतापूर्वक उपयोग करके इसके मानक स्वरूप को वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न करने का गुरुतर दायित्व पं. किशोरीदास वाजपेयी ने निभाया। इसीलिए उन्हें 'हिन्दी का पाणिनी' कहा जाता है। अपनी तेजस्विता व प्रतिभा से उन्होंने साहित्य जगत को आलोकित किया और एक महान भाषा के रूपाकार को निर्धारित किया। आचार्य किशोरीदास बाजपेयी ने हिन्दी को परिष्कृत रूप प्रदान करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इनसे पूर्व खड़ी बोली हिन्दी का प्रचलन तो हो चुका था पर उसका कोई व्यवस्थित व्याकरण नहीं था। अत: आपने अपने अथक प्रयास एवं ईमानदारी से भाषा का परिष्कार करते हुए व्याकरण का एक सुव्यवस्थित रूप निर्धारित कर भाषा का परिष्कार तो किया ही साथ ही नये मानदण्ड भी स्थापित किये। स्वाभाविक है भाषा को एक नया स्वरूप मिला। अत: हिन्दी क्षेत्र में आपको 'पाणिनि' संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा।

जीवन चरित

हिन्दी के इस महान प्रणेता का जन्म 15 दिसम्बर 1898 में कानपुर के बिठूर के पास मंधना क्षेत्र के रामनगर नामक गाँव में हुआ था। आपने प्राथमिक

शिक्षा गाँव में और फिर संस्कृत की शिक्षा वृन्दावन में ली, तत्पश्चात् बनारस से प्रथमा की परीक्षा और फिर पंजाब विश्वविद्यालय से विशारद एवं शास्त्री की परीक्षाएँ ससम्मान उत्तीर्ण कीं। इसके बाद सोलन में (हिमाचल प्रदेश) अपना अध्यापकीय जीवन प्रारम्भ किया। संस्कृत के आचार्य होते हुए भी, हिन्दी में भाषा परिष्कार की आवश्यकता देखते हुए, संस्कृत का क्षेत्र छोड़ हिन्दी का क्षेत्र स्वीकार किया। इसके लिये उन्होंने 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' (इलाहाबाद) से हिन्दी की विशारद एवं उत्तमा (साहित्य रत्न) की परीक्षाएँ दीं।

बाजपेयी जी ने न केवल संस्कृत हिन्दी के व्याकरण क्षेत्र को विभूषित किया अपितु आलोचना क्षेत्र को भी बहुत सुन्दर ढंग से संवारा। आपने साहित्य समीक्षा के शास्त्रीय सिद्धातों का प्रतिपादन कर नये मानदण्ड स्थापित किये। साहित्याचार्य शालिग्राम शास्त्री जी की साहित्य दर्पण में छपी 'विमला टीका' पर बाजपेयी जी ने माधुरी में एक समीक्षात्मक लेख माला लिख डाली। इस लेख का सभी ने स्वागत किया और वे आलोचना जगत में चमक उठे। इसके बाद 'माधुरी' में प्रकाशित 'बिहारी सतसई और उसके टीकाकार' लेख माला के प्रकाशित होते ही वे हिन्दी साहित्य के आलोचकों की श्रेणी में प्रतिष्ठित हुए।

बाजपेयी जी न केवल साहित्यिक अपितु सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में भी आजीवन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। योग्यता तो थी ही, उनकी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और स्वाभिमान उनके जीवन के अभिन्न अंग रहे। अपनी निर्भीकता के कारण वे 'अक्खड़ कबीर' और स्वाभिमान के कारण 'अभिमान मेरु' कहे जाने लगे। बड़े से बड़े प्रलोभन उनके जीवन मूल्यों और सिद्धांतों को डिगा न सके। लोक-मर्यादाओं का पूर्णरूपेण पालन करते हुए दुरभिसंधियों पर जम कर प्रहार किया। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि, 'मैं हूँ, कबीर पंथी' साहित्यकार, किसी की चाकरी मंजूर नहीं, अध्यापकी कर लूंगा, नौकरी कर लूंगा पर आत्म सम्मान की कीमत पर नहीं।

बाजपेयी जी ने स्वाधीनता संग्राम को भी अछूता नहीं छोड़ा। एक परम योद्धा बन कर जन साधारण में राष्टीय चेतना और देश-प्रेम के प्राण फूंके। आपका पहला लेख 'वैष्णव सर्वस्व' में छपा, जिससें साहित्य जगत को इनकी लेखन कला का परिचय मिला।

फिर तो इनके लेखों की झंडी ही लग गई जो 'माधुरी' और 'सुधा' में छपे। पं. सकल नारायण शर्मा का एक लेख 'माधुरी' में छपा था जिसमें हिन्दी व्याकरण संबंधी अनेक जिज्ञासाएँ भी थीं। इस चुनौती भरे लेख के प्रत्युत्तर में

बाजपेयी जी ने समाधान सहित एक महत्वपूर्ण लेख 'माधुरी' में छपवाया। इस लेख पर 'शर्मा जी' सहित किसी की भी कोई आपत्ती नहीं हुई, सर्वत्र स्वागत ही हुआ। अब भाषा परिष्कार एवं व्याकरण इनका प्रमुख क्षेत्र हो गया।

बाजपेयी जी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अपना बेजोड सिक्का जमा दिया। 'सच्चाई' और ' खरी बात' ये दो उनके मूल मंत्र थे। 'मराल' में जो समीक्षात्मक मासिक पत्रिका थी, यह कह कर कि, 'तुम बिन कौन मराल करे जग, दूध को दूध औ पानी को पानी अपने उद्देश्य का ठप्पा लगा दिया। 'मराल' के अतिरिक्त बाजपेयी जी 'वैष्णव सर्वस्व' एवं 'चाँद' के सम्पादन से भी जुड़े रहे।

बाजपेयी जी सच्चे देशभक्त थे। जलियांवाला काण्ड से वे बेहद आहत हो उठे, उनकी राष्टीय चेतना मचल उठी और तब 'अमृत में विष' नामक एक गद्य काव्य लिख डाला। 'तरंगिणी' भी राष्ट्रीय भावों की सजीव झाँकी है, जो बहुत ही प्रशंसित हुई।

अपने अद्भुत कर्मठ व्यक्तित्त्व एवं सुदृढ़ विचारों से भरपूर कृतित्त्व के कारण उन्होंने भाषा-विज्ञान, व्याकरण, साहित्य, समालोचना एवं पत्रकारिता में जिस क्षेत्र को भी छुआ अद्भुत क्रांति ला दी। भाषा को एक ठोस आधार भूमि प्रदान की। ऐसे सशक्त 'हिन्दी के पाणिनि' ने 11 अगस्त 1981 को कनखल (हरिद्वार) में अपनी जीवन की इहलीला समाप्त कर दी, किसी अगले विशेष कार्य के लिए।

प्रकाशित कृतियाँ

व्याकरण-भाषा-विज्ञान

(1) ब्रजभाषा का व्याकरण,
(2) राष्ट्रीय भाषा का प्रथम व्याकरण,
(3) हिन्दी शब्दानुशासन,
(4) हिन्दी निरुक्त,
(5) हिन्दी शब्द-निर्णय,
(6) हिन्दी शब्द-मीमांसा,
(7) भारतीय भाषा-विज्ञान,
(8) हिन्दी की वर्तनी तथा शब्द विश्लेषण,
(9) ब्रजभाषा का प्रौढ़ व्याकरण।

भाषा-साहित्य

(1) अच्छी हिन्दी
(2) अच्छी हिन्दी का नमूना
(3) लेखन कला
(4) साहित्य निर्माण
(5) साहित्य मीमांसा

साहित्यशास्त्रीय

(1) काव्य प्रवेशिका,
(2) साहित्य की उपक्रमणिका,
(3) काव्य में रहस्यवाद,
(4) रस और अलंकार,
(5) साहित्य प्रवेशिका,
(6) अलंकार मीमांसा।

साहित्यिकों के पत्र

(1) आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी,
(2) साहित्यिक जीवन के संस्मरण,
(3) सभा और सरस्वती,
(4) वैष्णव धर्म और आर्य समाज,
(5) वर्ण व्यवस्था और अछूत,
(6) स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री सुभाष चंद्र बोस,
(7) राष्ट्रपिता लोकमान्य तिलक,
(8) कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास,
(9) ब्राह्मण सावधान,
(10) मानव धर्म मीमांसा,
(11) संस्कृति का पाँचवां अध्याय,
(12) मेरे कुछ मौलिक विचार,
(13) संस्कृत शिक्षण कला और अनुवाद विषय,
(14) श्रीनिम्बार्काचार्यस्तन्मतंच (संस्कृत)।

काव्य-नाटक

(1) तरंगिणी,
(2) सुदामा,
(3) साहित्य-समग्र।

(1) आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ग्रंथावली (छह खण्डों में) - प्रथम संस्करण-2008 (संपादक- विष्णुदत्त राकेश, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित)
(2) आचार्य वाजपेयी पर केंद्रित साहित्य
(3) आचार्य किशोरीदास वाजपेयी (व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व) - प्रथम संस्करण-1996 (संपादक- डॉ. मंजु लता तिवारी, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित)

3

भाषा दर्शन का विकास

हम अनेक प्रकार की ध्वनियों को सुनते हैं। कुछ ध्वनियों का अर्थ हम नहीं समझ पाते हैं। परन्तु जो ध्वनियाँ वर्ण के रूप में हमें सुनाई देती हैं उस ध्वनि को हम समझ लेते हैं। प्रत्येक मनुष्य के वर्ण ध्वनि का अर्थ हम नहीं लगा पाते हैं, ऐसा क्यों? हमसे बातचीत करने वाला जो बोलता है, उसके भाव को हम समझ लेते हैं। वैसा ही बोल भी देते हैं। क्या हम बोलने वाले के प्रत्येक ध्वनि का सही अर्थ लगा पाते हैं? वर्णों से अर्थ का ज्ञान होता है या शब्द से? वह शब्द नित्य है या अनित्य। इस प्रकार के प्रश्न भाषा से सम्बन्धित होते हैं। इन सभी विषयों पर वैदिक काल से ही विचार होने लगा था। इसे हम भाषा दर्शन कहते हैं। यह मुख्यतः व्याकरण का विषय है, परन्तु भारत में अनेक शास्त्रों में इस विषय पर गहन विचार मिलते हैं।

भारत में प्रमुख तीन प्रकार दर्शन की धारा प्रवाहित हुई–1. वैदिक 2. आगमिक तथा 3. श्रमण।

जो दार्शनिक संप्रदाय वेद के वाक्यों को प्रमाण मानते हैं या वेद को आधार मानकर दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं उस दर्शन को वैदिक दर्शन करते हैं। वेद को प्रमाण मानने वाले दर्शनों में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदांत दर्शन है। आगम परंपरा के दार्शनिक संप्रदाय हैं। तंत्र ग्रंथों को आधार मानते हुए अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। इसमें वैष्णव, शैव तथा शाक्त दर्शन आते हैं। जो मोक्ष अथवा आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए ईश्वर की

सत्ता को स्वीकार नहीं कर अपने श्रम को ही महत्व देते हैं, उन्हें श्रमण परंपरा कहते हैं। इस परंपरा में प्रमुख रूप से बौद्ध,जैन दर्शन आते हैं। इन्हीं तीनों धाराओं में संपूर्ण भारतीय दर्शन प्रवाहित है।

दार्शनिक परंपरा में शब्द शास्त्र अथवा भाषा शास्त्र को लेकर भी काफी चिंतन किया गया है, या यूं कहें भाषा शास्त्र का अपना एक दर्शन भी है, जिसे हम भाषा दर्शने कहते हैं। इसमें ध्वनि, शब्द, शब्द का अर्थ तथा शब्द अर्थ का सम्बन्ध पर विचार किया गया है। इस भाषा के दर्शन की उत्पत्ति वेदों, उपनिषदों से होते हुए वैदिक प्रातिशाख्यों, निरुक्तों तक आती है। उसके बाद न्याय, मीमांसा, वेदांत, व्याकरण तथा शैव दर्शन में इसका पूर्ण विकास हुआ है। जिस प्रकार भारतीय दर्शन का चरम लक्ष्य मोक्ष है, उसी प्रकार शब्दवादी आचार्यों ने भी व्याकरण दर्शन की चरम उपलब्धि मोक्ष को माना है। वाक्यपदीय में भर्तृहरि इसी ओर इशारा करते हुए कहते हैं–अजिह्मा राजपद्धतिः। ज्ञान को अर्जित करने में भाषा का बहुत ही बड़ा महत्व होता है इसीलिए जिन्होंने भाषा के स्वरूप उसके अर्थ पर विस्तार पूर्वक विचार किया है। लगभग प्रत्येक भारतीय दार्शनिक संप्रदाय के आचार्य ने शब्द तत्त्व के ऊपर विचार किया है। कई दर्शन में इसे प्रमाण के रूप में भी मान्यता प्राप्त है। जहां न्याय शास्त्र इसे वस्तु मानता है वहीं मीमांसा इसे अपौरूषेय मानते हुए नित्य मानता है। बौद्ध दर्शन में इसे क्षणिक या अपोहपवाद माना है। जैन दर्शन अनेकांतवाद को मानता है। आइये इन विभिन्न दर्शनों तथा व्याकरण शास्त्र में भाषा के विषय में व्यक्त दार्शनिक विचारों पर चर्चा करते हैं।

व्याकरण शास्त्र में सर्वप्रथम महर्षि पतंजलि ने महाभाष्य में भाषा दर्शन की प्रतिष्ठा की। महाभाष्य के प्रथम पंक्ति में ही सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे कहकर शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को नित्य माना। भर्तृहरि ने उसका अनुगमन करते हुए अपने वाक्यपदीय में इसे एकत्रित ही नहीं किया, बल्कि उसकी व्याख्या भी उपस्थित की। वेदान्त के ज्ञाता भर्तृहरि पर अद्वैत सिद्धांत का प्रभाव दिखता है। उन्होंने आगम को भी महत्व दिया है। इसीलिए तांत्रिक दृष्टि से शब्द को उन्होंने विवर्तवाद की दृष्टि से देखा तथा शब्द ब्रह्म का प्रतिपादन किया। इसी ब्लॉग में मैंने भर्तृहरि और उनका स्फोट सिद्धान्त पर संक्षिप्त लेख लिखा है। इनका प्रभाव बाद के दार्शनिकों पर स्पष्ट रूप से देखा जाता है। नागेश भट्ट का भाषा दर्शन भी तांत्रिक दर्शन से प्रभावित है। कश्मीर शैव दर्शन परम शिव को ही एकमात्र सत्ता मानता है, इसीलिए संपूर्ण जगत वाक् शक्ति का विकास और अभिव्यक्ति है।

वेद के छह अंगों में से शिक्षा, निरुक्त तथा व्याकरण का सीधा संबंध भाषा चिंतन से है। वेदों में अनेक स्थलों पर वाक् तत्त्व, भाषा की उत्पत्ति, व्याकरण, वाणी के भेद आदि का वर्णन किया गया है। महाभाष्य से ज्ञात होता है कि इस समय सार्थक शब्द के प्रयोग पर ध्यान दिया जाता था। भाषा सार्थक भाषा का प्रयोग मोक्ष प्राप्ति के लिए तथा निरर्थक भाषा का प्रयोग मूर्खतापूर्ण बना जाता था।

किं पुनः शब्दस्य ज्ञाने धर्म आहोस्वित्प्रयोगे?

एवं हि श्रूयते- यर्वाणस्तर्वाणो नाम ऋषयो बभूवुः प्रत्यक्षधर्माणः परापरज्ञा विदितवेदितव्या अधिगतयाथातथ्याः। ते तत्रभवन्तो यद्वा नस्तद्वा न इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस्तर्वाण इति प्रयुंजते, याज्ञे पुनः कर्मणि नापभाषन्ते। तैः पुनरसुरैर्याज्ञे कर्मण्यपभाषितम्, ततस्ते पराभूताः।

स्वर से वर्ण से दूषित शब्द उस अर्थ को नहीं कहता, जिसे कहना चाहिए, अपितु वह दूसरे अर्थ का बोध करा देता है।

दुष्टः शब्दः स्वरतः वर्णतः वा मिथ्या प्रयुक्तः न तम् अर्थम् आह। सः वाग्वज्रः यजमानम् हिनस्ति यथा इन्द्रशत्रुः स्वरतः अपराधात्।

भाषा के सार्थक सौन्दर्य को जो नहीं जानता, वह देखकर भी नहीं देखता तथा सुनकर भी नहीं सुनता। जो भाषा के अर्थ वान् रूप को जानते या समझते हैं, उनके लिए वाणी का सभी रहस्य वैसे ही खुल जाते हैं जैसे रंगीन वस्त्रों में लिपटी ढकी सुंदरी का सौंदर्य अपने आप सौंदर्य को देखने वाले को प्राप्त हो जाता है।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उसती सुवासाः।

उत त्वः अपि खल्वेकः पश्यन्नपि न पश्यति वाचम। अपि खल्वेकः शृण्वन्नपि न शृणोत्येनाम्।

ऋग्वेद में शब्द को एक बैल के रूपक में दिखाया गया है। इसके नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ये चार सींग है।। तीन काल- भूत, भविष्यत् और वर्तमानाः तीन पैर हैं। दो सिर- नित्य और कार्यरूप शब्द दो शब्द हैं। सात विभक्तियां इसके हाथ हैं। तीन स्थानों- छाती, कण्ठ व सिर से बंधा हुआ है। (शब्द का उच्चारण इन्हीं क्रम व प्रक्रिया से होता है) शब्द की वृष्टि करने के कारण यह वृषभ है।

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश। ऋग्वेद 4.58। चत्वारि शृंगानि

चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताः च। त्रयः अस्य पादाः त्रयः कालाः भूतभविष्यद्वर्तमानाः। द्वे शीर्षे द्वौ शब्दात्मानौ नित्यः कार्यः च। सप्त हस्तासः अस्य सप्त विभक्तयः। त्रिधा बद्धः त्रिषु स्थानेषु बद्धः उरसि कण्ठे शिरसि इति। वृषभः वर्षणात्। रोरवीति शब्दम् करोति। कुतः एतत्। रौतिः शब्दकर्मा। महः देवः मर्त्यान् आविवेश इति। महान् देवः शब्दः। मर्त्याः मरणधर्माणः मनुष्याः। तान् आविवेश।

इस प्रकार का विचार ब्राह्मण ग्रंथों में आरंभ हो गया था जहां शब्दों की उत्पत्ति तथा अर्थों की व्याख्या मिलती है। शतपथ ब्राह्मण, ताण्ड्यमहा ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय संहिता में शब्दों की व्युत्पत्ति कर उसका अर्थ दिखाया गया है। यही से शब्दों की व्याख्या के रूप में भाषा का विश्लेषण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। तैत्तिरीय संहिता के एक वर्णन के अनुसार पहले वाणी विश्लेषित नहीं थी। इसके लिए देवताओं ने इंद्र से प्रार्थना की। इंद्र प्रसन्न होकर वाणी का विश्लेषण किया। तब यह वाणी अलग-अलग विभाग वाली हुई। इस युग में अनेक पारिभाषिक शब्द विकसित हुए। इन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग पाणिनि व्याकरण में हुआ है। यहां पर धातु प्रातिपदिक, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, उपसर्ग, मात्रा, वर्ण, अक्षर आदि मुख्य हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में शब्दों के निर्वचन के उदाहरण मिलते हैं।

उपनिषदों में वाणी के सामर्थ्य पर चिन्तन किया गया। जिन भावों को हम व्यक्त करते हैं, उसे व्यक्त करने में वाणी या शब्द के पास कितना सामर्थ्य होता है। वहाँ वाणी को सत्य के वर्णन में असमर्थ बताया है। शब्दों के प्रतीक रूप में प्रयोग तथा उसकी व्याख्या उपनिषद् काल में होने लगी। उपनिषद् में ओंकार का चेतना के तीन अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के प्रतीक के रूप में प्रयोग मिलता है। यजुर्वेद में वाक् को प्रजापति की शक्ति और अथवा पत्नी के रूप में माना गया है। इसी प्रकार उपनिषदों, पुराणों में भी वर्णन प्राप्त होते हैं। उपनिषदों से प्राप्त निर्देश ही आगे स्फोटवाद को जन्म दिया। भारतीय भाषा दर्शन के विकास में प्रतिशाख्य और निरुक्त का काफी योगदान रहा है। प्रतिशाख्य वैदिक काल के सिद्धांतों एवं प्रायोगिक ध्वनि विज्ञान के ग्रन्थ हैं। ये शिक्षा ग्रंथों में प्रतिपादित ध्वनि विज्ञान का विवेचन करते हैं। वेद की शाखाओं से संबंध होने के कारण इनको प्रतिशाख्य कहा जाता है। प्रति शाखा से प्रतिशाख्य शब्द बना है। विभिन्न प्रतिशाख्यों में अपनी-अपनी शाखा से संबद्ध ध्वनि, उच्चारण और व्याकरण का विस्तृत विवेचन दिया गया

है। शब्दों का मंत्रों में सही प्रयोग के लिए निरुक्त में शब्दों की उत्पत्ति तथा अर्थ का विश्लेषण किया गया है, जो आगे चलकर व्याकरण, न्याय, मीमांसा के भाषा चिंतन का आधार बना।

निरुक्त की परिभाषा में इसके 5 विषय बताए गए हैं- वर्णागम, वर्ण दृविपर्यय, वर्ण विकार, वर्ण नाश तथा धातुओं का अर्थ विस्तार। व्याकरण का प्रारंभिक रूप प्रस्तुत करने के कारण यह प्राचीन व्याकरण है। शब्दों का मंत्रों में सही प्रयोग के लिए निरुक्त में शब्दों की उत्पत्ति तथा अर्थ का विश्लेषण किया गया है, जो आगे चलकर व्याकरण न्याय मीमांसा के भाषा चिंतन का आधार बना।

पूर्व मीमांसा में वैदिक अनुष्ठानों की व्याख्या की गई है। वैदिक वाक्य धार्मिक आदेश के रूप में माने जाते थे। वेदों की प्रामाणिकता दिखाना मीमांसा दर्शन के लिए आवश्यक था, इसीलिए मीमांसा दर्शन ने वेद को अपौरुषेय घोषित किया अर्थात् वेद की रचना किसी पुरुष या ईश्वर द्वारा नहीं की गई। इस आधार पर मीमांसा के दार्शनिकों ने शब्द के नित्यत्व सिद्धांत का प्रतिपादन किया। जैमिनी ने मीमांसा में संस्कृत भाषा को ही साधु शब्द माना। अन्य भाषा में शब्दों के अर्थ बदलते रहने के कारण वह नित्य नहीं है। प्रभाकर एवं कुमारिल भट्ट के अतिरिक्त बाद के मीमांसा दार्शनिकों ने भाषा दर्शन पर स्वतंत्र ग्रंथ लिख कर अपने सिद्धांतों की पुष्टि की। इस विषय में भाट्टचिंतामणि और पार्थसारथि मिश्र की न्यायरत्नमाला उल्लेखनीय है।

न्याय दर्शन में ईश्वर की रचना और वाणी को ईश्वर की कृति माना है। यह वैदिक वाक्य को प्रमाण मानता है। न्याय दर्शन में शब्द नित्य नहीं है और इसका अर्थ इससे अर्थ का संबंध भी नित्य नहीं है। यहां शब्द उत्पन्न होने और नाशवान होने से नित्य नहीं माना जा सकता। गंगेश उपाध्याय ने अपने तत्त्वचिंतामणि को चार खण्डों में बांटकर प्रत्यक्षखण्ड, अनुमानखण्ड, उपमानखण्ड और शब्दखण्ड में बांटा। शब्दखण्ड में भाषा दर्शन की वस्तुवादी व्याख्या प्रस्तुत की, इन्होंने भाषा विश्लेषण की समस्याओं की वस्तुवादी व्याख्या लिखी है। तत्त्वचिंतामणि की टीका पक्षधर मिश्र ने की। तदनंतर उनके शिष्य रुद्रदत्त टीका तैयार लिखी। इन दोनों से भिन्न वासुदेव सार्वभौम, रघुनाथ शिरोमणि, गंगाधर, जगदीश, मथुरानाथ, गोकुलनाथ, भवानंद, शशधर, शितिकंठ, हरिदास, प्रगल्भ, विश्वनाथ, विष्णुपति, रघुदेव, प्रकाशधर, चंद्रनारायण, महेश्वर और हनुमान कृत टीकाएँ हैं। इन टीकाओं की भी असंख्य टीकाएँ लिखी गई हैं। जगदीश और

गदाधर ने न्याय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में भाषा दर्शन पर ग्रंथ शब्दशक्तिप्रकाशिका और व्युत्पत्तिवाद तथा शक्तिवाद लिखी।

भाषा दर्शन के विकास में बौद्ध दर्शन और जैन दर्शन का भी योगदान है। बौद्ध दर्शन के अनुसार सामान्य की सत्ता नहीं हो सकती, जो कुछ है वह विशेष है। शब्द अनित्य और नाशवान है।

व्याकरण के प्रणेता पाणिनि ने भाषा विश्लेषण पर महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्होंने शब्दों की उत्पत्ति तथा वाच्य वाचक का विश्लेषण अत्यंत विस्तार से किया है। पाणिनि ने शब्द के दार्शनिक तथा तत्त्वमीमांसीय सिद्धांतों का प्रतिपादन स्पष्ट रूप से नहीं किया फिर भी उनके मन में तत्त्व मीमांसा की मान्यता अवश्य थी। पतंजलि ने महाभाष्य में इसे सिद्ध किया है। पतंजलि ने पाणिनि के सूत्रों का तत्त्व मीमांसीय आधार प्रस्तुत करते हुए अनेक स्थलों पर शब्द को नित्य सिद्ध किया। इन्होंने अन्य वैयाकरणों का भी उल्लेख किया है।

500 ई. के भर्तृहरि के पहले भी अनेक वैयाकरण दार्शनिक हो चुके थे। इन्होंने भाषा दर्शन को अद्वैतवादी रूप प्रदान किया। इन्होंने न्याय, मीमांसा तथा बौद्ध मतों का खंडन करते हुए शब्द ब्रह्म सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार शब्द ही परम सत्ता ब्रह्म है। इसका ज्ञान प्राप्त करना ही जीवात्मा का परम लक्ष्य है। वाक्यपदीय के प्रथम कांड, जिसे ब्रह्म काण्ड भी कहा जाता है, शब्द ब्रह्म से संबंधित विचारों का प्रतिपादन किया गया है। दूसरे वाक्य कांड में शब्दों और वाक्यों के स्वरूप पर विशेष रूप से विवेचन मिलता है। तीसरे खंड को प्रकीर्ण खंड कहा गया है। वैयाकरण संप्रदाय में 16 वीं शताब्दी के भट्टोजिदीक्षित और नागेश भट्ट का नाम उल्लेखनीय है। इन दार्शनिकों ने भर्तृहरि के सिद्धांत को माना और अपने ग्रंथ में उनकी व्याख्या किया। 16 वीं शताब्दी के नागेश तथा 17 वीं शताब्दी के कौण्डभट्ट ने वैयाकरणसिद्धांतमंजूषा तथा वैयाकरणभूषणसार ग्रंथ में व्याकरण दर्शन के सभी सिद्धान्तों पर विचार किया है। इन ग्रन्थों के विषय की प्रतिपादन शैली नव्य न्याय पर आधारित है। वैयाकरणभूषणसार में महाभाष्य तथा व्याकरण दर्शन के उन सिद्धान्तों की व्याख्या है, जो शब्दकौस्तुभ में संग्रहीत है।

फणिभाषितभाष्याब्धेः शब्दकौस्तुभ उद्धृतः।
तत्र निर्णीत एवाऽर्थः संक्षेपेणेह कथ्यते॥ 1॥

इस ग्रन्थ का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं–

ढुण्ढिं गौतमजैमिनीयवचनव्याख्यातृभिदूषितान्।
सिद्धान्तानुपपत्तिभिः प्रकटये तेषां वचो दूषये॥ 3॥

इस ग्रन्थ पर अनेक टीकायें लिखी गयी जिसमें हरवल्लभ का दर्पण, रुद्रनाथ की विवृति, शंकर शास्त्री की शांकरी आदि मुख्य हैं। व्याकरण दर्शन की ज्ञान परम्परा का अन्वेषण करते हुए धात्वर्थ निर्णय, लकारार्थ निर्णय, सुबर्थ निर्णय, समासशक्ति निर्णय आदि विषयों पर सिद्धान्त स्थापित करने के लिए कौण्डभट्ट का योगदान अविस्मरणीय है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मैंने अपना शोध का विषय इसी ग्रन्थ को रखा था।

कश्मीर शैव दर्शन में भर्तृहरि के दर्शन से बहुत कुछ साम्य मिलता है। तंत्रलोक में अभिनवगुप्त ने कश्मीर शैव दर्शन के महान दार्शनिक भर्तृहरि के नाम का उल्लेख कई स्थानों पर किया है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा में भाषा दर्शन का विकास ईसा पूर्व से आरम्भ होकर आज तक गतिमान है। संस्कृत भाषा के दार्शनिक पक्ष का जितना गहन चिंतन तथा विवेचन यहाँ के दार्शनिकों ने किया उतना अन्य भाषाओं में अप्राप्त है। अतः संस्कृत भाषा परिनिष्ठित रूप में हमारे समक्ष विद्यमान है। आवश्यकता है तो इस भाषा को उपयोगी बनाने की ताकि इन ऋषियों के परिश्रम से नियमबद्ध किये इस भाषा को संरक्षित किया जा सके। पुनः व्यवहार में लाया जा सके।

4

भाषा-विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ

भाषा पर विचार करते समय भाषा सम्बन्धी बहुत से पहलुओं पर विचार किया जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि समस्त पहलुओं से विचार करने वाली अध्ययन शाखाओं को भाषा-विज्ञान के प्रमुख विभागों अथवा भाषा-विज्ञान की केन्द्रीय शाखाओं के रूप में विवेचित करना उपयुक्त नहीं है। भाषागत प्रश्नों पर विचार करने वाले अध्ययन विभागों की तीन कोटियाँ बनाना उपयुक्त है-

(1) भाषा-विज्ञान के प्रमुख विभाग अथवा भाषा-विज्ञान की प्रमुख अथवा केन्द्रीय शाखाएँ।

(2) अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान की शाखाएँ।

अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान भाषा-विज्ञान का अंत:विषय क्षेत्र है। इसके उदाहरण भाषा-शिक्षण, अनुवाद विज्ञान, कोशकला अथवा कोशविज्ञान हैं।

(3) भाषा-विज्ञान से सम्बद्ध अध्ययन विभाग

भाषा सम्बंधित समस्याओं का अध्ययन एवं उनका समाधान एक ओर भाषा-विज्ञान करता है वहीं दूसरी ओर मनोविज्ञान, नृविज्ञान, समाजविज्ञान एवं साहित्य शास्त्र भी भाषा सम्बंधी समस्याओं पर विचार करता है। दूसरे शब्दों में जहाँ ज्ञानानुशासन के अन्य विषयों का ज्ञान भाषा वैज्ञानिक की भाषा अध्ययन में सहायता करता है, वहीं दूसरी ओर भाषा-विज्ञान का ज्ञान शिक्षा शास्त्री, मनोवैज्ञानिक, नृवैज्ञानिक, समाजवैज्ञानिक एवं साहित्य शास्त्री अथवा साहित्यालोचक की भाषा विषयक समस्याओं के समाधान में सहायता करता है। परस्पर के

आदान-प्रदान के परिणाम स्वरूप ज्ञानानुशासन के नए विषयों का जन्म हुआ है। इन अध्ययन विभागों में प्रमुख हैं–

(1) मनोभाषा-विज्ञान,

(2) नृजाति भाषा-विज्ञान अथवा मानवजाति-भाषा-विज्ञान,

(3) समाजभाषा-विज्ञान,

(4) शैली विज्ञान।

बहुत से विद्वान इनको 'अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान' के ही अन्तर्गत परिगणित करते हैं। लेखक ने इनको 'अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान' से भिन्न कोटि के अन्तर्गत रखा है। इसका कारण निम्न है–

'अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान' में भाषा-विज्ञान का ज्ञान शिक्षाशास्त्री, कोशकार एवं अनुवादक आदि क्षेत्रों में कार्यरत विद्वानों के लिए सहायक होता है, किन्तु 'भाषा-विज्ञान से सम्बद्ध अध्ययन विभागों' में एक ओर अन्य विषय भाषा वैज्ञानिक की सहायता करते हैं वहीं भाषा वैज्ञानिक अन्य विषयों के विद्वानों की सहायता करता है। इन विषयों का प्रादुर्भाव एकाधिक विषयों के परस्पर आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप हुआ है।

सम्प्रति भाषविज्ञान के प्रमुख विभाग अथवा भाषा-विज्ञान की केन्द्रीय शाखाओं के सम्बन्ध में विचार किया जाएगा। भाषा के चार तत्त्व प्रमुख माने जाते रहे हैं–

(1) ध्वनि अथवा वर्ण विचार,

(2) शब्द समूह,

(3) व्याकरण,

(4) अर्थ।

भाषा में शब्द और अर्थ द्रव्य हैं। सामान्य व्यक्ति भाषा में शब्द और अर्थ को महत्व देता है। उसके द्वारा हम अपने भाव और विचार को व्यक्त करते हैं। भाषा-संरचना को महत्व देने वाले भाषा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि भाषा में शब्द तो आसानी से परिवर्तित हो जाते हैं मगर भाषा-संरचना अपेक्षाकृत स्थिर तत्त्व है। जैसे नदी के तट पानी की धारा के प्रवाह को मर्यादित रखते हैं, वैसे ही भाषा का व्याकरण भाषा को बाँधे रखता है। इन चार तत्त्वों में से शब्दों अथवा शब्द समूह की विवेचना कोशकार के अध्ययन सीमा में अधिक आती है, भाषा वैज्ञानिक की अभिरिचि भाषा के शब्दों की विवेचना की अपेक्षा उसके व्याकरण की विवेचना में अधिक होती है। इस दृष्टि से भाषा के दो पक्ष हैं।

(1) भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था अथवा भाषा व्यवस्था,
(2) शब्दावली।

अन्तर

भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था सम्बंध-दर्शी होती है जबकि भाषा की शब्दावली अर्थ-दर्शी होती है।

भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था आबद्ध, सीमित एवं नियंत्रित होती है, जबकि भाषा की शब्दावली मुक्त, असीमित एवं अनियंत्रित होती है। भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था के आबद्ध एवं नियंत्रित होने के कारण भाषा वैज्ञानिक किसी भाषा के व्याकरणिक नियमों का निर्धारण कर पाता है। उसके नियम परिमित होते हैं। भाषा की शब्दावली के मुक्त एवं अनियंत्रित होने के कारण किसी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की संख्या अपरिमित होती है। किसी भाषा का कोई भी कोशकार यह दावा नहीं कर सकता कि उसने ऐसा कोश बना दिया है जिसमें उस भाषा में प्रयुक्त होने वाले समस्त शब्द समाहित हैं।

भाषा की यह प्रकृति है कि उसमें परिवर्तन होता रहता है। भाषा-परिवर्तन के स्वरूप और उसके कारणों की विवेचना अन्यत्र की जाएगी। यहाँ केवल यह कहना यथेष्ट है कि भाषा के व्याकरणिक नियम अपेक्षाकृत स्थिर होते हैं। उनके बदलाव की गति बहुत धीमी होती है। ये नियम भाषा को बाँधे रहने की भूमिका का निर्वाह करते हैं। इसके विपरीत भाषा में नए शब्दों का प्रवेश होता रहता है तथा शब्दों का लोप भी होता रहता है।

परम्परागत व्याकरण में विवेच्य भाषा की ध्वनियों, व्याकरण एवं अर्थ पर ही अधिक विचार किया जाता था। बीसवीं शताब्दी से पहले तक यूरोप की अधिकांश भाषाओं के परम्परागत व्याकरण इन भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप न होकर लैटिन एवं ग्रीक व्याकरणों का अनुगमन करके लिखे जाते थे। इसी प्रकार हिन्दी के परम्परागत व्याकरण भी संस्कृत व्याकरण को आदर्श मानकर लिखे गए। वर्णनात्मक एवं संरचनात्मक भाषा-विज्ञान में ध्वनि, शब्द एवं अर्थ की अपेक्षा ध्वनिमों अथवा स्वनिमों का तथा व्याकरण के धरातल पर परम्परागत व्याकरण के मॉडल में विवेच्य भाषा के उदाहरणों को रखने के स्थान पर उस भाषा की अपनी विशिष्ट व्यवस्था और संरचना के नियमों का अध्ययन करना अभीष्ट हो गया। सूचक से प्राप्त भाषिक-सामग्री के विश्लेषण और वितरणगत स्थितियों के आधार पर व्यवस्थागत इकाइयों को जानने के लिए नई तकनीकों

का विकास हुआ। ध्वनिमिक व्यवस्था में ध्वनि विवेचन का महत्व समाप्त हो गया। उसके स्थान पर स्वनिमिक अध्ययन किया जाने लगा। किसी भाषा में दो ध्वनियों का वितरण किस प्रकार का है–यह जानना महत्वपूर्ण हो गया। स्वनिमिक व्यवस्था के अध्ययन का मतलब पूरक वितरण एवं/अथवा स्वतंत्र परिवर्तन में वितरित ध्वनियों का एक वर्ग अर्थात् स्वनिम बनाना तथा व्यतिरेकी अथवा विषम वितरण में वितरित ध्वनियों को अलग-अलग स्वनिम के रूप में रखने की पद्धति का विकास हुआ। व्याकरणिक अध्ययन का आरम्भ विवेच्य भाषा की उच्चार की लघुतम अर्थवान अथवा अर्थयुक्त इकाइयों की वितरणगत स्थितियों के आधार पर रूपप्रक्रियात्मक संरचना का अध्ययन होने लगा। सूचक से प्राप्त भाषिक सामग्री को प्रमाणिक मानकर उसके आधार पर भाषा के प्रत्येक स्तर पर विश्लेषण एवं वितरणगत तकनीकों के आधार पर भाषिक इकाइयों को प्राप्त करना तथा उसके बाद उनकीशृंखलाबद्ध संरचना के नियम बनाना लक्ष्य हो गया। हॉकिट ने भाषा की पाँच उप-व्यवस्थाओं में से तीन को केन्द्रीय के रूप में स्वीकार किया है–

(1) व्याकरणीय व्यवस्था–रूपिमों का समूह और उनकी क्रम व्यवस्था।

(2) स्वनिमिक व्यवस्था–ध्वनिग्रामों अथवा स्वनिमों का समूह और उनकी क्रम व्यवस्था।

(3) रूपस्वनिमिक व्यवस्था–व्याकरणिक एवं स्वनिमिक व्यवस्थाओं को परस्पर संबद्ध करने वाली संहिता। (संधि व्यवस्था)। इन्हें केन्द्रीय इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इनका उस भाषेतर वातावरण से, जहाँ भाषा का प्रयोग किया जाता है, प्रत्यक्षत: कोई संबंध नहीं होता।

संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने इन तीन व्यवस्थाओं को ही केन्द्रक माना और ध्वनि एवं अर्थ को केन्द्रक परिधि से बाहर माना। संरचनावादी भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा विश्लेषण में अर्थ की उपेक्षा की किन्तु प्राग स्कूल के भाषा वैज्ञानिकों ने अर्थ का परित्याग नहीं किया। प्राग स्कूल के भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के आशय को महत्वपूर्ण माना। उनका विचार था कि भाषा का आशय उच्चार के संदर्भ से निर्दिष्ट होता है। यही भाषा का प्रकार्य है। शब्द के अर्थ का मतलब केवल शब्दकोशीय अर्थ ही नहीं है अपितु इसमें शैलीगत एवं संदर्भगत अर्थ भी समाहित हैं। इनकी मान्यता है कि भाषा का प्रयोक्ता अपने विचारों का सम्प्रेषण करता है। भाषा शून्य में नहीं अपितु समाज में बोली जाती है। भाषा

सामाजिक वस्तु है। सम्प्रेषण में वक्ता श्रोता को केवल तथ्यपरक सूचना ही नहीं देता। वह सम्प्रेषित तथ्य के बारे में अपने निजी भावों को भी प्रकट करता है। संदर्भ के बिना भाषा के वक्ता के आशय को नहीं समझा जा सकता। वक्ता अपनी बात से श्रोता में मनोनुकूल प्रतिक्रिया उत्पन्न करना चाहता है। भाषा की व्यवस्था में सम्प्रेषण व्यापार के सभी प्रकार्यों का स्थान है। लंदन सम्प्रदाय के प्रोफेसर फर्थ के मत के अनुसार भाषा के विश्लेषण का उद्देश्य उसके अर्थ का विवरण प्रस्तुत करना है जिससे हम भाषा के जीवंत प्रयोगों को आत्मसात कर सकें। भाषा एक अर्थपूर्ण प्रक्रिया है। प्रोफेसर फर्थ का मत है कि भाषा अर्थपूर्ण भाषा-व्यवहार है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अर्थ के अध्ययन को भाषा-विज्ञान की केन्द्रक परिधि में माना जाए अथवा नहीं—इस बारे में हमें विरोधी विचार मिलते हैं। संरचनात्मक भाषा-विज्ञान और प्रोफेसर फर्थ के विचारों के अन्तर को इससे समझा जा सकता है कि जहाँ संरचनात्मक भाषा-विज्ञान भाषा का अध्ययन 'अर्थ को बीच में लाए बिना' की मान्यता को ध्यान में रखकर करने पर जोर देता है वहीं इसके उलट प्रोफेसर फर्थ का विचार था कि भाषा का विश्लेषण हम जिस स्तर पर क्यों न करें, वह विश्लेषण प्रत्येक स्तर पर अर्थ का ही विश्लेषण है।

"अर्थ प्रसंगाश्रित सम्बंधों की संश्लिष्टता है और ध्वनि, व्याकरण, शब्दकोष निर्माण और अर्थ विज्ञान इनमें से प्रत्येक के अपने उचित संदर्भ में प्रसंगाश्रित सम्बंधों की संश्लिष्टता के घटक होते हैं।"

व्यवस्थागत प्रकार्यात्मक भाषा-विज्ञान भाषा को सामाजिक संदर्भ में व्याख्यायित करने का सिद्धांत है। भाषा सामाजिक संदर्भानुसार परस्पर विनिमय होने वाले अर्थ को व्यक्त करने का एक संसाधन है। इसी कारण व्यवस्थागत प्रकार्यात्मक व्याकरण भाषा के अर्थ को विवेच्य मानता है। भाषा के प्रयोक्ता भाषा का प्रयोग सामाजिक संदर्भगत अर्थ को व्यक्त करने के लिए करते हैं। इसी कारण हैलिडे का कथन है कि भाषा का प्रयोक्ता किन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए भाषा का प्रयोग एक संसाधन के रूप में कर रहा है—इस पर भाषा वैज्ञानिक को अपनी दृष्टि केन्द्रित रखनी चाहिए। हैलिडे का स्पष्ट विचार है कि भाषा का महत्व उसके सामाजिक उपयोग में निहित है और इस पर अनिवार्य रूप से उपभोक्ता की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए। हैलिडे ने प्रोफेसर फर्थ के विचारों को आगे बढ़ाने का काम किया। उन्होंने अर्थ के साथ-साथ सामाजिक परिस्थितियों तथा संदर्भों को भी समाविष्ट किया। हैलिडे ने माना कि

भाषा के अध्ययन में संदर्भ प्रमुख है, जो भाषा को सामाजिक परिस्थितियों से जोड़ने का काम करता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वर्णनात्मक एवं संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिक भाषा विज्ञान के विभागों अथवा भाषा-विज्ञान की इन शाखाओं को प्रधान शाखाओं एवं गौण शाखाओं के रूप में विभाजित करते थे तथा प्रधान शाखाओं के अन्तर्गत भाषा के अलग-अलग स्तरों पर प्राप्त संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं का विश्लेषण एवं विवेचन करते थे जबकि गौण शाखाओं के अन्तर्गत 'ध्वनि' एवं 'अर्थ' का अध्ययन, भाषागत सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण तथा संसार की भाषाओं के वर्गीकरण से सम्बन्धित विवेचन करते थे। प्रकार्यात्मक भाषा-विज्ञान के विकास के बाद अर्थ का अध्ययन केन्द्रक हो गया। संरचनात्मक भाषा-विज्ञान एवं प्रकार्यात्मक भाषा-विज्ञान की विवेचना से यह स्पष्ट है कि संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने अर्थ की उपेक्षा की मगर प्रकार्यात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने यह माना कि अर्थ की व्याख्या एवं सहारे के बिना व्याकरणिक पद की प्रकार्यात्मक भूमिका को नहीं समझा जा सकता। यह कहा जा चुका है कि भाषा मानवीय अनुभवों का प्रतिपादन करता है। मानवीय अनुभवों का संसार अपरिमित है। इस कारण भाषा में एक कथ्य के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। एक शब्द के संदर्भ के अनुसार अनेक अर्थ होते हैं। एक शब्द के अनेक प्रयोग होते हैं। भाषा का प्रयोगकर्ता अपनी भाषा में उपलब्ध विकल्पों में से संदर्भ को ध्यान में रखकर किसी विकल्प का चयन करता है। भाषा में उपलब्ध विकल्प भाषा के विभिन्न स्तरों पर मिलते हैं। भाषा के तीन बुनियादी स्तर होते हैं।

(1) ध्वनि,

(2) शब्द-व्याकरण,

(3) अर्थ।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि भाषा-विज्ञान की प्रधान शाखाओं के सवाल पर भाषा वैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है। भाषा-विज्ञान के सामान्य पाठक की दृष्टि से हम भाषा-विज्ञान के प्रमुख विभागों अथवा भाषा-विज्ञान की प्रमुख शाखाओं की विवेचना करेंगे।

भाषा का ध्वन्यात्मक पक्ष–ध्वनिविज्ञान एवं ध्वनिमविज्ञान अथवा स्वनिम विज्ञान

भाषा का व्याकरणिक पक्ष–रूपिमविज्ञान एवं वाक्य-विज्ञान

भाषा का अर्थ अथवा कथ्य पक्ष–अर्थ विज्ञान

इस प्रकार भाषा-विज्ञान की प्रमुख शाखाएँ निम्न हैं–

ध्वनिविज्ञान अथवा स्वनविज्ञान–इसके अन्तर्गत भाषा की आधारभूत सामग्री का अध्ययन किया जाता है। किसी भी भाषा का कोई भी उच्चारण ध्वनियों अथवा स्वनों का अविच्छिन्न प्रवाह है। भाषा की ध्वनियाँ स्वत: अर्थहीन होती हैं। ध्वनियों का उच्चारण भौतिक घटनाएँ हैं तथा इस रूप में ये भौतिक विज्ञान में भी विवेच्य हैं। ध्वनिविज्ञान अथवा स्वनविज्ञान में वाक् ध्वनियों के उत्पादन, संचरण एवं संवहन का अध्ययन किया जाता है।

स्वनिमविज्ञान–इसमें विवेच्य भाषा की ध्वनियों अथवा स्वनों के वितरण के आधार पर अर्थ-भेदक अथवा विषम वितरण में वितरित स्वनिमों का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक भाषा में ध्वनियों की अपनी व्यवस्था होती है। दो भाषाओं में ध्वनियाँ समान हो सकती हैं, किन्तु उनका भाषाओं में प्रकार्य समरूप नहीं होता। इस कारण ध्वनियों की संरचनात्मक इकाइयों में भेद होता है। जब हम ध्वन्यात्मक व्यवस्था की विवेचना करते हैं तब हमारा तात्पर्य किसी विशिष्ट भाषा के स्वनिमों से होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी एवं तमिल में 'क्' एवं 'म्' ध्वनियों का उच्चारण होता है। हिन्दी में इनका स्वनिमिक महत्व है। तमिल में इनका स्वनिमिक महत्व नहीं है। इसी कारण तमिल की लिपि में इनके लिए अलग-अलग वर्ण नहीं हैं।

रूपिम विज्ञान अथवा शब्द रूप प्रक्रिया

वाक्य-विज्ञान

रूपिमविज्ञान एवं वाक्य-विज्ञान को अलग-अलग शाखाएँ माना जाए अथवा नहीं, यह भी विवाद का विषय है। किसी भाषा के स्वनिमों के विशिष्ट क्रम से निर्मित रूपात्मक या व्याकरणिक इकाइयों की व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं का अध्ययन इन शाखाओं का विवेच्य है। स्वनिम व्यवच्छेदक अर्थात् अर्थ भेदक होते हुए भी स्वयं अर्थ शून्य होते हैं, किन्तु इन्हीं के विशेष क्रम से संयोजित होने वाले रूप, शब्द, वाक्यांश एवं वाक्य भाषा के अर्थवान तत्त्व होते हैं। भाषा वैज्ञानिक भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था को जानने के लिए इन्हीं तत्त्वों के द्वारा संरचित संरचना स्तरों का अध्ययन करता है। (रूपों का संचय एवं उससे निर्मित रूपिम, शब्द, वाक्यांश, एवं वाक्य आदि)। भाषा में प्रत्येक स्तर पर रचना की

विशिष्ट व्यवस्था होती है। प्रत्येक स्तर की इकाई अपने से निम्न स्तर की एक अथवा एकाधिक इकाइयों से मिलकर बनती है। दूसरे शब्दों में निम्न स्तर की एक अथवा एकाधिक इकाइयाँ मिलकर बड़े स्तर की इकाई की रचना करती हैं।

प्रत्येक स्तर की संरचक इकाई/इकाइयों के क्रम, विस्तार आदि की अभिरचनाएँ होती हैं। इन अभिरचनाओं की नियमबद्धता एवं परस्पर सम्बंधों के नियम उस स्तर की व्यवस्था को स्पष्ट करते हैं। विविध स्तरों की इकाइयों के परस्पर मिलकर अपने से बड़े स्तर की इकाइयों की रचना के नियम संरचना को स्पष्ट करते हैं। विविध स्तरों का परस्पर अधिक्रम होता है। अधिक्रम में एक स्तर में आनेवाली इकाइयों का संरचनात्मक मूल्य समान होता है। संरचनात्मक मूल्य से उस व्याकरणिक इकाई की पहचान होती है। एक स्तर की व्याकरणिक इकाई अधिक्रम में अपने से नीचे स्तर की व्याकरणिक इकाई/इकाइयों की पहचान कराती है। जो विद्वान रूपिमविज्ञान एवं वाक्य-विज्ञान को अलग-अलग शाखाएँ मानते हैं उनके मतानुसार रूपिमविज्ञान में हम लघुतम अर्थयुक्त् इकाईयों से बड़ी इकाईयों के अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते हैं तथा वाक्य-विज्ञान में बड़ी इकाइयों से छोटी इकाइयों की ओर प्रवृत्त होते हैं। निम्न स्तर की संरचना की इकाई अपने से बड़े स्तर की संरचना की संरचक होती है। उदाहरण के लिए शब्द स्तर पर संरचक रूपिम होते हैं। वाक्यांश स्तर पर संरचक शब्द होते हैं। उपवाक्य स्तर पर संरचक वाक्यांश एवं वाक्य स्तर पर संरचक उपवाक्य होते हैं। किसी भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए उसका रूपिम एवं वाक्य विन्यासीय अध्ययन करते हैं। रूपिमविज्ञान में उच्चारों को रूपों में विभाजित करके, वितरण के आधार पर रूपिम में वर्गबद्ध करते हैं। आबद्ध रूपिमों को व्युत्पादक एवं विभक्ति प्रत्ययों में वर्गीकृत किया जाता है। इस अध्ययन से भाषा की व्युत्पन्न प्रतिपादिक रचना एवं विभक्ति व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। विभक्ति प्रत्यय किसी/किन्हीं वैयाकरणिक रूपधूपों की सिद्धि करते हैं। कोटियों के अनुरूप वैभक्तिक होने तथा/अथवा वैभाक्तिक शब्दों के वाक्यीय प्रकार्य के आधार पर भाषा के समस्त शब्दों को 'वाग्भागों' में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक वाग्भाग का अध्ययन वैयाकरणिक कोटियों के अनुरूप रूपान्तरित होने वाले वर्गों उपवर्गों के अनुरूप किया जाता है। वाक्य-विज्ञान में विवेच्य भाषा के वाक्यों की संरचना सम्बंधी अध्ययन किया जाता है। सामान्यत: किसी भाषा के सामान्य वाक्य को पहले संज्ञा वाक्यांश (NP) एवं क्रिया

वाक्यांश (VP) में विभक्त किया जाता है।नॉम चॉम्स्की ने गहन संरचना के नियमों को जानने के लिए रचनांतरण व्याकरण का मॉडल प्रस्तुत किया। प्रकार्यात्मक भाषा-विज्ञान के अध्ययन के बाद विवेच्य भाषा के वाक्य संरचना के विभिन्न तत्त्वों का संरचनात्मक एवं अर्थपरक आधारों पर अध्ययन किया जाता है। इसमें सबसे अधिक महत्व भाषा के वाक्य प्रकारों, मूल अथवा आधार वाक्यों का निर्धारण, मूल अथवा आधार वाक्यों के साँचों एवं उपसाँचों का अध्ययन किया जाता है।

अर्थ विज्ञान–इसमें विवेच्य भाषा के शब्दों के अर्थों का अध्ययन किया जाता है। शब्दार्थ का अध्ययन ऐतिहासिक, तुलनात्मक एवं शब्द के वर्तमानकालिक संदर्भानुसार अर्थ प्रयोगों सहित किया जाता है। उदाहरण के लिए शब्दार्थ के ऐतिहासिक अध्ययन में शब्द में कालक्रमानुसार हुए अर्थ परिवर्तनों के कारणों एवं विभिन्न प्रकार के अर्थ परिवर्तनों के सम्बंध में विचार किया जाता है।

भाषा-विज्ञान की अन्य शाखाएँ

क्षेत्र-कार्य भाषा-विज्ञान–भाषा का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि हम विवेच्य भाषा-क्षेत्र का सर्वेक्षण करें तथा विवेच्य भाषा के सूचकों से भाषा सामग्री संकलित करें। इस दृष्टि से 'क्षेत्र-कार्य भाषा-विज्ञान' भाषा-विज्ञान के अध्ययन का एक विभाग है। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से निम्न विषयों पर विचार किया जाता है–

(1) भाषा-सर्वेक्षण की विशेषताएँ, स्वरूप एवं प्रकृति,
(2) सर्वेक्षण-सामग्री,
(3) प्रश्नावली का निर्माण,
(4) सर्वेक्षण-क्षेत्र की जानकारी,
(5) सामग्री संकलन,
(6) सूचकों का चयन, सूचकों की विशेषताएँ एवं योग्यताएँ,
(7) सामग्री का अंतर्राष्ट्रीय स्वन वर्णमाला लिपि में प्रतिलेखन,
(8) सामग्री का विश्लेषण।

भाषा-भूगोल अथवा बोलीविज्ञान–किसी भाषा-क्षेत्र के उपभाषा, बोली आदि क्षेत्रों तथा भिन्न भाषायी क्षेत्रों का निर्धारण 'बोलीविज्ञान' अथवा 'भाषा-भूगोल' के सिद्धांतों के आधार पर होता है। कुछ विद्वान भाषा-भूगोल अथवा बोलीविज्ञान को समानार्थक मानते हैं। भाषा-भूगोल अथवा बोलीविज्ञान

में अन्तर मानने वाले विद्वानों का यह मानना है कि भाषा-भूगोल में विवेच्य भाषा-क्षेत्र की केवल क्षेत्रगत विविधताओं का अध्ययन किया जाता है मगर बोलीविज्ञान में विवेच्य भाषा-क्षेत्र की समस्त प्रकार की भिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। भाषा-भूगोल के अन्तर्गत भाषा के प्रत्येक तत्त्व को समभाषांश सीमा-रेखा द्वारा भाषा मानचित्रावली में स्पष्ट किया जाता है। इस अध्ययन से दो भाषाओं एवं एक भाषा की दो बोलियों के संक्रमण-क्षेत्र का वैज्ञानिक ढंग से निर्धारण किया जाता है। इस अध्ययन से भाषा-क्षेत्र के केन्द्रीय क्षेत्र, अवशिष्ट क्षेत्र तथा संक्रमण-क्षेत्र आदि का निर्धारण वैज्ञानिक ढंग से सम्पन्न हो पाता है।

भाषा-विज्ञान में सामान्य भाषा के स्वरूप तथा भाषा-विश्लेषण की विभिन्न पद्धतियों के सम्बन्ध में भी विचार किया जाता है।

भाषा-विज्ञान में संसार भर की भाषाओं का ऐतिहासिक सम्बन्ध तथा सम्बन्ध तत्त्वों की समानता एवं प्रकारात्मक आदि आधारों पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है।

अनुप्रयुक्त-भाषा-विज्ञान

'अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान' ज्ञान की एक अलग शाखा के रूप में विकास कर रहा है। भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों, भाषा विश्लेषण की विभिन्न पद्धतियों तथा विभिन्न भाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन संबंधी, निष्कर्षों का उपयोग एवं प्रयोग भाषा संबंधी अन्य समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। भाषा संबंधी अन्य समस्याओं में प्रमुख हैं-भाषा-शिक्षण, अनुवाद कोश-विज्ञान।

'अनुप्रयुक्त-भाषा-विज्ञान' में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की सहायता से उपर्युक्त भाषा विषयक समस्याओं के संबंध में विचार किया जाता है। इस दृष्टि से 'अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान की प्रमुख शाखायें निम्नलिखित है--

(1) भाषा-विज्ञान (विशेष रूप से अन्य-भाषा के रूप में शिक्षण)
(2) कोश-विज्ञान
(3) व्युत्पत्ति शास्त्र
(4) अनुवाद विज्ञान

(1) भाषा शिक्षण

मातृभाषा को व्यक्ति बाल्यकाल में समाज में रहकर सीख लेता है, किन्तु अन्य भाषा सिखते समय हमें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

मातृभाषा-शिक्षण एवं अन्य-भाषा-शिक्षण में कई मूलभूत अन्तर हैं। इनमें सर्वप्रमुख यह है कि जब कोई बालक स्कूल में पढ़ने जाता है, तो अपनी मातृभाषा को ध्वनि-व्यवस्था, व्याकरण एवं शब्दावली को सीख चुका होता है। अपनी मातृभाषा की ध्वनियों, दैनिक जीवन की शब्दावली एवं उसके सरल वाक्य साँचों से अभ्यस्त हो चुका होता है। किन्तु अन्य-भाषा शिक्षण के आरम्भ में वह अन्य भाषा में बिल्कुल अपरिचित एवं अनभिज्ञ होता है।

भाषा-विज्ञान ने अन्य-भाषा शिक्षण में महत्वूपर्ण योगदान दिया है। भाषा वैज्ञानिक लक्ष्य-भाषा का भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन कर उसकी अभिरचनाओं एवं व्यवस्थाओं की विवेचना करता है। साथ ही प्रशिक्षणार्थी की मातृभाषा की अभिरचनाओं एवं व्यवस्थाओं को ज्ञात कर दोनों भाषाओं (मातृभाषा एवं लक्ष्य भाषा) का, प्रत्येक स्तर पर व्यतिरेकात्मक अध्ययन करता है। इस अध्ययन से दोनों भाषाओं की व्यवस्था एवं संरचना के साम्य वैषम्य का पता चल जाता है। वह यह भी ज्ञात करता है कि मातृभाषा से भिन्न लक्ष्य-भाषा की अभिरचनायें कौन-कौन सी हैं तथा प्रशिक्षण में मातृभाषा के कौन-कौन से भाषिक तत्त्वों का व्याघात संभावित है। इस दृष्टि से वह अध्यापन बिन्दुओं का निर्माण कर, पाठ्य सामग्री का निर्माण करता है। लक्ष्य-भाषा के विशिष्ट ध्वन्यात्मक लक्षणों को अभिरचना-प्राभ्यास प्रक्रिया द्वारा सिखाने की सामग्री प्रदान करता है। इसी प्रकार लक्ष्य-भाषा की विशिष्ट व्याकरणिक अभिरचनाओं, मूल उपवाक्य संरचनाओं तथा उनके विस्तारणों एवं रूपान्तरणों, शब्द अथवा व्याकरणिक खण्ड परिवर्तनों तथा विविध प्रकार के प्राभ्यसों-सुनना, दुहराना, पहचानना, प्रतिस्थापन, रूपान्तरण, विस्तार, प्रश्नोत्तर आदि की पाठ-सामग्री बनाता है। भाषा-प्रयोगशाला क लिए विशेष पाठों का निर्माण करता है। इस प्रकार भाषा-विज्ञान की पद्धतियों द्वारा भाषा के संपूर्ण प्रशिक्षण का कार्य पूर्व नियोजित एवं वर्गीकृत पाठय-सामग्री तथा नियन्त्रित प्रक्रिया के द्वारा संपन्न करता है।

इस प्रकार भाषा-विश्लेषण, भाषा-शिक्षण-सामग्री-निर्माण तथा भाषा-सामग्री के वर्गीकरण एवं प्रस्तुतीकरण आदि में आधुनिक भाषा-विज्ञान बहुत सहायता प्रदान करता है। यह भी उल्लेखनीय 'भाषा-विज्ञान' भाषा-शिक्षण में सहायक साधन मात्र है, भाषा-विज्ञान ही भाषा-शिक्षण नहीं है। भाषा का अध्यापक भाषा-विज्ञान की सहायता से शिक्षणार्थी की मातृभाषा एवं लक्ष्य-भाषा के स्वरूप, साम्य वैषम्य, शिक्षण कार्य की सम्भावित समस्याओं की खोज तथा

समाधान हेतु पाठय-सामग्री का तदनुरूप निर्माण आदि कार्य सम्पन्न करता है, किन्तु कक्षा में वह भाषा सीखाता है, भाषविज्ञान नहीं पढ़ाता।

(2) कोश विज्ञान

कोशकार किसी भाषा के समस्त शब्दों का संग्रह कर, उन्हें अकरादि क्रम से सजाता है। प्रत्येक का विभिन्न प्रसंगों एवं संदर्भो में अर्थ-निर्धारण कर, उसके समस्त अर्थों एवं अर्थ-छायाओं का विधान करता है। शब्द के पूर्ण विवरण के लिए वह शब्द का मूलरूप खोजता है, उसके व्याकरणिक रूप को ज्ञात करता है तथा लिंग आदि का निर्वाचन करता है। उसका उच्चरित रूप ज्ञात कर, उसको ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन में लिखता है।

इस समस्त कार्य में ध्वनिविज्ञान, रूपग्रामविज्ञान, अर्थ विज्ञान एवं ऐतिहासिक-विज्ञान उसकी प्रत्येक पग पर सहायता करते हैं। वस्तुतः भाषा-विज्ञान एवं कोश (निघण्टु एवं निरूक्त) एक दूसरे के पूरक हैं। संस्कृत में व्याकरण, निघण्टु एवं निरूक्त का कार्यक्षेत्र अलग रहा है। व्याकरण में दो मूल अर्थ तत्त्वों के मध्य सम्बन्ध तत्त्व की व्याख्या के लिए विभक्ति रूपों की विवेचना की गयी, निघण्टुकार ने शब्द के पर्याय दिए तथा निरूक्तकार यास्क ने व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विवेचना का कार्य किया। वैदिक शब्दों का पर्याय-ग्रन्थ 'निघण्टु' प्राप्त है।

यास्क ने अपने निरूक्त में इसकी व्याख्या अर्थात् शब्दों की व्युपत्ति एवं अर्थ का विधान किया है। निघण्टु के कुल 796 शब्दों में से निरूत्त में 536 शब्दों की व्याख्या की गयी है।

आधुनिक कोशग्रन्थों में निघण्टु एवं निरूत्त दोनों का योग होता है। यह कार्य भाषा-विज्ञान की विधियों एवं सिद्धान्तों के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से सम्पन्न किया जाता है।

(3) व्युत्पत्ति शास्त्र

व्युत्पत्ति शास्त्र में शब्द के मूलरूप की खोज की जाती है। अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति ज्ञात नहीं है। इसके लिए भाषा-विज्ञान ने ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत एक भाषा की विविध बोलियों अथवा एक भाषा परिवार की विविध भाषाओं के ज्ञात रूपों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर शब्द के पूर्ववर्ती अज्ञात रूप के पुननिर्माण की विधि का विकास किया है। इस प्रकार तुलनात्मक विवेचना एवं पुनर्निर्माण-विज्ञान के सिद्धान्त व्युत्पत्तिशास्त्री की सहायता करते हैं।

भाषात्मक विकास एवं परिवर्तन सम्बन्धी सिद्धान्त भी शब्द की व्युत्पत्ति के सम्यक् निर्धारण में सहायता करते हैं।

(4) अनुवाद विज्ञान

एक भाषा की कृति का दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। विषय की जानकारी भर होने से सही अनुवाद नहीं हो पाता। द्विभाषिक शब्दाकोशों से एक भाषा के शब्द के स्थान पर दूसरी भाषा के शब्द को रखने से भी हमारे लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो जाती। अनुवाद की अनेक भाषा वैज्ञानिक समस्याएँ हैं–

(1) अर्थपरक समस्याएँ–किसी शब्द का उचित पर्याय खोजना अत्यंत कठिन कार्य होता है। प्रत्येक भाषा के शब्द का अपना इतिहास होता है। प्रत्येक भाषियों की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परायें होती हैं, विशिष्ट भौतिक एवं आध्यात्मिक अनुभव होते हैं, विशिष्ट आस्थायें एवं विश्वास होते हैं, इस कारण प्रत्येक भाषा के शब्द की अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता होती है। इस कारण अनुवाद की लक्ष्य भाषा में से उचित एवं सम्यक् अर्थ प्रतीति कराने वाले शब्द की खोज करनी पड़ती है।

(2) व्याकरणिक समस्याएँ–अनुवाद में शब्दों के साथ-साथ भाषा की संरचना में परिवर्तन करना पड़ता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि अनुवादक मूलग्रन्थ की भाषा की व्याकरणिक विशिष्टताओं, अनुवाद की लक्ष्य भाषा की व्याकरणिक विशिष्टताओं तथा दोनों भाषाओं की व्याकरणिक संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं के साम्य वैषम्य से परिचित हो। इस दृष्टि से दोनों भाषाओं के व्याकरणिक अध्ययन एवं व्यतिरेकी भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर उनकी संरचनाओं एवं व्यवस्थाओं के साम्य वैषम्य की जानकारी प्राप्त कर, हम भाषिक संरचना का भी सही अनुवाद कर सकते हैं।

(3) शब्दावली की समस्या–शब्दावली की समस्या के कई रूप हैं–

(i) वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के अनुवाद की समस्या,

(ii) आंचलिक शब्दावली के अनुवाद की समस्या,

(iii) विशिष्ट भावाभिव्यंजक शब्दावली के अनुवाद की समस्या।

इस दृष्टि से यदि अनुवाद की लक्ष्य भाषा में पर्याय उपलब्ध नहीं हो पाता तो या तो अनुवादक लक्ष्य भाषा में शब्दनिर्माण की प्रकृति को ध्यान में रखकर शब्द का निर्माण कर सकता है अथवा मूलग्रन्थ की भाषा के शब्द की मूल

प्रकृति या धातु में दूसरी भाषा के रचनात्मक उपसर्गों एवं प्रत्ययों को लगाकर शब्द व्युत्पन्न कर सकता है।

(4) ध्वन्यात्मक एवं लिप्यांकन की समस्याएँ–मूलग्रन्थ की भाषा में बहुत से ऐसे शब्द होते हैं जिनका अनुवाद की लक्ष्य भाषा की लिपि में लिप्यांकन करना होता है। इस दृष्टि से मूलभाषा में विवेच्य शब्द का सम्यक् उच्चारण जानने की समस्या तथा उसे उसी रूप में लक्ष्य भाषा की लिपि के द्वारा लिखने के समाधान के लिए ध्वनिविज्ञान, मूल भाषा का ध्वन्यात्मक विवेचन, लिपि विज्ञान तथा लक्ष्य भाषा की परम्परागत लिपि की प्रकृति तथा उसमें अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक प्रतिलेखन के विशिष्ट चिह्नों का उपयोग एवं प्रयोग करने की विधि से सम्बन्धित ज्ञान हमारी सहायता करता है।

इस प्रकार अनुवाद की भाषा वैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भाषा-विज्ञान के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है।

भाषा-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

मनोविज्ञान का अध्ययन पहले दर्शनशास्त्र के एक अंग के रूप में होता था किन्तु अब मनोविज्ञान एक पृथक विषय बन चुका है। इसके अन्तर्गत मानव व्यवहार से सम्बन्धित नियमों की खोज, उनका विश्लेषण तथा उनकी विवेचना की जाती है।

मनुष्य की मानसिक घटनाओं का शरीरिक सत्ता के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है, यह अत्यन्त विवाद का विषय है। इतना निश्चित है कि भाषात्मक अभिव्यक्ति के दो आधार हैं–मानसिक तथा शारीरिक। मनोविज्ञान व्यक्ति विशेष के अनुभवों, धारणाओं एवं क्रियाओं का अध्ययन करता है। व्यक्ति विशेष की धारणाएँ एवं अनुभव प्रत्यक्षतः उसी का अनुभूत होते हैं। व्यक्ति अपने निजी अनुभवों एवं धारणाओं को समाज से जोड़ता है। इसके लिए वह अपने अनुभवों एवं धारणाओं की अभिव्यक्ति करता है। व्यक्ति के अभिव्यक्तिकरण-व्यवहार के साधनों में से प्रमुख साधन उसका वाक्-उच्चारण है।

व्यक्ति भाषा के द्वारा अपने को समाज से जोड़ता है तथा भाषा के द्वारा उसके अन्तर्मन को जानने में बहुत सहायता मिलती है। इस सम्बन्ध में भाषा एवं विचार (दे0 5.2.) के अन्तर्गत चर्चा की गयी है।

व्यक्ति के वाक्-व्यवहार का अध्ययन भाषा वैज्ञानिक भी करता है तथा मनोवैज्ञानिक भी। मनोवैज्ञानिक भाषा के आधार पर किसी मनुष्य के व्यक्तित्त्व

तथा उसके व्यवहार का अध्ययन करता है। इसके लिए वह उसकी मातृ-भाषा की सामान्य भाषिक व्यवस्थाओं एवं सरंचना से इतर उसके वाक्-व्यवहार की विशिष्टताओं का आकलन करता है।

भाषा वैज्ञानिक भाषा का अध्ययन करते समय उसके माध्यम से अभिव्यक्त विचार के सामान्य पक्ष- 'अर्थ' की विवेचना करता है, बच्चों के भाषात्मक विकास तथा उसके द्वारा भाषा अधिगम की समस्याओं तथा अन्य भाषा शिक्षण में प्रशिक्षणार्थियों का अध्ययन करता है एवं किसी भाषा की विविध शैलियों का विश्लेषण करता है। 'भाषा' एवं 'व्यवहार' तथा 'भाषा' एवं 'विचार' की आन्तरिकता के कारण दोनों अध्ययन-विषय परस्पर सहायक है।

भाषा-विज्ञानः मनोविज्ञान के लिए सहायक

(1) मनुष्य का व्यक्तित्त्व तथा व्यवहार–भाषा के आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्त्व तथा व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। वाक्-व्यवहार से व्यक्ति के संवेगात्मक अनुभवों और अनुभूतियों को पहचाना जा सकता है। क्रोध में व्यक्ति अलग ढंग से बोलता है, प्यार में अलग ढंग से। आवेश की भाषा अलग तरह की होती है, आनन्दानुभूति की भाषा अलग तरह की। स्नेह और घृणा की अभिव्यक्तियाँ एक सी नहीं होती। अलग-अलग मानसिक स्थितियों में वाक्-व्यवहार के स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है। यह परिवर्तन लय, आघात, अनुतान, लहजा, आदि में देखा जा सकता है।

भाषा-विज्ञान भाषा का वस्तुपरक विश्लेषण करता है। एक भाषा-समाज का व्यक्ति अलग-अलग मानसिक स्थितियों में भिन्न शैलियों में प्रयोग करता है। भाषा-वैज्ञानिक इन शैलियों का विश्लेषण करता है। पांडित्य प्रदर्शन करते समय व्यक्ति 'तत्सम प्रधान भाषा' का प्रयोग करता है। जिन्दगी की सामान्य स्थिति में 'सहज भाषा' का प्रयोग करता है। बातचीत कभी आम होती है तो कभी खास। उच्चारण का लहजा उसके मनोभाव को प्रकट करता है। रूप तथा वाक्य-धरातल पर भी भाषा-रूप में अन्तर आ जाता है। एक वक्ता किसी दूसरे व्यक्ति को बुलाते समय जिस शब्द का प्रयोग करता है, उससे उसके मनोभाव को सूचना मिल जाती है। 'इधर आ', 'यहाँ आओ', 'आइए'- अलग मनोभावों को व्यक्त करते हैं। जिस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में प्रत्येक रचनाकार की अपनी निजी शैली होती है, जिस प्रकार व्यक्ति-बोली के स्तर पर प्रत्येक की बोली में निजीपन होता है, उसी प्रकार अलग-अलग मानसिक स्थितियों में व्यक्ति के

बोलने का लहजा बदल जाता है, शब्द बदल जाते हैं, शब्द का ध्वनि-स्वरूप बदल जाता है, रूप व्यवस्था तथा वाक्य व्यवस्था बदल जाती है तथा वाक्य का अर्थ बदल जाता है। भाषा के प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति किस मानसिक स्थिति में क्या 'चयन' करता है-इसका विश्लेषण भाषा-वैज्ञानिक पद्धति से सहज सम्भव है।

कभी-कभी व्यक्ति खुली बात नहीं करता, सच्ची बात नहीं बोलता, झूठी बात करता है या बात छिपा जाता है। जब व्यक्ति अपने मन से एक प्रकार से अनुभव करता है तथा उसकी अभिव्यक्ति भिन्न प्रकार से करता है तब उसके 'वाक्-व्यवहार' से उसके व्यक्तित्त्व का विश्लेषण किस प्रकार सम्भव है ? इस सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है। सम्प्रति, यह उल्लेखनीय है कि यदि शब्द के स्तर पर वह अपने मन की बात छिपा जाता है तो भाषा की संरचना के 'विचलन प्रयोगों' से उसके मन की परतों को पहचाना जा सकता है। इस प्रकार के व्यक्तियों का परीक्षण करते समय 'शब्द-प्रयोग' की अपेक्षा भाषा-व्यवस्था एवं संरचना प्रयोगों को अधिक महत्त्व देना चाहिए। 'नहीं', मैंने यह काम नहीं किया। 'नहीं, नहीं, यह काम मेरे द्वारा नहीं हुआ'-दोनों वाक्यों का 'अभिप्रेत-अर्थ' समान है। दोनों में 'भाव' का अन्तर है। इस अन्तर को वाक्यों के संरचना-भेद से जाना जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के चिन्तन के विश्लेषण के लिए भाषिक दृष्टि से 'शब्द-परीक्षण करता रहा है। इसे चिन्तन के विश्लेषण के लिए भाषा में निहित व्यवस्था एवं संरचना के विश्लेषण की तरफ भी ध्यान देना चाहिए। इसके लिए इसे भाषा-विज्ञान की संरचनात्मक-पद्धति से परिचय प्राप्त करना चाहिए।

(2) मानसिक विकृति तथा वाक्भ्रन्श-मनोविज्ञान मानसिक दृष्टि से विकृत-व्यक्तियों का भी निदान करता है। इस कारण इसमें 'वाक् भ्रंश' का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में भाषा-विज्ञान एवं मनोविज्ञान परस्पर सहायक हैं।

(3) भाषा-अर्जन तथा भाषा विकास-मनोविज्ञान में बच्चों के भाषा अर्जन तथा भाषा-विकास का अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से भाषा सीखना एक माननीय-व्यवहार को 'सीखना और याद करना है। बच्चा अपनी मातृ-भाषा को सहज रूप से सीख लेता है। यह शब्द सुनता है। धीरे-धीरे उसका अर्थ ग्रहण कर क्रिया करता है। यह बात कही जा चुकी है कि शब्द और अर्थ में प्राकृत सम्बन्ध नहीं है। भाषा के विकास की प्रक्रिया में दोनों का सम्बन्ध

जुड़ जाता है। भाषा-विकास की दृष्टि से शिशु पहले कुछ सप्ताहों तक रोता है, खाँसता है, छींकता है तथा किलकारी भरता है। तीन महीने का होने पर यदि कोई उसके साथ खेलता है तो प्रसन्नता के साथ हँसता है तथा आवाज करता है। छह महीने से नौ महीनों के बीच हिन्दी भाषी बच्चा 'आ' 'पा' आदि बोलने की कोशिश करता है। पाँच-छह महीने का होने पर यदि कोई उससे बातें करता है तो वह अपना सिर उसकी तरफ घुमाता है। अपनी माँ या अपने अभिभावक का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए आवाज करता है। एक वर्ष से डेढ़ वर्ष के बीच वह 'माँ', 'पापा', 'बाबा' आदि कुछ शब्द बोलने लगता है तथा 'ना' 'नहीं' जैसे शब्दों का अर्थ समझने लगता है।

दूसरे वर्ष का होते-होते वह शब्द-प्रयोग करना सीख जाता है। इसी के साथ-साथ वह शब्द में ध्वनि-खंडों को ग्रहण करता है तथा एक शब्द में एक ध्वनि-खंड के स्थान पर दूसरा ध्वनि खंड जोड़कर नया शब्द बनाता है। शब्दों में परस्पर अर्थ-भेद करने लगता है। दो वर्ष का हो जाने के बाद छोटे-छोटे वाक्य बनाने लगता है।

बच्चों के भाषा-अर्जन तथा भाषा-विकास में मनोविज्ञान की विशेष अभिरुचि है। इसका कारण यह है कि यह प्रक्रिया मानव-व्यवहार की कई समस्याओं के समाधान में सहायक है।

भाषा-विज्ञान इस दिशा में मनोविज्ञान को नया चिन्तन एवं पद्धति प्रदान करता है। भाषा-विज्ञान से यह जानकारी प्राप्त होती है कि किसी भाषा का बच्चा अपनी भाषा की व्यवस्थाओं एवं संरचनाओं में से किन-किन को किस क्रम से सीखता है। भाषा के सम्पूर्ण शब्द-कोश में से सबसे पहले किन शब्दों का प्रयोग करता है।

उदाहरण के रूप में एक हिन्दी-भाषी बच्ची के भाषा विकास का अध्ययन करते हुए महरोत्रा ने सबसे पहले उच्चारित ध्वनियाँ (अ), (आ), (म्) तथा सर्वप्रथम उच्चारित शब्द 'ता' माना है।

(4) अर्थ-विज्ञान—मनोविज्ञान को भाषा-विज्ञान से सबसे अधिक सहायता 'अर्थ'-विज्ञान' के क्षेत्र में प्राप्त होती है। इस सम्बन्ध में व्होर्फ ने भाषा-विज्ञान को तत्त्वत: 'अर्थ की खोज' करने वाला विषय बतलाया है तथा अर्थ की उपेक्षा करने के कारण अपने समय के मनोविज्ञान के सभी सम्प्रदायों की आलोचना की है। ब्लूमफील्ड के बाद 'संरचनात्मक भाषा-विज्ञान' में 'अर्थ' उपेक्षित हो गया था किन्तु सातवें दशक से भाषा विवेचना में 'अर्थ' की पुन: समाहित किया जाने लगा

है। भाषा के प्रत्येक स्तर पर 'अर्थ' को 'वितरण' के समान महत्वपूर्ण मानकर 'अर्थ का वितरणात्मक विश्लेषण किया जा रहा है। फर्थ ने अर्थ के विश्लेषण के लिए 'परिस्थिति-संदर्भ' पद्धति का आविष्कार किया है जिसमें शब्द के सहप्रयोगों के आधार पर उसका अर्थ निर्धारित किया जाता है। काट्ज तथा फोडर ने शब्द के पूरे अर्थ को अर्थ-परमाणुओं के रूप में खंडित करने की विधि प्रतिपादित की है। अर्थीय चिह्नों के आधार पर भिन्न-भिन्न शब्दों की अर्थ-भिन्नता तथा एक ही शब्द के अनेकार्थक अणुओं को वस्तुपरक पद्धति से विश्लेषित किया जा सकता है। शब्द के आत्मगत प्रभाव से इतर, अर्थ के अध्ययन की वस्तुगत पद्धति के लिए मनोविज्ञान को भाषा-विज्ञान से मार्गदर्शन मिल सकता है।

(5) अन्य-भाषी व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक परीक्षण—भाषा-विज्ञान की मान्यता है कि एक भाषा के शब्द का पर्याय दूसरी भाषा में खोजना दुष्कर है। शब्द के पूर्ण पर्याय प्रायः नहीं होते। प्रत्येक भाषा के व्यक्ति का दृष्टिकोण अपनी भाषा की संरचना से प्रभावित होता है।

मनोवैज्ञानिक अन्य-भाषी व्यक्ति के वाक्-व्यवहार का परीक्षण किस प्रकार सम्पन्न करें ? हम उससे यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि एक व्यक्ति के वाक्-व्यवहार का परीक्षण करने के लिए वह अन्य-भाषी व्यक्ति की भाषा सीखें। मनोवैज्ञानिक सामान्यतः अनुवाद के माध्यम से परीक्षण कार्य करता है। यहाँ हम जोर देकर यह कहना चाहते हैं कि उसे अनुवाद के माध्यम से परीक्षण करते समय सतर्कता बरतनी चाहिए।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'अर्थ' के परिमापन का अर्थ 'व्यवहार का परिमापन' है। भाषा-विज्ञान मनोवैज्ञानिक को संचेत करता है कि उसे भाषागत संरचना तथा शब्द के सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़े हुए भावार्थ को ध्यान में रखकर परीक्षण-कार्य करना चाहिए।

भारतवर्ष में अंग्रेजी के माध्यम से कार्य करने वाले मनोविश्लेषक जब इन तथ्यों पर ध्यान नहीं देते तो अपने विश्लेषण में सही मार्ग से भटक जाते हैं।

यदि मनोविश्लेषक को किसी अन्य भाषा-क्षेत्र में स्थाई रूप से अन्य-भाषी व्यक्तियों का परीक्षण-कार्य करना हो तो उसे उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा का ज्ञान होना चाहिए तथा स्थानीय सांस्कृतिक एवं भावात्मक शब्दों के अर्थ-प्रयोगों से सुपरिचित होना चाहिए।

(6) चिन्तन-चाम्स्की के व्याकरण—दर्शन ने मनोविज्ञान को चिन्तन की विशिष्ट आधार भूमि प्रदान की है। चाम्स्की की मान्यता है कि

मनुष्य पशु से प्रज्ञा या विचारणा के कारण नहीं अपितु 'भाषा-सामर्थ्य' के कारण भिन्न है। चाम्स्की ने 'सार्वभाषिक-व्याकरण' का दर्शन प्रस्तुत किया है। विशिष्ट भाषा के व्यक्ति की 'भाषा-सामर्थ्य एवं 'भाषा-निष्पादन' अन्तर किया है। 'सार्वभाषिक व्याकरण' भाषाओं की सार्वभौमिक विशेषताओं का आकलन है, भाषाओं से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण है, सभा भाषाओं में अन्तर्निहित संरचना के सामान्य लक्षणों की खोज है। इन सामान्य लक्षणों का अन्तिम आधार मानव मस्तिष्क है। भाषा-अर्जन की चेतना-शक्ति के कारण एक बच्चा संसार की किसी भी भाषा को सीख लेता है। इस आधार पर चाम्स्की, लेनबर्ग एवं मेकनील आदि विद्धानों ने भाषा-अर्जन की 'चेतना-शक्ति' को जन्मजात माना है। चेतना-शक्ति् मानसिक है। भाषा सीखने की सामर्थ्य का आधार 'मानसिक' है। विशेष भाषा के बोलने का आधार 'व्यवहार-अभ्यास है। व्यक्ति व्यवहार में भाषा का 'निष्पादन' करता है। निष्पादन की स्थिति में स्मृति, ध्यान रुचि आदि कारणों के भेदों के कारण प्रत्येक व्यक्ति के वाक्-व्यवहार में अन्तर आ जाता है। चाम्स्की ने भाषा की मानसिक यांत्रिकता का विश्लेषण कर, संज्ञान का मूल आधार भाषा-शक्ति को स्वीकार किया है तथा संज्ञानात्मक-मनोविज्ञान का चिन्तन की नयी भूमिका प्रदान की है।

मनोविज्ञानः भाषा-विज्ञान के लिए सहायक

(1) भाषा का मानसिक पक्ष—भारतीय परम्परा भाषा की मानसिक-क्रिया तथा वाचिक-क्रिया दोनों को महत्त्व देती है। मनोविज्ञान भाषा के मानसिक पक्ष के सामान्य स्वरूप का अध्ययन करता है। यह भाषा के बोलने, सुनने, ग्रहण करने तथा शब्दार्थ प्रतीति करने पर विभिन्न मानसिक स्थितियों के प्रभाव की विवेचना करता है।

(2) तंत्रिका-मनोविज्ञान ध्वनिविज्ञान—व्यक्ति के मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होता है। इससे तंत्रिकायें उत्तेजित होती हैं। तंत्रिकायें वाक्-अवयवों को ध्वनि-उच्चारण के लिए प्रेरित करती हैं। ध्वनि लहरें श्रोता के कानों के विभिन्न मार्गों को कम्पित करती हैं। कान के अन्तिम भाग से सम्बद्ध श्रवण-तंत्रिका के माध्यम से ध्वनि-लहरें मस्तिष्क तक पहुँचती हैं।

'तंत्रिका-मनोवैज्ञानिक ध्वनिविज्ञान' में वाक्-व्यवहार से सम्बन्धित तंत्रिकाओं का तथा उनके मस्तिष्क एवं पेशियों से अन्तसम्बन्ध का अध्ययन किया जाता

है। इस दृष्टि से वाटसन, जेकब्सन, मैक्स फिस आदि मनोवैज्ञानिकों के कार्य नयी दिशा प्रदान कर सकते हैं।

(3) वाक्य विज्ञान-किसी व्यक्ति के वाक्य प्रयोग से उसकी मन:स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

एक ग्लास के आधे भाग में पानी है।

एक व्यक्ति का कहना है कि ग्लास आधा भरा है।

दूसरा व्यक्ति का कहना है कि ग्लास आधा खाली है।

दो व्यथ्कत्यों की उपर्युक्त अभिव्यक्तियों उनकी भिन्न मानसिकता की द्योतक हैं। चाम्स्की की मान्यता है कि प्रत्येक भाषा के बोलने वाले के मस्तिष्क में भाषा की आन्तरिक संरचना के मूलभूत नियम होते हैं। भाषा-सामर्थ्य के कारण वह ऐसे वाक्यों का प्रजनन कर पाता है, जो उसने कभी नहीं सीखे। श्रोता के रूप में वह ऐसे वाक्यों को समझ लेते हैं, जो उसने पहले नहीं सुने। वक्ता प्रयुक्त भाषा रूप 'निष्पादन' है, जो वक्ता की मानसिक स्थितियों के अनुरूप प्रभावित होता है। मनोविज्ञान भाषा-सामर्थ्य विषयक सूत्रों या नियमों की खोज करने तथा भाषा-निष्पादत सम्बन्धी अध्ययन करने में सहायक है।

(4) अर्थ विज्ञान-शब्द के अर्थ पर विचार करते समय भाषा वैज्ञानिक की दृष्टि वस्तुपरक होती है। वैयाकरण किसी भाषा का व्याकरण तैयार करते समय यह जानना चाहता है कि उस भाषा का विवेच्य शब्द अथवा वाक्य सार्थक है या नहीं ? कोशकार पर्याय, अनेकार्थक तथा सर्वनाम शब्दों के संग्रह की दृष्टि से शब्दों के अर्थों पर विचार करता है। ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान में किसी शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया जाता है, उसके इतिहास की व्याख्या प्रस्तुत करते समय उसके अर्थ की विकास-परम्परा पर वस्तुगत दृष्टि से प्रकाश डाला जाता है। इधर 'अर्थ' को भाषा के प्रत्येक स्तर पर विश्लेषित करने का जो प्रयास हो रहा है, उसमें भी शब्द के अनिधेयार्थ एवं भाषा के व्यवस्था एवं संरचना रूपों के अर्थ-निर्धारण पर दृष्टि केन्द्रित है। मनोविज्ञान अर्थ का अध्ययन मनुष्य के व्यवहार को जानने की दृष्टि से करता है। वह शब्द के अर्थ का परिमापन करता है। शब्द-प्रयोग के समय वक्ता की मानसिक स्थिति की दृष्टि से तथा श्रोता की उत्तेजन-प्रतिक्रिया की दृष्टि से विचार करता है। मनोवैज्ञानिक के लिए अर्थ का परिमापन मनुष्य के व्यवहार का परिमान है। इस कारण मनोविज्ञान में 'अर्थ' पर अनेक दृष्टियों से विचार किया जाता है। मनोवैज्ञानिक शब्द के बोलने एवं सुनने के समय सामान्य शारीरिक प्रतिक्रियाओं का तथा विशिष्ट शब्दों के बोलते समय

वक्ता की एवं सुनते समय श्रोता की विशिष्ट शारीरिक-प्रतिक्रियाओं का अंकर करता है। यह 'सीखने'' की प्रक्रिया पर विशद् विचार करता है। शब्द एवं अर्थ को सीखते समय की प्रक्रिया, प्रतिक्रिया, व्यवधान क्रम आदि का अध्ययन करता है। वाचक तथा वाक्य के सम्बन्ध स्थापन से उत्पन्न अर्थ-प्रक्रिया का विश्लेषण करता है। अर्थ के परिमापन के लिए सांख्यिकी-तकनीक भी अपनाता है। अर्थ परिमापन की विविध विधियों को अपनाने के उपरान्त 'अर्थ-निर्धारण' करता है।

अर्थ आत्मगत है अर्थात् अर्थ का बोध 'व्यक्ति' को होता है, किन्तु अर्थ का विविध विधियों से परिमापन करने के कारण इसका निर्धारण सम्भव है।

'सोस्यूर', 'आग्डेन एवं रिचर्ड्स, 'व्लूमफील्ड' एवं 'येल्मस्लेव' के अर्थ सम्बन्धी विचार मनोवैज्ञानिक चिन्तन से प्रभावित हैं।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से शब्द के 'अधिधेयार्थ' पर विचार किया जा सकता है। भाषा-प्रयोग के समय कुछ शब्द विशिष्ट भावात्मक तथा संवदनात्मक व्यापारों का सम्प्रेषण करते हैं। शब्दों की 'अभिधा' के अतिरिक्त 'लक्षणा' एवं 'व्यंजना' शक्तियाँ भी हैं जिनके कारण 'लक्ष्यार्थ' एवं 'व्यंग्यार्थ' का बोध होता है।

भाषा-विज्ञान को, शब्द के लक्ष्यार्थ, व्यग्यार्थ एवं भाषा के द्वारा व्यक्त भावात्मक एवं संकल्पनात्मक अर्थों के परिमापन एवं निर्धारण में, मनोविज्ञान से दिशा प्राप्त करनी चाहिए।

(5) भाषा अर्जन तथा बच्चों में भाषा का विकास–इन दिशा में दोनों विषय परस्पर सहायक हैं। मनोविज्ञान के अध्ययन का एक क्षेत्र 'सीखना' है। भाषा सीखने का मूल आधार क्या है ? सीखने की मानसिक-सामर्थ्य के कारण भाषा सीखी जाती है या समाज में भाषा रूपों को सुनकर व्यक्ति अपनी आदत का निर्माण करता है ? इनमें किस पर बल देना चाहिए ? मनोविज्ञान में भाषा-अर्जन सम्बन्धी भिन्न दृष्टिकोण हैं, इनका प्रभाव व्याकरण के रचना-सांचों पर पड़ा है।

बच्चों में भाषा का विकास किस प्रकार होता है ? सर्वप्रथम शिशु किन ध्वनियों का उच्चारण करता है। विभिन्न भाषाओं के शिशु ध्वनियों, शब्दरूपों, वाक्यरूपों को क्रमशः किस प्रकार तथा कितना सीखते हैं। मनोविज्ञान में इन सभी पक्षों की विवेचना की जाती है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन से किसी भाषा के आधारभूत वाक्य-साँचों, सर्वाधिक प्रयुक्त व्याकरणिक रूपों, आधारभूत-शब्दावली, भेदक ध्वनि रूपों, प्राथमिक ध्वनिग्रामों, तथा भेदक तत्त्वों की पहचान में सहायता मिल जाती है। इससे भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन में भी सहायक ली जा सकती है (दे0 मनोभाषा-विज्ञान, अध्ययन 12)

(6) अन्य-भाषा शिक्षण–अन्य भाषा सीखते समय प्रशिक्षणार्थी सचेत होता है। मनोविज्ञान अन्य-भाषा को अधिकाधिक सहज रूप में सिखाने के सम्बन्ध में भाषा-वैज्ञानिक की सहायत करता है।

अन्य भाषा सीखना अधिगत-व्यवहार है। सीखने में प्रशिक्षणार्थी की रुचि, लगन, प्रेरणा का महत्त्व निर्विवाद है। मनोविज्ञान की सहायता से प्रशिक्षणार्थी की मनोवैज्ञानिक स्थिति तथा उसके भाषा-कौशल का परिमापन किया जाता है।

लेखक को विदेशी छात्रों को हिन्दी पढ़ाते समय उनके भाषा-अर्जन के सापेक्षिक अंतरों का अनुभव हुआ है। बेल्जियम देश की फ्लेमिश-भाषी श्रीमती एलिजाबेध खान ने हिन्दी ने हिन्दी सीखने में अत्यधिक उत्साह एवं निष्ठा दिखायी। उन्होंने बहुत जल्दी भाषा सीखी। इसके कारणों में से सर्वप्रथम कारण 'प्रेरणा' थी। बेल्जियम में उनका विवाह हिन्दी भाष श्री खान से हुआ। अपने पति से हिन्दी में बात कर सकने की आवश्यकता के कारण उन्होंने हिन्दी सीखने के लिए बेल्जियम शासन के शिक्षा मंत्रालय को छात्रवृत्ति प्राप्त की। वे उसी छात्रवृत्ति पर भारत में हिन्दी सीखने आयीं तथा उन्होंने सापेक्षिक दृष्टि से कम समय में हिन्दी बोलना सीख लिया।

(7) शैलीविज्ञान–प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग स्थितियों में भिन्न शैलियों का प्रयोग करता है। इसी कारण उसकी बात कभी मीठी हो जाती है तो कभी कड़वी, कभी रसीली, तो कभी नीरस। कभी बात से रस टपकता है तो कभी क्रोध प्रकट होता है। कभी व्यक्ति मधुर बात करता है जिससे दिल मिल जाता है, कभी तीखी बात करना है जिससे दिल फट जाता है। कभी उसकी बात को महत्त्वपूर्ण माना जाता है तो कभी फालतू। प्रत्येक रचनाकार की अपनी शैली होती है। 'चयन' एवं 'विचलन-प्रयोगों' का व्यक्ति की मानसिक स्थिति से सम्बन्ध है। इस दृष्टि से मनोविज्ञान 'शैली प्रयोगों' का व्यक्ति की मानसिक स्थिति से सम्बन्ध है। इस दृष्टि से मनोविज्ञान 'शैलीविज्ञान' का सहायक है।

(8) भाषा-परिवर्तन–मनोवैज्ञानिक कारणों से भाषा के प्रत्येक स्तर पर परिवर्तन होता है। ध्वन्यात्मक स्तर पर बनकर बोलने, बोलने में शीघ्रता करने तथा भावातिरेक में बोलने के कारण शब्दों के उच्चारण बदल जाते हैं साँप-शाँप, पण्डित जी-पण्डिज्जी तथा बेटी-बिटिया में यह प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हैं।

इसी प्रकार व्याकरणिक स्तर पर वाक्य की रचना बदल जाती है। जब यह बदलाव 'सामाजिक-मनोविज्ञान' के धरातल पर होता है तो भाषा की व्यवस्था एवं संरचना भी परिवर्तित हो जाती है। हिन्दी में वर्तमान-सातत्य-क्रिया धरातल पर पुल्लिंग बहुवचन प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ रही है। एक विद्यार्थी भी कहता है-'हम जा रहे हैं, हम पढ़ रहे हैं। वचन भेद की समाप्ति के साथ ही लिंग भेद भी मिट रहा है। एक लड़की भी कक्षा में बोलते हुए सुनी जा सकती है-'सर'! हम पढ़ रहे हैं।'

शब्दों में अर्थ-परिवर्तन के लिए मनोविज्ञान बहुत अधिक उत्तरदायी है। नम्रता से प्रेरित व्यक्ति दूसरे से पूछता है-''आपका दौलतखाना कहाँ है ? मेरे गरीब खाने पर कभी तशरीफ लाइए।'' व्यंग्य में पूछने के कारण ही 'महात्मा', 'महापण्डित', 'नेता' के अर्थ बदल रहे हैं। 'आप तो पूरे महात्मा हैं, 'आप महापण्डित जो ठहरे।' 'और सुनाओ नेताजी, क्या हाल-चाल है।' प्राचीन अवेस्ता (जेन्दावेस्ता ग्रन्थ की भाषा, फारसी भाषा की पूर्ववर्ती भाषा) में 'अहुर' में 'असुर' का अर्थ 'देवता' है। भारत का असुर का अर्थ राक्षस और सुर का अर्थ देवता है। इस अर्थ-भेद का कारण ईरानी-आर्य शाखा और भारतीय-आर्य शाखा के बीच तत्कालीन व्याप्त मनोवैज्ञानिक घृणा है। श्री रामधारीसिंह दिनकर आदि के निष्कर्ष इसका समर्थन करते हैं।

भावावेग की मन:स्थिति में जब कोई 'सोल', 'बेटा', 'नालायक' का उच्चारण करता है तो इनका वही अर्थ नहीं होता जो सामान्य स्थिति में होता है।

(9) भाषा चिन्तन–मनोविज्ञान ने भाषा चिन्तन को प्रभावित किया है। इसे 'ब्लूमफील्ड' एवं 'चास्की' के उदाहरणों से समझा जा सकता है। ब्लूमफील्ड व्यवहारवादी हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञान की मान्यता है कि मनुष्य के व्यवहार का निरीक्षण परीक्षण सम्भव हैं, मन का नहीं। व्यवहार को समझने के लिए अनुभव, चेतना और अन्तर्निरीक्षण का कोई महत्व नहीं है। उद्दीपनों और प्रतिक्रियाओं के अध्ययन से व्यवहार को समझा जा सकता है। इस प्रकार मनोविज्ञान 'मन का विज्ञान' नहीं 'व्यवहार का विज्ञान' है। ब्लूमफील्ड ने भाषा

को विशेष उद्धीन से प्रेरित विशेष वाचिक प्रतिक्रिया कहा है। इनका भाषा-दर्शन व्यवहारवादी मनोविज्ञान या यांत्रिकमनोविज्ञान पर आश्रित है। इन्होंने एक मनुष्य के आचरण की दूसरे मनुष्य के आचरण से भिन्नता का कारण अभौतिक गुणक (मनस या मनःशक्ति या आत्मा) को स्वीकार नहीं किया है। इन्होंने मानवीय आचरण का अध्ययन भौतिकी या रसायनशास्त्र की तरह करने में विश्वास प्रकट किया है। इन्होंने 'मनोवादी मनोविज्ञान' या 'मानसिकवाद' की व्याख्यात्मक प्रणाली को स्थान नहीं दिया है अपितु 'यांत्रिक-विज्ञान' की वस्तुपरक पद्धति को महत्व दिया है। इन्होंने भाषा को वत्ता के मानसिक पक्ष से नहीं जोड़ा विशेष उद्दीपन से प्रेरित भाषिक व्यवहार या भाषिक प्रतिक्रिया को भाषा माना है। भाषा परक तथ्यों का अध्ययन रूपात्मक-विश्लेषण के आलोक में करने का उद्घोष किया है।

चाम्स्की का भाषा चिन्तन ब्लूमफील्ड के भाषा चिन्तन से भिन्न है। चाम्स्की के भाषा- अध्ययन तथा संज्ञात्मक मनोविज्ञान में गहरा सम्बन्ध है। चाम्स्की के भाषा अध्ययन का आधार व्यवहारवादी मनोविज्ञान का 'उत्तेजन-प्रतिक्रिया व्यवहार' नहीं है। यह संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की 'संज्ञान' की अवधारणा से प्रभावित है। 'संज्ञान' एक व्यापक शब्द है। यह स्मृति एवं चिन्तन की प्रक्रिया का द्योतक है, इसमें जानने का आधार मानसिक क्रियाएं- प्रत्यक्षण, स्मरण, समझना, तर्क, निर्णय आदि मानसिक क्रियाएं हैं। 'संवेदन' तथा 'संज्ञान' में अन्तर है। संवदेन के द्वारा प्राणी को उत्तेजन का आभास मात्र होता है ज्ञान नहीं होता। 'संज्ञान' से मनुष्य के संवेदन संगठित होते हैं, सार्थक बनते हैं। मनुष्य अन्य प्राणियों से इस कारण श्रेष्ठ है कि वह 'संज्ञान-शक्ति' के द्वारा 'संवेदनों' को नाम, रूप, गुण आदि भेदों से संविशेष बनाकर ज्ञान प्राप्त करता है। चाम्स्की ने संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की भाँति भाषिक-सामर्थ्य को मानसिक वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया है। इन्होंने भाषा-व्याकरण का उद्देश्य निष्पादित सामग्री में अन्तर्निहित तथा भाषा-भाषियों के मस्तिष्क में विद्यमान सामर्थ्य नियमों की खोज करना माना है। इसी सामर्थ्य के कारण भाषा का कोई वक्ता परिस्थिति के अनुकूल नए-नए वाक्यों को बना पाता है। चाम्स्की ने संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की अवधारणाओं के आधार पर एक ओर अपना भाषा-दर्शन स्थापित किया है तो दूसरी ओर अपने चिन्तन द्वारा मानव-मस्तिष्क के अध्ययन की दिशा में योगदान भी दिया है।

अध्ययन की स्वतन्त्र दृष्टियाँ

भाषा-विज्ञान एवं मनोविज्ञान परस्पर एक दूसरे की सहायता तो करते हैं, किन्तु फिर भी दोनों के अध्ययन की स्वतंत्र दृष्टियाँ एवं विधियाँ हैं। भाषा-विज्ञान वाक्-व्यवहार का अध्ययन वाक्-संरचना की दृष्टि से करता है, किन्तु मनोविज्ञान वाक्-व्यवहार का अध्ययन मनुष्य के व्यवहार को जानने की दृष्टि से करता है। भाषा-विज्ञान एवं मनोविज्ञान में गहरा सम्बन्ध होने के कारण एक नया विषय विकसित हुआ है जिसको मनोभाषा-विज्ञान के नाम से पुकारा जाता है। मनोभाषा-विज्ञान के अन्तर्गत भाषा-अभिव्यक्ति के मानसिक पक्ष के सम्बन्ध में भाषा वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से विचार किया जाता है।

5

भाषा की उत्पत्ति, प्रकार्य एवं विशेषताएँ

भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए दो मुख्य आधार है– (1) प्रत्यक्ष मार्ग और (2) परोक्ष मार्ग

प्रत्यक्ष मार्ग

भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का उल्लेख किया है, जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं–

दिव्य उत्पत्ति का सिद्धान्त

भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को मानने वाले भाषा को ईश्वर की देन मानते हैं। इस प्रकार न तो वे भाषा को परम्परागत मानते हैं और न मनुष्यों द्वारा अर्जित। इन विद्वानों के अनुसार भाषा की शक्ति मनुष्य अपने जन्म के साथ लाया है और इसे सीखने का उसे प्रयत्न करना नहीं पड़ा है। इस सिद्धान्त को मानने वाले विभिन्न धर्म ग्रन्थों का उदाहरण अपने सिद्धान्त के समर्थन में देते हैं। हिन्दू धर्म मानने वाले वेदों को, इस्लाम धर्मावलम्बी कुरान शरीफ को, ईसाई बाइबिल को। वे भाषा को मनुष्यों की गति न मानकर ईश्वर निर्मित मानते हैं और इन ग्रन्थों में प्रयुक्त भाषाओं को

संसार की विभिन्न भाषाओं की आदि भाषायें मानते हैं। इसी प्रकार बौद्ध अपने धर्मग्रन्थों की भाषा पाली को मूल भाषा मानते हैं।

धातु सिद्धान्त

भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी दूसरा प्रमुख सिद्धान्त धातु सिद्धान्त है। सर्वप्रथम प्लेटो ने इस ओर संकेत किया था। परन्तु इसकी स्पष्ट विवेचना करने का श्रेय जर्मन विद्वान प्रो. हेस को है। इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न वस्तुओं की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति प्रारम्भ में धातुओं से होती थी। इनकी संख्या आरम्भ में बहुत बड़ी थी परन्तु धीरे-धीरे लुप्त होकर कुछ सौ ही धातुएं रही। प्रो. हेस का कथन है कि इन्हीं से भाषा की उत्पत्ति हुई है।

संकेत सिद्धान्त

यह सिद्धान्त अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ क्योंकि इसका आधार काल्पनिक है और यह कल्पना भी आधार रहित है। इस सिद्धान्त के अनुसार सर्वप्रथम मनुष्य बन्दर आदि जानवरों की भाँति अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति भावबोधक ध्वनियों के अनुकरण पर शब्द बनायें होगें। तत्पष्चात उसने अपने संकेतों के अंगों के द्वारा उन ध्वनियों का अनुकरण किया होगा। इस स्थिति में स्थूल पदार्थो की अभिव्यक्ति के लिए शब्द बने होंगे। संकेत सिद्धान्त भाषा के विकास के लिए इस स्थिति को महत्वपूर्ण मानता है। उदाहरण के लिए पत्ते के गिरने से जो ध्वनि होती है, उसी आधार पर "पत्ता" शब्द बन गया।

अनुकरण सिद्धान्त

भाषा उत्पत्ति के इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा की उत्पत्ति अनुकरण के आधार पर हुई है। इस सिद्धान्त के मानने वाले विद्वानों का तर्क है कि मनुष्य ने पहले अपने आस-पास के जीवों और पदार्थों की ध्वनियों का अनुकरण किया होगा और फिर उसी आधार पर शब्दों का निर्माण किया होगा। उदाहरण के लिए काऊँ-काऊँ ध्वनि निकालने वाले पक्षी का नाम इसी ध्वनि के आधार पर संस्कृत में काक, हिन्दी में कौआ तथा अंगेजी में बतवू पड़ा। इसी प्रकार बिल्ली की "म्याऊँ" ध्वनि के आधार पर चीनी भाषा में बिल्ली को "मियाऊ" कहा जाने लगा। इस प्रकार यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि भाषा की उत्पत्ति अनुकरण सिद्वान्त पर हुई है।

अनुसरण सिद्धान्त

यह सिद्धान्त भी अनुकरण सिद्धान्त से मिलता है। इस सिद्धान्त के मानने वालों का भी यही तर्क है कि मनुष्यों ने अपने आस-पास की वस्तुओं की ध्वनियों के आधार पर शब्दों का निर्माण किया है। इन दोनों सिद्धान्तों में अन्तर इतना है कि जहाँ अनुकरण सिद्धान्त में चेतन जीवों की अनुकरण की बात थी, वहीं इस सिद्धान्त में निर्जीव वस्तुओं के अनुकरण की बात है। उदाहरण के लिए नदी की कल-कल ध्वनि के आधार पर उसका नाम कल्लोलिनी पड़ गया। इस प्रकार हवा से हिलते दरवाजे की ध्वनि के आधार पर लड़खड़ाना,बड़बड़ाना जैसे शब्द बने। अंग्रेजी के Murmur, Thunder जैसे शब्द भी इसी अनुसरण सिद्धान्त के आधार पर बनें।

श्रम परिहरण सिद्धान्त

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और परिश्रम करना उसकी स्वाभाविक विशेषता है। श्रम करते समय जब थकने लगता है तब उस थकान को दूर करने के लिए कुछ ध्वनियों का उच्चारण करता है। न्वायर नामक विद्वान ने इन्हीं ध्वनियों को भाषा उत्पत्ति का आधार मान लिया है। उसके अनुसार कार्य करते समय जब मनुष्य थकता है तब उसकी सांसे तेज हो जाती हैं। साँसों की इस तीव्र गति के आने जाने के परिणामस्वरूप मनुष्य के वाग्यंत्र की स्वर-तन्त्रियाँ कम्पित होने लगती है और अनेक अनुकूल ध्वनियाँ निकलने लगती हैं फलस्वरूप मनुष्य के श्रम से उत्पन्न थकान बहुत कुछ दूर हो जाती है। इसी प्रकार ठेला खींचने वाले मजदूर हइया ध्वनि का उच्चारण करते हैं। इस सिद्धान्त के मानने वाले इन्हीं ध्वनियों के आधार पर भाषा की उत्पत्ति मानते हैं।

मनोभावसूचक सिद्धान्त

भाषा उत्पत्ति का यह सिद्धान्त मनुष्य की विभिन्न भावनाओं की सूचक ध्वनियों पर आधारित है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक मैक्समूलर ने इसे पूह-पूह सिद्धान्त कहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य विचारशील होने के साथ-साथ भावनाप्रधान प्राणी भी है। उसके मन में दु:ख, हर्ष, आश्चर्य आदि अनेक भाव उठते हैं। वह भावों को विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण के द्वारा प्रकट करता है जैसे प्रसन्न होने पर अहा। दुखी: होने पर आह। आश्चर्य में पड़ने पर अरे जैसी

ध्वनियों का उच्चारण करता है। इन्हीं ध्वनियों के आधार पर यह सिद्धान्त भाषा की उत्पत्ति मानता है।

विकासवाद का समन्वित रूप

भाषा उत्पत्ति की खोज के प्रत्यक्ष मार्ग का यह सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वीट ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया था। उन्होंने भाषा की उत्पत्ति के उपर्युक्त सिद्धान्तों के कुछ सिद्धान्तों को लेकर इनके समन्वित रूप से भाषा की उत्पत्ति की है। यह सिद्धान्त तीन है–अनुकरणात्मक, मनोभावसूचक और प्रतीकात्मक। स्वीट के अनुसार भाषा अपने प्रारम्भिक रूप में इन तीन अवस्थाओं में थी। इस प्रकार भाषा का आरम्भिक शब्द समूह तीन प्रकार का था।

पहले प्रकार के शब्द अनुकरणात्मक थे अर्थात दूसरे जीव जन्तुओं की ध्वनियों का अनुकरण करके मनुष्य ने वे शब्द बनायें थे, जैसे चीनी मियाऊँ, बिल्ली की मियाऊँ ध्वनि के आधार पर बना और बिल्ली नामक जानवर का नाम ही पड़ गया। इसी प्रकार कौए के बोलने से उत्पन्न ध्वनि के आधार पर हिन्दी में कौआ और संस्कृत में उसे काक कहा जाने लगा।

स्वीट के अनुसार भाषा की प्रारम्भिक अवस्था के दूसरे प्रकार के शब्द मनोभावसूचक थे। मनुष्य अपने अन्तर्मन की भावनाओं को प्रकट करने के लिए इस प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण करता होगा और कालान्तर में उन्हीं ध्वनियों ने भावों को सूचित करने वाले शब्दों का रूप ले लिया। आह, अहा आदि शब्द ऐसे ही विभिन्न भावसूचक हैं।

तीसरे प्रकार के शब्दों के अन्तर्गत स्वीट ने प्रतीकात्मक शब्दों को रखा। उनके अनुसार भाषा की प्रारम्भिक अवस्था में इस प्रकार के शब्दों की संख्या बहुत अधिक रही होगी। प्रतीकात्मक शब्दों का तात्पर्य ऐसे शब्दों से है, जो मनुष्य के विभिन्न सम्बन्धों से जैसे खाना-पीना, हँसना-बोलना आदि और विभिन्न सर्वनामों जैसे यह, वह, मैं, तुम आदि के प्रतीक बन गये हैं। स्वीट का मत था कि इन शब्दों की संख्या प्रारम्भ में बहुत व्यापक रही होगी और इसीलिए उन्होंने प्रथम तथा द्वितीय वर्ग से बचे उन सभी शब्दों को भी इस तीसरे वर्ग में रखा है जिनका भाषा में प्रयोग होता है।

इस प्रकार स्वीट के अनुसार अनुकरणात्मक, भावबोधक तथा प्रतीकात्मक शब्दों के समन्वय से भाषा की उत्पत्ति हुई है और फिर कालान्तर में प्रयोग प्रवाह

में आकर भाषा में बहुत से शब्दों का अर्थ विकसित हो गया और नये शब्द बनते चले गये।

परोक्ष मार्ग

भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए प्रत्यक्ष मार्ग के अतिरिक्त परोक्ष मार्ग भी है। इस मार्ग के अंतर्गत भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने की दिशा उल्टी हो जाती है अर्थात् हम भाषा के वर्तमान रूप का अध्ययन करते हुये अतीत की ओर चलते हैं। इस मार्ग के अंतर्गत अध्ययन की तीन विधियां हैं–

शिशुओं की भाषा

कुछ भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि शिशुओं के द्वारा प्रयुक्त शब्दों के आधार पर हम भाषा की आरंभिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ? शिशुओं की भाषा बाह्य प्रवाहों से उतना प्रभावित नहीं रहती जितनी की मनुष्यों की भाषा। इसलिए बच्चों की भाषा के अध्ययन से यह पता लगाया जा सकता है कि भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई होगी। क्योंकि जिस प्रकार बच्चा अनुकरण से भाषा सीखता है उसी प्रकार मनुष्यों ने भाषा सीखी होगी।

असभ्यों की भाषा

कुछ भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा उत्पत्ति की खोज संसार की असभ्य जातियों के द्वारा प्रयुक्त भाषाओं के अध्ययन के द्वारा की जा सकती है। असभ्य जातियाँ चूंकि संसार के सभ्य क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव से बची रहती हैं अत: उनकी भाषा भी परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होती। अत: उनकी भाषाओं के अध्ययन और विश्लेषण से भाषा की प्रारंभिक अवस्था का पता चल सकता है।

आधुनिक भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन

भाषा की उत्पत्ति की खोज का एक आधार भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन भी है। इस सिद्धांत के अनुसार हम एक वर्तमान भाषा को लेकर प्राप्त सामग्री के आधार पर भाषा के इतिहास की खोज करते हैं। इस खोज में हमें अतीत की ओर लौटना पड़ता है। अतीत की यह यात्रा तब तक चलती रहती है जब तक हमें उस भाषा विशेष के प्राचीनतम आधार न मिल जायें।

भाषा उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए परोक्ष मार्ग का यह सिद्धांत अधिक उपयुक्त है। उपयुक्तता का यह कारण इस खोज की विश्वसनीयता है क्योंकि इस खोज के अंतर्गत हम भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। यह अध्ययन कई आधारों पर होता है जैसे–रूप,ध्वनि, अर्थ आदि। अध्ययन के ये आधार वैज्ञानिक हैं फलस्वरूप किसी भाषा विशेष की ऐतिहासिक खोज अधिक विश्वसनीय हो जाती है यही कारण है कि भाषा की उत्पत्ति का यह सिद्धांत अधिक उपयुक्त एवं मान्य है।

भाषा के प्रकार्य

भाषा का प्रकार्यात्मक अध्ययन प्राग स्कूल की देन है। अत: प्राग संप्रदाय को प्रकार्यवादी संप्रदाय भी कहा जाता है। प्राग संप्रदाय में इस दिशा में कार्य करने वाले भाषा वैज्ञानिक रोमन याकोव्यसन और मार्तिनेकर हैं। अत: उन्हें प्रकार्यवादी भी कहा जाता है।

भाषिक प्रकार्य–में भाषा का विश्लेषण सामान्य संरचना के आधार पर नहीं किया जाता। प्रकार्यवादी भाषा के विभिन्न प्रकार्यों के आधार पर भाषा का विश्लेषण करते हैं।

सामान्यत: भाषा के अंतर्गत आने वाली इकाइयों के अपने प्रकार्य होते हैं। जिनका अध्ययन भाषा-विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। किंतु प्राग संप्रदाय ने भाषा के अपने प्रकार्यों को अध्ययन का विषय बनाया। रोमन याकोव्यसन के अनुसार भाषा को तीन दृष्टियों से देखना चाहिये।

(1) वक्ता,
(2) श्रोता,
(3) संदर्भ।

वक्ता की दृष्टि से भाषा अभिव्यक्ति प्रकार्य करती है, श्रोता की दृष्टि से प्रभाविक प्रकार्य करती है और संदर्भ की दृष्टि से सांप्रेषणिक प्रकार्य करती है। इसके अतिरिक्त संपर्क, कूट,और संदेश ये तीन संदर्भ भी भाषा बनाती है। अत: याकोव्यसन ने छ: प्रकार्य माने हैं।

(1) अभिव्यक्ति प्रकार्य,
(2) इच्छापरक,
(3) अभिधापरक,
(4) संपर्क द्योतक,

(5) आधिभाषिक,

(6) काव्यात्मक।

प्रकार्यवादियों के अनुसार भाषा की संरचना प्रकार्य के अनुसार बदल जाती है। इस प्रकार एक ही भाषा प्रकार्यानुसार भिन्न -भिन्न रूपों में प्रस्तुत होती है। भाषा के इन समस्त रूपों को चार भागों में सम्मिलित किया जाता है। याकोव्यसन ने वक्ता, श्रोता और संदर्भ तीन तत्त्वों के आधार पर प्रमुख तीन प्रकार बताये हैं। उपर्युक्त छः रूप भाषा के अभिव्यक्तिक संदर्भ से जुड़े हैं। अतः हम इसे निम्न रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं–

सांप्रषणिक प्रकार्य–जब वक्ता द्वारा श्रोता को कोई सूचना संप्रेषित की जाती है और सीधे विचार विनिमय होता है तो भाषा संरचना का स्तर अलग होता है जिसे हम सांप्रेषणिक प्रकार्य कहते हैं। सामान्य वार्तालाप में इसी प्रकार्य का प्रयोग होता है।

अभिव्यक्ति प्रकार्य–भाषा के द्वारा वक्ता अपने आपको अभिव्यक्त करता है। अतः हर व्यक्ति की भाषा कुछ न कुछ बदल जाती है जिसे हम उसकी शैली कह सकते हैं। भाषा के सभी स्तरों पर यह परिवर्तन दिखाई पड़ता है। यहां तक कि साहित्य-सृजन में भी कथा भाषा और काव्य-भाषा का अंतर साम्य देखा जा सकता है। इस प्रकार भाषा की संरचना एक स्तर पर नहीं होती। अभिव्यक्तिक प्रकार्यानुसार भाषा संरचना में परिवर्तन आता है।

प्रभाविक प्रकार्य–भाषा का प्रयोग जब इस रूप में होता है जिसमें संप्रेषण और आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षा श्रोता को प्रभावित करना ही मुख्य उद्देश्य हो तो उसे भाषा का प्रभाविक प्रकार्य कहा जाता है। भाषणों की भाषा मुख्यतः प्रभाविक होती है जिसका उद्देश्य श्रोता को प्रभावित करना है। अतः भाषणों की संरचना और उसका अनुमान अलग होता है। इसकी संरचना शब्दावली भी भिन्न होती है।

समष्टिक प्रकार्य–भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा के उपर्युक्त तीन प्रकार अलग-अलग अवसरों पर प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार्यो से समन्वित भाषा का अस्तित्त्व अलग होता है। जिससे सामाजिक प्रकार्य कहा जा सकता है। समन्वित भाषा संरचना का अपना प्रकार्य होता है। यह उसी प्रकार है जैसे अलग-अलग वस्तुएं अपना स्वतंत्र महत्व रखती हैं, लेकिन उन्हें एक साथ प्रस्तुत किया जाये तो किसी अन्य वस्तु का बोध कराती हैं। उदाहरण के लिए इडली,

डोसा स्वयं में अलग खाद्य हैं पर समष्टि रूप में दक्षिण भारतीय व्यंजनों के रूप में माने जायेंगें।

इसी प्रकार अलग-अलग प्रकार्य के रूप में प्रस्तुत होने पर भी भाषा की अपनी निजता होती है। सामान्य क्रम में रेडियो या आकाशवाणी कुछ कहे लेकिन समष्टिक रूप में हिंदी का प्रतिनिधित्व करने वाला शब्द आकाशवाणी है। इस तरह भाषा का जो निजी अस्तित्त्व है और अभिव्यक्ति से पृथक है उसे समष्टिक प्रकार्य कहा जा सकता है।

इसी प्रकार्यात्मक अध्ययन के आधार पर प्राग स्कूल में भाषा के मानक रूप का अध्ययन हुआ। रोमन याकोव्यसन ने भाषा के प्रकार्यों का निर्धारण करके भाषा के अभिलक्षणों और ध्वनियों का अध्ययन किया है, जो उनकी महत्वपूर्ण देन है।

भाषा की विशेषताएं

जब हम भाषा का संदर्भ मानवीय भाषा से लेते हैं तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषताएं या अभिलक्षण कौन-कौन से हैं। ये अभिलक्षण ही मानवीय भाषा को अन्य भाषिक संदर्भों से पृथक करते हैं। हॉकिट ने भाषा के सात अभिलक्षणों का वर्णन किया है। अन्य विद्वानों ने भी अभिलक्षणों का उल्लेख करते हुए आठ या नौ तक संख्या मानी है। मूल रूप से 9 अभिलक्षणों की चर्चा की जाती है–

यादृच्छिकता–'यादृच्छिकताध' का अर्थ है -माना हुआ। यहां मानने का अर्थ व्यक्ति द्वारा नहीं वरन् एक विशेष समूह द्वारा मानना है। एक विशेष समुदाय किसी भाव या वस्तु के लिए जो शब्द बना लेता है उसका उस भाव से कोई संबंध नहीं होता। यह समाज की इच्छानुसार माना हुआ संबंध है इसलिए उसी वस्तु के लिए भाषा में दूसरा शब्द प्रयुक्त होता है। भाषा में यह यादृच्छिकता शब्द और व्याकरण दोनों रूपों में मिलती है। अतः यादृच्छिकता भाषा का महत्वपूर्ण अभिलक्षण है।

सृजनात्मकता–मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषता उसकी सृजनात्मकता है। अन्य जीवों में बोलने की प्रक्रिया में परिवर्तन नहीं होता पर मनुष्य शब्दों और वाक्य-विन्यास की सीमित प्रक्रिया से नित्य नए नए प्रयोग करता रहता है। सीमित शब्दों को ही भिन्न-भिन्न ढंग से प्रयुक्त कर वह अपने भावों को

अभिव्यक्त करता है। यह भाषा की सृजनात्मकता के कारण ही संभव हो सका है। सृजनात्मकता को ही उत्पादकता भी कहा जाता है।

अनुकरणग्राहता–मानवेतर प्राणियों की भाषा जन्मजात होती है।तथा वे उसमें अभिवृद्धि या परिवर्तन नहीं कर सकते किंतु मानवीय-भाषा जन्मजात नहीं होती। मनुष्य भाषा को समाज में अनुकरण से धीरे-धीरे सीखता है। अनुकरण ग्राह्य होने के कारण ही मनुष्य एक से अधिक भाषाओं को भी सीख लेता है। यदि भाषा अनुकरण ग्राह्य न होती तो मनुष्य जन्मजात भाषा तक ही सीमित रहता।

परिवर्तनशीलता- मानव भाषा परिवर्तनशील होती है। वही शब्द दूसरे युग तक आते-आते नया रूप ले लेता है। पुरानी भाषा में इतने परिवर्तन हो जाते हैं कि नई भाषा का उदय हो जाता है। संस्कृत से हिन्दी तक की विकास यात्र भाषा की परिवर्तनशीलता का उदाहरण है।

विविक्तता–मानव भाषा विच्छेद है। उसकी संरचना कई घटकों से होती है। ध्वनि से शब्द और शब्द से वाक्य विच्छेद घटक होते हैं। इस प्रकार अनेक इकाइयों का योग होने के कारण मानव भाषा को विविक्त कहा जाता है।

द्वैतता–भाषा में किसी वाक्य में दो स्तर होते हैं। प्रथम स्तर पर सार्थक इकाई होती है और दूसरे स्तर पर निरर्थक। कोई भी वाक्य इन दो स्तरों के योग से बनता है। अत: इसे द्वैतता कहा जाता है। भाषा में प्रयुक्त सार्थक इकाइयों को रूपिम और निरर्थक इकाइयों को स्वनिम कहा जाता है। स्वनिम निरर्थक इकाइयां होने पर भी सार्थक इकाइयों का निर्माण करती हैं। इसके साथ ही ये निरर्थक इकाइयाँ अर्थ भेदक भी होती हैं–जैसे क+अ+र+अ में चार स्वनिम है, जो निरर्थक इकाइयां हैं पर कर रूपिम सार्थक इकाई हैं। इसे ही ख+अ+र+अ कर दे तो खर रूपिम बनेगा किंतु 'कर' और 'खर' में अर्थ भेदक इकाई रूपिम नहीं स्वनिम क और ख है। इस प्रकार रूपिम अगर अर्थद्योतक इकाई है तो स्वनिम अर्थ भेदक। इन दो स्तरों से भाषा की रचना होने के कारण भाषा को द्वैत कहा गया है।

भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन–भाषा में दो पक्ष होते हैं–वक्ता और श्रोता। वार्ता के समय दोनों पक्ष अपनी भूमिका को परिवर्तित करते रहते हैं। वक्ता श्रोता और श्रोता वक्ता होते रहते हैं। इसे ही भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन कहते हैं।

अंतरणता–मानव भाषा भविष्य एवं अतीत की सूचना भी दे सकती है।तथा दूरस्थ देश का भी। इस प्रकार अंतरण की विशेषता केवल मानव भाषा में है।

असहजवृत्तिकता–मानवेतर भाषा प्राणी की सहजवृत्ति आहार निद्रा भय, मैथुन से ही संबंद्ध होती है और इसके लिए वे कुछ ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। किंतु मानव भाषा सहजवृत्ति नहीं होती है। वह सहजात वृत्तियों से संबंधित नहीं होती। भाषा के ये अभिलक्षण मानवीय भाषा को अन्य ध्वनियों या मानवेत्तर प्राणियों से अलग करने में समर्थ हैं।

भाषा के विविध रूप

भाषा के स्वरूप पर विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भाषा के अनेक प्रकार होते हैं। मुख्यत: इतिहास,क्षेत्र,प्रयोग,निर्माण,मानकता और मिश्रण के आधारों पर भाषा के बहुत से रूप होते हैं।उदाहरण के लिए इतिहास के आधार पर अनेक भाषाओं की जन्मदात्री मूलभाषा जैसे संस्कृत ग्रीक आदि को प्राचीन भाषाय पाली,प्राकृत को मध्यकालीन भाषा तथा हिंदी, मराठी, बंगला को आधुनिक भाषा से इंगित किया जाता है। क्षेत्र के आधार पर भाषा का सबसे छोटा रूप बोली होती है। इनमें से प्रमुख भाषा रूप निम्नलिखित हैं–

मूलभाषा

''मूलभाषा''भाषा का वह प्राथमिक स्वरूप है, जो स्वयं किसी से प्रसूत नहीं होता अपितु वह दूसरों को ही प्रसूत करता है। भाषा की उत्पत्ति अत्यंत प्राचीन काल में उन स्थानों पर हुई होगी जहां अनेक लोग एक साथ रहते रहे होंगे। ऐसे स्थानों में से किसी एक स्थान की भाषा की निर्मिति की पहली प्रक्रिया मूलभाषा कहलाती है। जिसने कालांतर में ऐतिहासिक एवं भौगोलिक कारणों से अनेक भाषाओं,बोलियों तथा उपबोलियों को जन्म दिया होगा।

क्षेत्रीय बोलिया

जब हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं तो हमें भाषा का परिवर्तन समझ में आने लगता है। यह परिवर्तन जैसे-जैसे दूरियां बढ़ती हैं स्पष्ट समझ में आने लगता है। भाषा के ऐसे सीमित एवं क्षेत्र विशेष के रूप को बोली कहा जाता है। जो ध्वनि,रूप,वाक्य अर्थ, शब्द तथा मुहावरे आदि की दृष्टि से भिन्न हो सकती है। इस प्रकार जब एक भाषा के अंतर्गत कई अलग-अलग रूप विकसित हो जाते हैं तो उन्हें बोली कहते हैं। ये बोलियां बुंदेली, बघेली,

भोजपुरी, मालवी आदि हैं। उदाहरण के लिए –खड़ी बोली एवं बुंदेली बोली के कुछ शब्दों को देखते हैं–

ध्वनि के स्तर पर भिन्नता

खड़ी बोली	–	बुंदेली बोली
लड़का	–	लरका
मछली	–	मछरिया
लेना	–	लेव

शब्दों के स्तर पर भिन्नता

खड़ी बोली	–	बुंदेली बोली
पेड़	–	रूख
मांस	–	गोश
सिर	–	मूड
पैर	–	गोड़ो

व्यक्ति बोली

भौगोलिक दृष्टि तथा सामाजिक इकाई के आधार पर भाषा व्यवहार का लघुतम रूप व्यक्ति बोली है। किसी भाषा समाज में आने वाला व्यक्ति अपने कुछ विशिष्टताओं के कारण भाषिक विभेद को प्रदर्शित करता है। यद्यपि यह विभेद ऐसा नहीं होता कि अपने समाज के अन्य व्यक्तियों के द्वारा समझा न जा सके। मनुष्य में भाषा सीखने की प्राकृतिक क्षमता है। किंतु सीखने का कार्य, किसी भाषा समाज में ही हो सकता है। जिस समाज में वह जन्म लेता है जहां पलता है, वहां की भाषा वह सीख लेता है। वह केवल छोटे से समूह में प्रचलित बोली की ही नहीं, बल्कि व्यापक धरातल पर प्रयुक्त मानक भाषा तथा आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं का प्रयोग करता है।

अपभाषा या विकृत भाषा

किसी भाषा समाज में एक निश्चित शिष्टाचार से च्युत भाषा संरचना को शिष्ट भाषा कहते हैं। इसका प्रचलन विशेष श्रेणी या सम वर्गों में होता है। अपभाषा में अशुद्धता तथा अश्लीलता का समावेश हो जाता है। इसके प्रयोक्ता प्रायः शब्द निर्माण या वाक्य निर्माण में व्याकरण के नियमों को ओझल कर देते हैं। अपभाषा में सामान्य संकेतिक अर्थ का अपकर्ष दिखाई देता है। वैसे अपभाषा

के कुछ प्रयोग अपनी सशक्त व्यंजना के कारण शिष्ट भाषा में स्वीकृत हो जाते हैं। मक्खन लगाना, चमचागिरी आदि इसी तरह के प्रयोग हैं। गाली – गलौच को भी अपभाषा का उदाहरण माना जा सकता है। 1960–70 के बीच कविता के कुछ ऐसे आंदोलन चले जिनमें अपभाषा का खुलकर व्यवहार किया गया। हिंदी के कुछ उपन्यासों तथा कहानियों में भी अपभाषा का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

व्यावसायिक भाषा

व्यावसायिक वर्गों के आधार पर भाषा की अनेक श्रेणियां बन जाती हैं। किसान, बढ़ई, डॉक्टर, वकील, पंडित, मौलवी,दुकानदार आदि की भाषा में व्यावसायिक शब्दावलियों के समावेश के कारण अंतर हो जाता है। इस व्यावसायिक शव्दावली की स्थिति बहुत कुछ पारिभाषिक होती है। कुछ व्यवसायों में बहुप्रचलित शब्दावली के स्थान पर विशिष्ट अर्थसूचक नयी शब्दावली गढ़ ली जाती है। इसकी स्थिति बहुत कुछ सांकेतिक भाषा जैसी होती है। कभी–कभी यह अपभाषा की कोटि में पहुँच जाती है। कहारों की भाषा (वधू की डोली ढोते समय) इसी तरह की होती है। बैल के व्यवसायी आपस में एक भाषा बोलते हैं। जिसे ग्राहक बिल्कुल नहीं समझ पाता है। मौलवी साहव जब हिंदी बोलते हैं तो उनका झुकाव प्रायः अरबी– फारसी, निष्ठ भाषा की ओर रहता है और पंडित जी की हिंदी– संस्कृत की ओर झुकी रहती है।

कूट भाषा

इसे अंग्रेजी में कोड लेंग्वेज कहते हैं। कूट भाषा का प्रयोग पांडित्य प्रदर्शन, मनोरंजन,तथा गोपन के लिए होता है। सेना में कूट भाषा का प्रयोग गोपन के लिए होता है। इसमें शब्दों को सर्वप्रचलित अर्थ के स्थान पर नये अर्थों से जोड़कर प्रयुक्त किया जाता है। इनका अर्थ वही व्यक्ति समझ पाता है जिसे पहले से बता दिया होता है। सूर ने साहित्यिक चमत्कार दिखाने के लिए कूट के पदों की रचना की है। जिनका अर्थ साहित्य–शास्त्रियों द्वारा ही प्रस्फुटित किया जा सकता है।

कृत्रिम भाषा

यह निर्मित भाषा है। संसार में अनेक भाषाएं हैं। एक भाषा–भाषी दूसरे भाषा–भाषी को बिना पूर्व शिक्षा के समझ नहीं पाता। भाषा भेद के कारण जीवन के विविध क्षेत्र जैसे–व्यवसाय, राजनीति, भ्रमण, शिक्षा आदि में बड़ी कठिनाई

पैदा हो जाती है। इस समस्या के निवारण के लिए 'ऐसपेरन्तो' नामक कृत्रिम भाषा बनाई गई। यूरोप में कुछ लोग इस भाषा को सीखते भी हैं। इस भाषा के निर्माण में जो उद्देश्य था वह निश्चित ही महत्वपूर्ण था। किंतु जनाधार के अभाव में यह भाषा उस उद्देश्य को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकी। कृत्रिम भाषा में सामान्य बातचीत ही हो सकती, गंभीर चिंतन या साहित्य लेखन नहीं हो सकता। भाषा एक तरह से मानव के संस्कार का अभिन्न हिस्सा है, इसलिए उसकी सृजनशीलता भी मातृभाषा में ही घटित होती है। अपनी मातृभाषा के उच्चारणात्मक संस्कार के साथ यदि ऐसपेरन्तो का उच्चारण करेगा तो उसमें भी परिवर्तन ला देगा। इस तरह पुनः भाषा की एकता खंडित हो जायेगी।

मिश्रित भाषा

दो भाषाओं के मिश्रण से इसका निर्माण होता है। इससे सामान्य कार्य -व्यवसाय आदि किये जाते हैं। चीन में अंग्रेजी शब्दों को चीनी उच्चारण तथा व्याकरण के अनुसार ढालकर पीजिन का निर्माण किया गया है। दक्षिण अफ्रीका में डच. अंग्रेजी़ बांटू से मिश्रित भाषा का निर्माण हुआ है। कभी-कभी दो भाषाओं का मिश्रण इतना सबल तथा आवश्यक हो जाता है कि एक समुदाय अपनी मातृभाषा को छोड़ देता है जमेका, त्रिनीनाद, मारीशस, विभिन्न समुदायों के मिलन से संकर भाषाएं बन गयी हैं। इन भाषाओं को अंग्रेजी में क्रियोल (संकर) कहा जाता है। इंडोनेशिया की शिशूल विश्व की सर्वाधिक संकर भाषा मानी गयी। उर्दू को भी संकर भाषा कहा जा सकता है।

मानक भाषा

भाषा का आदर्श रुप उसे माना जाता है जिसमें एक बड़े समुदाय के लोग विचार विनिमय करते हैं अर्थात् इस भाषा का प्रयोग शिक्षा, शासन और साहित्य रचना के लिए होता है। अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी और हिन्दी इसी प्रकार की भाशाएं हैं। यह व्याकरणबद्ध होती है।

6

भाषा का अर्थ, परिभाषा, भेद, प्रवृत्ति और माध्यम

भाषा' शब्द भाष् धातु से निष्पन्न हुआ है। शास्त्रों में कहा गया है- ''भाष् व्यक्तायां वाचि'' अर्थात् व्यक्त वाणी ही भाषा है। भाषा स्पष्ट और पूर्ण अभिव्यक्ति प्रकट करती है। भाषा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना पुराना मानव का इतिहास। भाषा के लिए सामान्यत: यह कहा जाता है कि- 'भाषा मनुष्य के विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।' भाषा की परिभाषा पर विचार करते समय रवीन्द्रनाथ की यह बात ध्यान देने योग्य है कि- 'भाषा केवल अपनी प्रकृति में ही अत्यन्त जटिल और बहुस्तरीय नहीं है वरन् अपने प्रयोजन में भी बहुमुखी है।' उदाहरण के लिए अगर भाषा व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है, तब इसके साथ ही वह सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का उपकरण भी है, एक ओर अगर वह हमारे मानसिक व्यापार(चिन्तन प्रक्रिया) का आधार है तो दूसरी तरफ वह हमारे सामाजिक व्यापार(संप्रेषण प्रक्रिया) का साधन भी है।

इसी प्रकार संरचना के स्तर पर जहाँ भाषा अपनी विभिन्न इकाइयों में सम्बन्ध स्थापित कर अपना संश्लिष्ट रूप ग्रहण करती है जिनमें वह प्रयुक्त होती है। प्रयोजन की विविधता ही भाषा को विभिन्न सन्दर्भों में देखने के लिए बाध्य

करती है। यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों ने इसे विभिन्न रूपों में देखने और परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

भाषा की परिभाषा

डॉ. कामता प्रसाद गुरु–"भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों तक भली-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकता है।"

आचार्य किशोरीदास–"विभिन्न अर्थों में संकेतित शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।"

डॉ. श्यामसुन्दर दास–"मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।"

डॉ. बाबूराम सक्सेना–"जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।"

डॉ. भोलानाथ–"भाषा उच्चारणावयवों से उच्चरित यादृच्छिक(तइपजतंतल) ध्वनि-प्रतीकों की वह संचरनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज-विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"

रवीन्द्रनाथ–"भाषा वागेन्द्रिय द्वारा निःस्तृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है, जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिनके द्वारा किसी भाषा-समुदाय के व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को संप्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों को सूचित करते हैं।'

महर्षि पतंजलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी महाभाष्य में भाषा की परिभाषा करते हुए कहा है- "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।" जो वाणी से व्यक्त हो उसे भाषा की संज्ञा दी जाती है। दुनीचंद ने अपनी पुस्तक "हिन्दी व्याकरण" में भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है–"हम अपने मन के भाव प्रकट करने के लिए जिन सांकेतिक ध्वनियों का उच्चारण करते हैं, उन्हें भाषा कहते हैं।"

डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए लिखा है–"भाषा मुख से उच्चरित उस परम्परागत सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की

व्यक्ति को कहते हैं, जिसकी सहायता से मानव आपस में विचार एवं भावों को आदान-प्रदान करते हैं तथा जिसको वे स्वेच्छानुसार अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं।"

डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल के अनुसार–"भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छन्द प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है जिससे मानव समाज में अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक-दूसरे को सहयोग देता है।"

श्री नलिनि मोहन सन्याल का कथन है–"अपने स्वर को विविध प्रकार से संयुक्त तथा विन्यस्त करने से उसके जो-जो आकार होते हैं उनका संकेतों के सदृश व्यवहार कर अपनी चिन्ताओं को तथा मनोभावों को जिस साधन से हम प्रकाशित करते हैं, उस साधन को भाषा कहते हैं।"

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के मतानुसार–"भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।"

प्लेटो ने विचार तथा भाषा पर अपने भाव व्यक्त करते हुए लिखा है-"विचार आत्मा की मूक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होंठों पर प्रकट होती है उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।"

मैक्समूलर के अनुसार-"भाषा और कुछ नहीं है केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा अविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।"

ब्लॉक और ट्रेगर के अनुसार–"भाषा व्यक्त ध्वनि चिह्नों की उस पद्धति को कहते हैं जिसके माध्यम से समाज-समूह परस्पर व्यवहार करते हैं।"

हेनरी स्वीट का कथन है–"जिन व्यक्त ध्वनियों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होती है, उसे भाषा कहते हैं।"

ए. एच. गार्डिनर के विचार से "विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट ध्वनि-संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उन्हें भाषा कहते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि- ''मुख से उच्चरित ऐसे परम्परागत, सार्थक एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की समष्टि ही भाषा है जिनकी सहायता से हम आपस में अपने विचारों एवं भावों का आदान-प्रदान करते हैं।''

भाषा के भेद

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अत: समाज में रहते हुए सदा विचार-विमर्श की आवश्यकता होती है। सामान्य रूप में भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों को भाषा की संज्ञा दी जाती है। भावाभिव्यक्ति संदर्भ में हम अनेक माध्यमों को सहारा लेते हैं, यथा–स्पर्श कर, चुटकी बजाकर, आँख घुमा या दबाकर, उँगली को आधार बनाकर, गहरी साँस छोड़कर, मुख के विभिन्न अंगों के सहयोग से ध्वनि उच्चारण कर, आदि। भाषा की स्पष्टता के ध्यान में रखकर उसके वर्ग बना सकते हैं–

मूक भाषा–भाषा की ध्वनि रहित स्थिति में ही ऐसी भावभिव्यक्ति होती है। इसे भाषा का अव्यक्त रूप भी कहा जा सकता है। संकेत, चिह्न, स्पर्श आदि भावाभिव्यक्ति के माध्यम इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। पुष्प की भाषा भी मूक है।

अस्पष्ट भाषा–जब व्यक्त भाषा का पूर्ण या स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है, तो उसे अस्पष्ट कहते हैं, यथा–चिड़ियाँ प्रात: काल से अपना गीत शुरू कर देती है, किन्तु उनके गीत का स्पष्ट ज्ञान सामान्य व्यक्ति नहीं कर पाता है। इस प्रकार पक्षियों का गीत मानव के लिए अस्पष्ट भाषा है।

स्पष्ट भाषा–जब भावाभिव्यक्ति पूर्ण स्पष्ट हो, तो ऐसी व्यक्त भाषा को स्पष्ट कहते हैं। जब मनुष्य मुख अवयवों के माध्यम से अर्थमयी या यादृच्छिक ध्वनि-समष्टि का प्रयोग करता है, तो ऐसी भाषा का रूप सामने आता है। यह भाषा मानव-व्यवहार और उसकी उन्नति में सर्वाधिक सहयोगी है।

स्पर्श भाषा–इसमें विचारों की अभिव्यक्ति शरीर के एक अथवा अधिक अंगों के स्पर्श-माध्यम से होती है। इसमें भाषा के प्रयोगकर्ता और ग्रहणकर्ता में निकटता आवश्यक होती है।

इंगित भाषा–इसे आंगिक भाषा भी कहते हैं। इसमें विचारों की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार के संकेतों के माध्यम से होती है, यथा–हरी झंडी या हरी बत्ती मार्ग साफ या आगे बढ़ने का संकेत है लाल झंडी या बत्ती मार्ग अवरुद्ध होने या रुकने का संकेत है।

वाचिक भाषा–इसके लिए 'मौखिक' शब्द का भी प्रयोग होता है। ऐसी भाषा में ध्वनि-संकेत भावाभिव्यक्ति के मुख्य साधन होते हैं। इसमें विचार-विनिमय हेतु मुख के विभिन्न अवयवों का सहयोग लिया जाता है, अर्थात् इसमें

भावाभिव्यक्ति बोलकर की जाती है। यह सर्वाधिक प्रयुक्त भाषा है। सामान्यत: इस भाषा का प्रयोग सामने बैठे हुए व्यक्ति के साथ होता है। यंत्र-आधारित दूरभाष (टेलीफोन), वायरलेस आदि की भाषा भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आती है। भाषा के सूक्ष्म विभाजन में इसे यान्त्रिक या यंत्र-आधारित भाषा के भिन्न वर्ग में रख सकते हैं।

लिखित भाषा–भावाभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम लिखित भाषा है, इसमें अपने विचार का विनिमय लिखकर अर्थात् मुख्यत: लिपि का सहारा लेकर किया जाता है। इस भाषा में लिपि के आधार पर समय तथा स्थान की सीमा पर करने की शक्ति होती है। एक समय लिपिबद्ध किया गया विचार शताब्दियों बाद पढ़ कर समझा जा सकता है और कोई भी लिपिबद्ध विचार या संदेश देश-विदेश के किसी भी स्थान को भेजा जा सकता है। किसी भी समाज की उन्नति मुख्यत: वहाँ की भाषा-उन्नति पर निर्भर होती है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि उन्नत देश की भाषा भी उन्नत होती है। इसके साथ भाषा को मानवीय सभ्यता का उत्कर्ष आधार माना गया है। काव्यदर्श में वाणी (भाषा) को जीवन का मुख्याधार बताते हुए कहा गया है–"वाचामेय प्रसादेन लोक यात्र प्रवर्तते।"

भाषा की प्रवृत्ति

भाषा के सहज गुण-धर्म को भाषा के अभिलक्षण या उस की प्रकृति कहते हैं। इसे ही भाषा की विशेषताएँ भी कहते हैं। भाषा-अभिलक्षण को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। भाषा का प्रथम अभिलक्षण वह है, जो सभी भाषाओं के लिए मान्य होता है, इसे भाषा का सर्वमान्य अभिलक्षण कह सकते हैं। द्वितीय अभिलक्षण वह है, जो भाषा विशेष में पाया जाता है। इससे एक भाषा से दूसरी भाषा की भिन्नता स्पष्टता होती है। हम इसे विशिष्ट भाषागत अभिलक्षण भी कह सकते हैं। यहाँ मुख्यत: ऐसे अभिलक्षणों के विषय में विचार किया जा रहा है, जो विश्व की समस्त भाषाओं में पाये जाते हैं–

भाषा सामाजिक सम्पत्ति है–सामाजिक व्यवहार भाषा का मुख्य उद्देश्य है। हम भाषा के सहारे अकेले में सोचते या चिन्तन करते हैं, किन्तु वह भाषा इस सामान्य यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों पर आधारित भाषा से भिन्न होती है। भाषा अधोपांत समाज से संबंधित होती है। भाषा का विकास समाज में हुआ, उसका अर्जन समाज में होता है और उसका प्रयोग भी समाज में ही होता है। यह तथ्य

दृष्टव्य है कि बच्चा जिस समाज में पैदा होता है तथा पलता है, वह उसी समाज की भाषा सीखता है।

भाषा पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है–कुछ लोगों का कथन है कि पुत्र को पैत्रिक सम्पत्ति (घर, धन, बाग आदि) के समान भाषा भी प्राप्त होती है। अतः भाषा पैत्रिक सम्पत्ति है, किन्तु यह सत्य नहीं है। यदि किसी भारतीय बच्चे को एक-दो वर्ष अवस्था (शिशु-काल) में किन्हीं विदेशी भाषा-भाषी लोगों के साथ कर दिया जाये, तो वह उनकी ही भाषा बोलेगा। यदि भाषा पैत्रिक सम्पत्ति होती, तो वह बालक बोलने के योग्य होने पर अपने माता-पिता की ही भाषा बोलता।

भाषा व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है–भाषा सामाजिक सम्पत्ति है। भाषा का निर्माण भी समाज के द्वारा होता है। महान साहित्यकार या भाषा-प्रेमी भाषा में कुछ एक शब्दों को जोड़ या उसमें से कुछ एक शब्दों को घटा सकता है इससे स्पष्ट होता है कि कोई साहित्यकार या भाषा-प्रेमी भाषा का निर्माता नहीं हो सकता है। भाषा में होने वाला परिवर्तन भी व्यक्तिकृत न होकर समाजकृत होता है।

भाषा अर्जित सम्पत्ति है–भाषा परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति है, किन्तु यह पैत्रिक सम्पत्ति की भांति नहीं प्राप्त होती है। मनुष्य को भाषा सीखने के लिए प्रयास करना पड़ता है। सामाजिक व्यवहार भाषा सीखने में मार्ग-दर्शन के रूप में कार्य करता है, किन्तु मनुष्य को प्रयास के साथ उसका अनुकरण करना होता है। मनुष्य अपनी मातृभाषा के समान प्रयोगार्थ अन्य भाषाओं को भी प्रयत्न कर सीख सकता है। इसे स्पष्ट होता है, भाषा अर्जित सम्पत्ति है।

भाषा व्यवहार अनुकरण द्वारा अर्जित की जाती है–शिशु बौद्धिक विकास के साथ अपने आसपास के लोगों की ध्वनियों को अनुकरण के आधार पर उन्ही के समान प्रयोग करने का प्रयत्न करता है। प्रारम्भ में वह या, मा, बा आदि ध्वनियों का अनुकरण करता है, फिर सामान्य शब्दों को अपना लेता है। यह अनुकरण तभी सम्भव होता है, जब उसे सीखने योग्य व्यावहारिक वातावरण प्राप्त हो। वैसे व्याकरण, कोश आदि से भी भाषा सीखी जा सकती है, किन्तु यह सब व्यावहारिक आधार पर सीखी गई भाषा के बाद ही सम्भव है। यदि किसी शिशु को निर्जन स्थान पर छोड़ दिए जाए तो वह बोल भी नहीं पाएगा, क्योंकि व्यवहार के अभाव में उसे भाषा का ज्ञान नहीं हो पाएगा।

भाषा सामाजिक स्तर पर आधारित होती है–भाषा का सामाजिक स्तर पर भेद हो जाता है। विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त किसी भी भाषा की आपसी भिन्नता देख सकते हैं। सामान्य रूप में सभी हिन्दी भाषा-भाषी हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं, किन्तु विभिन्न क्षेत्रों की हिन्दी में भिन्नता होती है। यह भिन्नता उनके शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक आदि स्तरों के कारण होती है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र की अपनी शब्दावली होती है, जिसके कारण भिन्नता दिखाई पड़ती है। शिक्षित व्यक्ति जितना सतर्क रहकर भाषा का प्रयोग करता है, सामान्य अथवा अशिक्षित व्यक्ति उतनी सतर्कता से भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता है। यह स्तरीय तथ्य किसी भी भाषा के विभिन्न कालों के भाषा-प्रयोग से भी अनुभव कर सकते हैं।

भाषा सर्वव्यापक है–यह सर्वमान्य तथ्य है कि विश्व के समस्त कार्यों का सम्पादन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भाषा के ही माध्यम से होता है। समस्त ज्ञान भाषा पर आधारित है। व्यक्ति-व्यक्ति का संबंध या व्यक्ति-समाज का संबंध भाषा के अभाव में असम्भव है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है–"न सोस्ति प्रत्ययों लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सव शब्देन भासते।" (वाक्यप्रदीय 123.24) मनुष्य के मनन-चिन्तन तथा भावाव्यक्ति का मूल माध्यम भाषा है, यह भी भाषा की सर्वव्यापकता का प्रबल-प्रमाण है।

भाषा सतत प्रवाहमयी है–मनुष्य के साथ भाषा सतत गतिशील अवस्था में विद्यमान रहती है। भाषा की उपमा प्रवाहमान जलस्रोत-नदी से दी जा सकती है, जो पर्वत से निकल कर समुद्र तक लगातार बढ़ती रहती है, अपने मार्ग में वह कहीं सूखती नहीं है। समाज के साथ भाषा का आरम्भ हुआ और आज तक गतिशील है। मानव समाज जब तक रहेगा, तब तक भाषा का स्थायित्व पूर्ण निश्चित है किसी व्यक्ति या समाज के द्वारा उसमें परिवर्तन किया जा सकता है, किन्तु उसे समाप्त करने की किसी में शक्ति नहीं होती है।

भाषा सम्प्रेषण मूलतः वाचिक है–भाव सम्प्रेषण सांकेतिक, आंगिक, लिखित और यांत्रिक आदि अनेक रूपों में होता है, किन्तु इनकी कुछ सीमाएँ हैं, अर्थात् इन माध्यमों के द्वारा पूर्ण भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं। स्पर्श तथा संकेत भाषा तो स्पष्ट रूप में अपूर्ण है, साथ ही लिखित भाषा से भी पूर्ण भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं। वाचिक भाषा में आरोह-अवरोह तथा विभिन्न भाव-भंगिमाओं के कारण पूर्ण सशक्त भावाभिव्यक्ति सम्भव होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण

पूर्ण सशक्त भावाभिव्यक्ति सम्भव होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण वाचिक भाषा को सजीव तथा लिखित तथा अन्य भाषाओं को निर्जीव भाषा कह सकते हैं। वाचिक भाषा का प्रयोग भी सर्वाधिक रूप में होता है। अनेक अनपढ़ व्यक्ति भी ऐसी भाषा का सहज, स्वाभाविक तथा आकर्षक प्रयोग करते हैं।

भाषा चिरपरिवर्तनशील है–संसार की सभी वस्तुओं के समान भाषा भी परिवर्तनशील है। किसी भी देश के एक काल की भाषा परवर्ती काल में पूर्ववत् नहीं रह सकती, उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता है। यह परिवर्तन अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण होता है। संस्कृत में 'साहस' का अर्थ अनुचित या अनैतिक कार्य के लिए उत्साह दिखाना था, तो हिन्दी में यह शब्द अच्छे कार्य के लिए उत्साह दिखाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भाषा अनुकरण के माध्यम में सीखी जाती है। मूल-भाषा (वाचक-भाषा) का पूर्ण अनुकरण सम्भव नहीं है। इसके कारण हैं- अनुकरण की अपूर्णता, शारीरिक तथा मानसिक रचना की भिन्नता एवं भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की भिन्नता। इस प्रकार भाषा प्रतिफल परिवर्तित होती रहती है।

भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित होता है–भाषा के दो रूप मुख्य हैं–मौखिक तथा लिखित। इनमें भाषा का प्रारम्भिक रूप मौखिक ही होता है। लिपि का विकास तो भाषा जन्म के पर्याप्त समय बाद में होता है। लिखित भाषा में ध्वनियों का ही अंकन किया जाता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि ध्वन्यात्मक भाषा के अभाव में लिपि की कल्पना भी असम्भव है। उच्चरित भाषा के लिए लिपि आवश्यक माध्यम नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी ऐसे अनगिनत व्यक्ति मिल जाएँगे, जो उच्चरित भाषा का सुन्दर प्रयोग करते हैं, किन्तु उन्हें लिपि का ज्ञान नहीं होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप उच्चरित या मौखिक है और उसका परवर्ती विकसित रूप लिखित है।

भाषा का आरम्भ वाक्य से हुआ है–सामान्यत: भाव या विचार पूर्णता के द्योतक होते हैं। पूर्ण भाव की अभिव्यक्ति सार्थक, स्वतंत्र और पूर्ण अर्थवान इकाई-वाक्य से ही सम्भव है। कभी-कभी तो एक शब्द से भी पूर्ण अर्थ का बोध होता है, यथा- 'जाओ' आदि। वास्तव में ये शब्द न होकर वाक्य के एक विशेष रूप में प्रयुक्त हैं। ऐसे वाक्यों में वाक्यांश छिपा होता है। यहाँ पर वाक्य का उद्देश्य-अंश 'तुम' छिपा हुआ है। श्रोता ऐसे वाक्यों को सुनकर व्याकरणिक ढंग से उसकी पूर्ति कर लेता है। इस प्रकार ये वाक्य बन जाते हैं–'तुम जाओ।'

'तुम आओ' बच्चा एक ध्वनि या वर्ण के माध्यम से भाव प्रकट करता है। बच्चे की ध्वनि भावात्मक दृष्टि से संबंधित होने के कारण एक सीमा में पूर्णवाक्य के प्रतीक में होती है, यथा–'प' से भाव निकलता है-मुझे प्यास लगी है या मुझे दूध दे दो या मुझे पानी दे दो। यहाँ 'खग जाने खग ही की भाषा' का सिद्धान्त अवश्य लागू होता है। जिसके हृदय में ममता और वात्सल्य का भाव होगा या जग सकेगा वह ही ऐसे वाक्यों की अर्थ-अभिव्यक्ति को ग्रहण कर सकेगा।

भाषा मानकीकरण पर आधारित होती है–भाषा परिवर्तनशील है, यही कारण है कि एक ही भाषा एक युग के पश्चात् दूसरे युग में पहुँचकर पर्याप्त भिन्न हो जाती है। इस प्रकार परिवर्तन के कारण भाषा में विविधता आ जाती है। यदि भाषा-परिवर्तन पर बिल्कुल ही नियंत्रण न रखा जाए तो तीव्रगति के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुछ ही दिनों में भाषा का रूप अबोध्य बन जाएगा। भाषा परिवर्तन पूर्णरूप से रोका तो नहीं जा सकता, किन्तु भाषा में बोधगम्यता बनाए रखने के लिए उसके परिवर्तन-क्रम का स्थिरीकरण आवश्यक होता है। इस प्रकार की स्थिरता से भाषा का मानकीकरण हो जाता है।

भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ती है–विभिन्न भाषाओं के प्राचीन, मध्ययुगीन तथा वर्तमान रूपों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट है कि भाषा का प्रारम्भिक रूप संयोगावस्था में होता है। इसे संश्लेषावस्था भी कहते हैं। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन आता है और वियोगावस्था या विश्लेषणावस्था आ जाती है। भाषा की संयोगावस्था में वाक्य के विभिन्न अवयव आपस में मिले हुए लिखे-बोले जाते हैं। परवर्ती अवस्था में यह संयोगवस्था धीरे-धीरे शिथिल होती जाती है, यथा–"रमेशस्य पुत्रः गृहं गच्छति। रमेश का पुत्र घर जाता है। 'रमेशस्य' तथा 'गच्छति' संयोगावस्था में प्रयुक्त हैं।

भाषा का अन्तिम रूप नहीं है–वस्तु बनते-बनते एक अवस्था में पूर्ण हो जाती है, तो उसका अन्तिम रूप निश्चित हो जाता है। भाषा के विषय में यह बात सत्य नहीं है। भाषा चिरपरिवर्तशील है। इसलिए किसी भी भाषा का अन्तिम रूप ढूँढ़ना निरर्थक है और उसका अन्तिम रूप प्राप्त कर पाना असम्भव है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि यह प्रकृति जीवित भाषा के संदर्भ में ही मिलती है।

भाषा का प्रवाह कठिनता से सरलता की ओर होता है–विभिन्न भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भाषा का प्रवाह कठिनता से सरलता की ओर होता है। मनुष्य स्वभावतः अल्प परिश्रम से अधिक कार्य करना चाहता है। इसी आधार पर किया गया प्रयत्न

भाषा में सरलता का गुण भर देता है। इस प्रकृति का उदाहरण द्रष्टव्य है—डॉक्टर साहब, डाक्टर साहब, डाटर साहब, डाक साहब, डाक् साब, डाक्साब।

भाषा नैसिर्गिक क्रिया है—मातृभाषा सहज रूप में अनुकरण के माध्यम से सीखी जाती है। अन्य भाषाएँ भी बौद्धिक प्रयत्न से सीखी जाती है। दोनों प्रकार की भाषाओं के सीखने में अन्तर यह है कि मातृभाषा तब सीखी जाती है जब बुद्धि अविकसित होती है, अर्थात् बुद्धि विकास के साथ मातृभाषा सीखी जाती है। इससे ही इस संदर्भ में होनेवाले परिश्रम का ज्ञान नहीं होता है। जब हम अन्य भाषा सीखते हैं, तो बुद्धि-विकसित होने के कारण ज्ञान-अनुभव होता है। कोई भी भाषा सीख लेने के बाद उसका प्रयोग बिना किसी कठिनाई के किया जा सकता है। जिस प्रकार शारीरिक चेष्टाएँ स्वाभाविक रूप से होती हैं, ठीक उसी प्रकार भाषा-ज्ञान के पश्चात् उसका भी प्रयोग सहज-स्वाभाविक रूप में होता है।

प्रत्येक भाषा की निश्चित सीमाएँ होती है—प्रत्येक भाषा की अपनी भौगोलिक सीमा होती है अर्थात् एक निश्चित दूरी तक एक भाषा का प्रयोग होता है। भाषा-प्रयोग के विषय में यह कहावत प्रचलित है-चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी।" एक भाषा से अन्य भाषा की भिन्नता कम या अधिक हो सकती है, किन्तु भिन्नता होती अवश्य है। एक निश्चित सीमा के पश्चात् दूसरी भाषा की भौगालिक सीमा प्रारम्भ हो जाती है, यथा—असमी भाषा असम सीमा तक प्रयुक्त होती है, उसके बाद बंगला की सीमा शुरू हो जाती है। प्रत्येक भाषा की अपनी ऐतिहासिक सीमा होती है। एक निश्चित समय तक एक भाषा प्रयुक्त होती है, उससे पूर्ववर्ती तथा परवर्ती भाषा उससे भिन्न होती है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी निश्चित-प्रयोग समय से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है।

भाषा का माध्यम

अभिव्यक्ति का माध्यम

अपने भावों को अभिव्यक्त करके दूसरे तक पहुँचाने हेतु भाषा का उद्भव हुआ। भाषा के माध्यम से हम न केवल अपने, भावों, विचारों, इच्छाओं और आकांक्षाओं को दूसरे पर प्रकट करते हैं, अपितु दूसरों द्वारा व्यक्त भावों, विचारों और इच्छाओं को ग्रहण भी करते हैं। इस प्रकार वक्ता और श्रोता के बीच

अभिव्यक्ति के माध्यम से मानवीय व्यापार चलते रहते हैं। इसलिए सुनना और सुनाना अथवा जानना और जताना भाषा के मूलभूत कौशल हैं, जो सम्प्रेषण के मूलभूत साधन हैं। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भाषा के अन्यतम कौशल है पढ़ना और लिखना जो विधिवत् शिक्षा के माध्यम से विकसित होते हैं।

चिन्तन का माध्यम

विद्यार्थी बहुत कुछ सुने, बोले या लिखें-पढ़ें, इतना पर्याप्त नहीं है, अपितु यह बहुत आवश्यक है कि वे जो कुछ पढ़ें और सुनें, उसके आधार पर स्वयं चिन्तन-मनन करें। भाषा विचारों का मूल-स्रोत है। भाषा के बिना विचारों का कोई अस्तित्त्व नहीं है और विचारों के बिना भाषा का कोई महत्त्व नहीं। पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है कि ''बुद्धि के साथ आत्मा वस्तुओं को देखकर बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करती है। मन शारीरिक शक्ति पर दबाव डालता है, जिससे वायु में प्रेरणा उत्पन्न होती है। वायु फेफड़ों में चलती हुई कोमल ध्वनि को उत्पन्न करती है, फिर बाहर की और जाकर और मुख के ऊपरी भाग से अवरुद्ध होकर वायु मुख में पहुँचती है और विभिन्न ध्वनियों को उत्पन्न करती है।" अतः वाणी के उत्पन्न के लिए चेतना, बुद्धि, मन और शारीरिक अवयव, ये चारों अंग आवश्यक हैं। अगर इन चारों में से किसी के पास एक या एकाधिक का अभाव हो तो वह भाषाहीन हो जाता है।

संस्कृति का माध्यम गहरा सम्बन्ध रहा है। जहाँ समाज के क्रिया-कलापों से संस्कृति का निर्माण होता है, वहाँ सास्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए भाषा का ही आधार लिया जाता है। पौराणिक एवं साहसिक कहानियाँ, पर्व-त्यौहार, मेला-महोत्सव, लोक-कथाएँ, ग्रामीण एवं शहरी जीवन-शैली, प्रकृति-पर्यावरण, कवि-कलाकारों की रचनाएँ, महान विभूतियों की कार्यावली, राष्ट्रप्रेम, समन्वय-भावना आदि सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रभाव भी भाषा पर पड़ता है। दरअसल, किसी भी क्षेत्र विशेष के मानव समुदाय को परखने के लिए उसकी भाषा को समझना आवश्यक है। किसी निर्दिष्ट गोष्ठी के ऐतिहासिक उद्भव तथा जीवन-शैली की जानकारी प्रात्प करने हेतु उसकी भाषा का अध्ययन जरूरी है। संपृक्त जन-समुदाय के चाल-ढाल, रहन-सहन, वेशभूषा ही नहीं, अपितु उसकी सच्चाई, स्वच्छता, शिष्टाचार, सेवा-भाव, साहस, उदारता, निष्ठा, श्रमशीलता, सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता, कर्त्तव्यपरायणता आदि उसकी भाषा के अध्ययन से स्पष्ट हो जाते हैं।

साहित्य का माध्यम

भाषा साहित्य का आधार है। भाषा के माध्यम से ही साहित्य अभिव्यक्ति पाता है। किसी भी भाषा के बोलनेवालों जन-समुदाय के रहन-सहन, आचार-विचार आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाला उस भाषा का साहित्य होता है। साहित्य के जरिए हमें उस निर्दिष्ट समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का परिचय मिलता है। केवल समकालीन जीवन का ही नहीं, बल्कि साहित्य हमें अपने अतीत से उसे जोड़कर एक विकसनशील मानव-सभ्यता का पूर्ण परिचय देता है। साथ ही साहित्य के अध्ययन से एक उन्नत एवं उदात्त विचार को पनपने का अवसर मिलता है तो उससे हम अपने मानवीय जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। अतः भाषा का साहित्यिक रूप हमारे बौद्धिक एवं भावात्मक विकास में सहायक होता है और साहित्य की यह अनमोल सम्पत्ति भाषा के माध्यम से ही हम तक पहुँच पाती है। उत्तम साहित्य समृद्ध तथा उन्नत भाषा की पहचान है।

भाषा स्वरूप तथा प्रकार

भाषा जिस विषय में भाषा का अध्ययन किया जाता है, उसे भाषा-विज्ञान कहा जाता है। किसी विषय का क्रमबद्ध अथवा विशिष्ट ज्ञान–विज्ञान कहलाता है। विशिष्ट ज्ञान वह है, जिसमें विषय का सर्वांगीण, निरीक्षण एवं परीक्षण करके तत्संबंधी सार्वभौम एवं सर्वकालिक नियमों अथवा सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है। उदाहरण के लिए–

आर्कमिडीज ने सूक्ष्म निरीक्षण के बाद पाया कि जब कोई वस्तु द्रव्य में डूब जाती है तो उसके भार में कमी आ जाती है और वह कमी उसके द्वारा हटाए गए द्रव्य के भार के बराबर होती है। यह नियम अपवाद रहित है, आर्कमिडीज का यह सिद्धांत सभी देशों, सभी स्थानों में सत्य उतरता है।

"भाषा का सर्वांगीण अध्ययन करके तत्संबंधी सामान्य नियमों का निरूपण करना भाषा का विशिष्ट अध्ययन कहलाता है।"

भाषा के चार अंगों ध्वनि, रूप (शब्द), वाक्य, अर्थ, का सूक्ष्म अध्ययन करके तत्संबंधी सामान्य नियमों का प्रतिपादन करना ही भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन है। इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा जाता है कि–' भाषा-विज्ञान के अंतर्गत भाषा की उत्पत्ति, भाषा का विकास, भाषा का वर्गीकरण, अर्थ परिवर्तन, ध्वनि परिवर्तन और रूपात्मक संरचना पर प्रकाश डाला जाता है।'

भिन्न भिन्न भारतीय विद्वानों ने भाषा-विज्ञान की परिभाषा अनेक रूपों में दी है उदाहरणार्थ–

1. "भाषा-विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है।" **डॉ. श्याम सुंदर दास**
2. "भाषा-विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा, मानवीय किसी विशेष भाषा की रचना एवं इतिहास का भाषा या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानता और विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है।" **डॉक्टर मंगलदेव शास्त्री**
3. "भाषा-विज्ञान का सामान्य अर्थ है, भाषा का विज्ञान और विशिष्ट ज्ञान भाषा-विज्ञान कहलाएगा।" **देवेंद्रनाथ शर्मा**
4. "भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषाओं का एककालिक, बहूकालिक तुलनात्मक व्यतिरेकी अथवा अनुप्रायोगिक अध्ययन, विश्लेषण तथा तत्संबंधी सिद्धांतों का निर्धारण किया जाता है।" **डॉ भोलानाथ तिवारी**

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में भाषा-विज्ञान, भाषा-विज्ञान विज्ञान की वह शाखा है, जिसके अंतर्गत वर्णात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा प्रायोगिक पद्धति से भाषा मात्र सामान्य भाषा, भाषा विशेष या भाषाओं का विशिष्ट अध्ययन तथा तत्संबंधी सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया जाता है।

भाषा की परिभाषा तथा अभिलक्षण

- किसी भी वस्तु की परिभाषा उस वस्तु की अपनी प्रकृति और उसके अपने प्रयोजन पर आधारित होती है
- भाषा व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है। यह सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति का उपकरण भी है। अर्थात सामाजिक व्यापार का साधन है।
- विद्वानों का एक वर्ग इसे मानव मन की सृजनात्मक शक्ति के रूप में देखता है।
- भाषा कि आज कोई भी ऐसी परिभाषा नहीं दी जा सकती जो सर्वमान्य और उसके सभी प्रकारों की दृष्टि से पर्याप्त हो, सुविधा के लिए कहा जा सकता है कि अपनी प्रकृति में भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है।

– प्रतीक वह वस्तु है, जो किसी (व्याख्याता) के लिए किसी अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त होती है।
'शिवलिंग'–भगवान शिव का प्रतीक है।
– भाषिक प्रतीक अपने अभिव्यक्ति पक्ष के लिए जिस माध्यम को अपनाता है, उसका आधार वागेन्द्रिय होता है।
– व्यक्ति अपने विचारों को अभिव्यक्ति के रूप के लिए भाषिक प्रतीक का सहारा लेता है, तब वह वक्ता रूप में शब्दों का उच्चारण करता है और दूसरा व्यक्ति उसे श्रोता के रूप में कानों से सुनता है।
– अत: भाषा प्रतीक अपनी मूल प्रकृति में ध्वनि परख होता है।

भाषा अभिलक्षण

– भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में जिस भाषा को अध्ययन वस्तु बनाया जाता है, वह वस्तुत: 'मानव भाषा' होती है।

नीचे भाषा के कुछ ऐसे अभी लक्षणों की चर्चा की जा रही है, जो मानव–भाषा की अपनी प्रकृति से संबंध है–

1 मौखिक श्रव्य माध्यम

– मानव भाषा अपने संकेतार्थ को व्यक्त करने के लिए जिस अभिव्यक्ति का सहारा लेती है, उसकी प्रकृति मूलत: मौखिक श्रव्य है।
– संकेतार्थ के रूप में किसी संदेश को भेजने वाला व्यक्ति (वक्ता) पहले भाषिक प्रतीक को मुख से उच्चारित करता है और उस संदेश को ग्रहण करने वाला व्यक्ति (श्रोता)।

वक्ता-श्रोता

श्रोता–झवक्ता

उसे कान से सुनता है यह अभिलक्षण इस ओर भी संकेत करता है कि भाषा मूलत: मौखिक होती है।

2 अंतर्विनियमता

मनुष्य एक बोलने वाला प्राणी है, पर वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य केवल बोलता ही नहीं वरन बातचीत करता है।

–अंतर्विनियमता का लक्षण यह बताता है, कि वार्तालाप तभी संभव है, जब वक्ता और श्रोता बोलने और सुनने की अपनी भूमिका को बदलते रहते हैं। अर्थात बातचीत के दौरान जो एक समय लगता है वह दूसरे समय श्रोता की भूमिका अपनाएं और जो शुरू होता है वह वक्ता की भूमिका निभाएं।

3 यादृच्छिकता

यह अभिलक्षण संकेत देता है कि मानव भाषा में काव्य और अभिव्यक्ति के संबंध के बीच कोई सादृश्यपरक अथवा कार्यकारण का संबंध नहीं होता। यही कारण है कि एक ही कथ्य के लिए विभिन्न भाषाओं में अलग–अलग शब्द मिलते हैं और एक ही भाषा में अनेक पर्यायवाची शब्द।

4 परंपरा

–कथ्य और अभिव्यक्ति के संबंध सामाजिक परंपरा द्वारा निर्धारित होते हैं, यह अभिलक्षण मानव भाषा को सामाजिक परंपरा से अर्जित संस्कार के रूप में देखने का आग्रह करता है।

5 विविक्ता

–जब हम भाषा के माध्यम द्वारा किसी विचार को व्यक्त करते हैं तब विचार अविरल धारा के रूप में होता है।

–यही कारण है कि बोलते समय हम अपने विचार को संपूर्ण रुप में व्यक्त करना चाहते हैं और उसके लिए ध्वनियों की एक अटूट कड़ी का प्रयोग करते हैं।

6 अभिरचना द्वित्व

–किसी संदेश को व्यक्त करने की प्रक्रिया पर ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि, उसके दो निश्चित स्तर हैं।

पहले स्तर का संबंध कथ्य (अर्थ) से है।

दूसरे स्तर का संबंध अभिव्यक्ति माध्यम (ध्वनि) की इकाइयों से रहता है।

उदाहरण के लिए–

–अगर विचार की न्यूनतम इकाई 'जल' है तब उसकी अभिव्यक्ति की न्यूनतम इकाइयां है ज. अ. ल. अ।

विस्थापन

मानव भाषा में समय और स्थान की यह अनिवार्यता नहीं होती, इसका प्रयोक्ता जिस संदेश को व्यक्त करना चाहता है, उसकी विषय वस्तु समय और स्थान की दृष्टि से विस्थापित भी हो सकती है।

7

भाषा संरचना क्या है?

भाषा–संरचना का मूलाधार संरचनात्मक पद्धति है जिस प्रकार भवन रचना में ईंट, सीमेंट, लोहा, शक्ति अर्थात्मजदूर और कारीगर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषा–संरचना में ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, प्रोक्ति और अर्थ की अपनी–अपनी भूमिका होती है।

ध्वनि –संरचना

सामान्यत: किन्हीं दो या दो से अधिक वस्तुओं के आपस में टकराने से वायु में कम्पन होता है। जब यह कम्पन कानों तक पहुँचता है, तो इसे ध्वनि कहते हैं। भाषा–विज्ञान में मानव के मुखांगों से निकली/वनियों का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि भाषा की लघुतम, स्वतंत्र और महत्त्वपूर्ण इकाई है। यदि सभी भाषा की ध्वनियों में सैद्धान्तिक रूप से कुछ समानताएँ होती हैं तो प्रत्येक भाषा की ध्वनियों में कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं।

वर्गीकरण

भाषा–ध्वनियों का अध्ययन करते हैं, तो दो मुख्य वर्ग सामने आते हैं–स्वर और व्यंजन।

1. स्वर–भाषा में कुछ ऐसी ध्वनियाँ होती हैं, जिनके उच्चारण में किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता अर्थात् इनके उच्चारण में फेफड़े से आने

वाली वायु अबाध गति से बाहर आती है और इनका उच्चारण जितनी देर चाहें कर सकते हैं।

विभिन्न भाषाओं में स्वर ध्वनियों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है, यथा–वर्तमान समय में हिन्दी की स्वर ध्वनियाँ हैं–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।

अंग्रेजी में स्वरों की संख्या पाँच है–a,e, i, o, u-

विभिन्न भाषाओं में स्पष्ट-ध्वनियों के स्थान-व्यवस्था में भी भिन्नता है। किसी भाषा में समस्त ध्वनियाँ पूर्ववर्ती या परवर्ती एक स्थान पर व्यवस्थित होती हैं, तो किसी भाषा में व्यंजन ध्वनियों के मध्य व्यवस्थित होती है। हिन्दी की सभी स्वर ध्वनियाँ व्यंजन से पूर्व एक स्थान पर व्यवस्थित हैं–अ, आ, इ, ई, उ,ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। अंग्रेजी में स्वरों की व्यवस्था व्यंजनों के मध्य है–

2. व्यंजन–जिन ध्वनियों के उच्चारण में स्वर ध्वनियों का सहयोग अनिवार्य हो और जिनके उच्चारण में फेफड़े से आनेवाली वायु मुख के किसी भाग में अल्पाधिक रूप से अवरुद्ध होने के कारण घर्षण के साथ बाहर आए, उन्हें व्यंजन ध्वनि कहते हैं। हिन्दी में व्यंजन ध्वनियों को स्वर के बाद स्थान दिया गया है, जबकि अंग्रेजी में स्वर ध्वनि के साथ मिश्रित रूप में।

हिन्दी में कुछ व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग स्वर के रूप में भी होता है। इन्हें अर्ध स्वर कहते हैं–यथा–Õ, OA

हिन्दी में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतन्त्र चिन्हों की व्यवस्था है, यथा–प्रत्येक वर्ग की दूसरी और चौथी ध्वनियाँ–कवर्ग - ख, चवर्ग - छ, झटवर्ग - ठ, दतवर्ग - थ, धपवर्ग - फ, भ

बलाघात

भाषा में विभिन्न ध्वनियों के एक साथ प्रयोग होने पर भी उनके उच्चारण में प्रयुक्तबल में पर्याप्त भिन्नता होती है। जब किसी ध्वनि पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होता है, तो उसे बलाघात कहते हैं, यथा - 'आम' शब्द में आ और म दो ध्वनियाँ हैं। आ पर 'म' की अपेक्षा अधिक बल दिया जाता है।

हिन्दी ध्वनियों में बलाघात के विषय में यह ध्यातव्य है कि यह प्रभाव सदा स्वर पर ही होता है। जब एक वाक्य में किसी शब्द की सभी ध्वनियाँ अन्य शब्दों की ध्वनियों की अपेक्षा अधिक सशक्तरूप से प्रयुक्त होती हैं, तो उसे शब्द बलाघात कहते हैं, यथा–(क) मुझे एक रंगवाली कलम चाहिए।(ख) मुझे

एक रंगवाली कलम चाहिए। यहाँ 'क' वाक्य में 'एक' शब्द की ध्वनियों पर बलाघात है, तो 'ख' वाक्य में 'रंगवाली' शब्द की ध्वनियों पर। इस प्रकार दोनों वाक्यों के अर्थ में भिन्नता आ गई है।(ग) सन्धि कभी-कभी दो भाषिक इकाइयाँ मिलकर एक हो जाती हैं, ऐसे ध्वनि परिवर्तन को सन्धि कहते हैं। प्रत्येक भाषा के सन्धि-नियमों की अपनी विशेषताएँ होती हैं। हिन्दी में कई प्रकार की सन्धियाँ मिलती हैं, यथा–1. स्वीकरण–हिन्दी तद्भव शब्दों में यह प्रक्रिया मिलती है–आप+ना (अ अ) = अपना आधा + खिला (आ अ) = अधखिलाभीख + आरी (ई इ) = भिखारी, 2. दीर्घीकरण मुख्य + अर्थ (अ + अ = आ) = मुख्यार्थकवि + इन्द्र (इ + इ = ई) = कवीन्द्र, 3. घोषीकरण रूडाक + घर (क घ) = डाकघर धूप + बत्ती (प ब) = धूपबत्ती, 4. लोपघोड़ा + दौड़ (आ लोप) = घुड़दौड़पानी + घाट (ई और आ लोप) = पनघट, 5. आगम रूमूसल + धार (आ आगम) = मूसलाधारदीन + नाथ (आ आगम) = दीनानाथ विश्व + मित्र (आ आगम) = विश्वामित्र

शब्द-संरचना

भाषा की लघुतम, स्वतंत्र और सार्थक इकाई को शब्द की संज्ञा दी जाती है। शब्द-संरचना का अध्ययन उपसर्ग, प्रत्यय, समास तथा पुनरुक्ति आदि रूपों से करते हैं।

उपसर्ग

उपसर्ग वह भाषिक इकाई है, जो शब्द के पूर्व में प्रयुक्त होती है, किन्तु इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। ऐसी इकाई शब्द-संरचना का मुख्य आधार है। इसे मुख्यत: दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम – अपनी भाषा के उपसर्ग, यथा – हिन्दी में उ, कु, स, सु आदि। अ – धर्म = अधर्म, दुर – दिन = दुर्दिनस – जीव झ सजीव, सु – गंध झ सुगंध द्वितीय – दूसरी भाषा के उपसर्ग, यथा बे – बेकाम (फा. ़ हि.)बे – बेसिर (फा. ़ हि.)। प्रत्यय – निज भाषा के प्रत्ययकार = नाटककार, साहित्यकार, स्वर्णकार आनी = सेठानी, जेठानी, देवरानी ता = सफलता, असफलता, सुन्दरता द्वितीय – कभी-कभी शब्द के साथ भिन्न भाषा के उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं, यथा–ई = डाक्टरी डॉक्टर (अंग्रेजी) + ई (हिन्दी प्रत्यय), दारी = वफादारी वफा (अ.) + दार (फा.),ची = संदूकची संदूक (अ.) + ची (तु.),दार= जड़दार जड़ (हिन्दी) दार (फा.)।

समास

समास में दो शब्द जुड़कर एक सामासिक शब्द का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसे रूप को समस्त पद या सामासिक पद कहते हैं, यथा–घोड़ों की दौड़ = घुड़दौड़। अर्थ संदर्भ से सामासिक शब्दों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–प्रथम वर्ग में उन सामासिक शब्दों को रख सकते हैं, जिनके अर्थ वही रह जाते हैं, जो समास के पूर्व होते हैं, यथा–माता और पिता = माता-पिता, राजा और रानी = राजा-रानी। दूसरे वर्ग में उन सामासिक शब्दों को रख सकते हैं, जिनके अर्थ में भिन्नता आ जाती है, यथा–जल और वायु = जलवायु यहाँ विग्रह में पानी और हवा का ज्ञान होता है, सामासिक रूप में विशेष अर्थ वातावरण का ज्ञानहोता है।

पद संरचना

जब शब्द वाक्य निर्माणार्थ निर्धारित व्याकरणिक क्षमता प्राप्त कर लेता है, तो उसे पद की संज्ञा दी जातीहै। पद संरचना में शब्दों के विभिन्न व्याकरणिक रूपों का अध्ययन किया जाता है। रूप संरचना, संज्ञा, सर्वमान, क्रिया आदि विभिन्न धरातलों पर करते हैं। संज्ञा के रूप संरचना में मुख्यत: वचन पर चिन्तन करते हैं, यथा–लड़का = लड़के, लड़कों गुड़िया = गुड़ियाँ, गुड़ियो, गुड़ियों। इस प्रकार विभिन्न प्रत्ययों के योग से पद संरचना होती है। सर्वनाम के साथ विभिन्न कारक चिह्नों के योग से पद संरचना सामने आती है, यथा–तुम = तुमने, तुमसे, तुममें, तुमको आदि। आप = आपने, आपसे, आपमें, आपको आदि। क्रिया पद की संरचना में भी प्रत्यय की विशेष भूमिका होती है, यथा–चलना = चलें, चलो, चलूँगा, चलिएगा, चलोगी आदि। दौड़ना = दौड़े, दौड़ो, दौड़ूँगा, दौड़िएगा, दौड़ोगी आदि। यदा-कदा संयुक्त क्रिया के प्रयोग-आधार पर क्रिया-पद की विशेष संरचना होती है, यथा–आना = आ जाओमारना = मार डाला, मार दिया खाना = खा लिया, खा डालाकांपना = काँप उठा, काँप गया।

वाक्य संरचना

भाषा की स्वतंत्र, पूर्ण सार्थक सहज इकाई को वाक्य कहते हैं। वाक्य में प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से कमसे कम एक क्रिया का होना अनिवार्य है। वाक्य संरचना में मुख्यत: उद्देश्य तथा विधेय दो भाग होते हैं, यथा–"उदित जा रहा है" में "उदित" उद्देश्य और "जा रहा है" विधेय है। वाक्य में उद्देश्य छिपा भी

हो सकता है, यथा–जाओ = (तुम) जाओ। खाइए = (आप) खाइए। वाक्य की स्पष्ट संरचना का भावाभिव्यक्ति में विशेष महत्त्व होता है, यथा–रोको मत, जाने दो, रोको, मत जाने दो यहाँ प्रथम वाक्य संरचना में 'न रोको' की भावाभिव्यक्ति है, तो दूसरी वाक्य संरचना में 'रोकने' की। वाक्य को संरचनात्मक आधार पर सरल, संयुक्त और मिश्र वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। एक प्रकार के वाक्य को दूसरे प्रकार के वाक्य में परिवर्तित कर सकते हैं, यथा - निषेधात्मक वाक्य निर्माण प्रक्रिया–(क) वह योग्य है = वह अयोग्य नहीं। (ख) तुम यहाँ से जाओ = तुम यहाँ न रुको।

प्रोक्ति-संरचना

भाषा की महत्तम इकाई प्रोक्ति है। ध्वनि यदि भाषा की लघुत्तम इकाई है, तो प्रोक्ति महत्तम और पूर्णअभिव्यक्ति करनेवाली इकाई है। वाक्य के द्वारा प्रोक्ति के समकक्ष अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है, यथा–

नितिन अच्छा लड़का है।
नितिन एम.ए. का छात्र है।
नितिन नियमित परिश्रम करता है।
नितिन को परीक्षा में प्रथम स्थान मिला।

यहाँ नितिन के विषय में चार वाक्य दिए गए हैं। आपसी सम्बन्धों के अभाव में यहाँ पूर्ण, स्पष्ट और सहज अभिव्यक्ति नहीं है। प्रोक्ति का रूप आते ही भावाभिव्यक्ति स्पष्ट हो जाती है - "नितिन अच्छा लड़का है। नियमित परिश्रम करने के कारण उसे एम.ए. की परीक्षा में प्रथम स्थान मिला। "यह एक लघु प्रोक्ति है। प्रोक्ति का स्वरूप तो उपन्यास या महाकाव्य के प्रथम शब्द से अन्तिम शब्द तक विस्तृत हो सकता है। **आचार्य विश्वनाथ** ने 'साहित्य दर्पण' में महाकाव्य की कल्पना की है। उन्होंने लिखा है - "वाक्योच्चयो महावाक्यम्" वाक्यों का उच्चय (उव्. चय) एक-दूसरे के ऊपर सदा रूप महाकाव्य है। इस प्रकार विभिन्न वाक्यों के एक-दूसरे के साथ समाहित होने के स्वरूप को वाक्य कहते हैं।

वाक्य या प्रोक्ति के विभिन्न घटकरूपी वाक्य भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हुए भी परस्पर मिलते हुए भी एक समग्रता बोधक अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रकार वाक्य से कहीं विस्तृत अर्थ और संरचना का ज्ञान होता है। इस प्रक्रिया से जुड़े विभिन्न वाक्यों का समूह विशेष भाव और संरचना संदर्भ में भाषा की

महत्तम इकाई का बोध कराता है। आचार्य विश्वनाथ ने इसे 'महावाक्य' कहा तो **डॉ. रामचन्द्र वर्मा** ने इसे 'वाक्यबन्ध' नाम अभिहित किया है। उनकी धारणा है कि यदि पद से विभिन्न पदों के योग पर पदबन्ध बनाता है तो वाक्य को विभिन्न वाक्यों के योग से वाक्यबन्ध बनना चाहिए।

डॉ. भोलानाथ ने आचार्य विश्वनाथ के नाम पर सहमति व्यक्त करते हुए लिखा, "यह अजीब-सी बात है कि अपनी परम्परा के इस पुराने शब्द महाकाव्य को छोड़कर आज हमने इस अर्थ में एक नया शब्द 'प्रोक्ति' बनाया है और स्वीकार किया है। ऐसा करके हमने "अपनी परम्परा के प्रति बहुत न्याय नहीं किया है।"

डॉ. रामचन्द्र वर्मा ने प्रोक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है, "अर्थ की दृष्टि से परिपूर्ण वाक्यों की सुसंबद्ध इकाई का नाम प्रोक्ति है।"

प्रोक्ति की संरचना, आन्तरिक अर्थ-संदर्भ और अभिव्यक्ति को ध्यान में रखकर इसे इन तत्त्व-रूपोंमें देख सकते हैं–

एकाधिकवाक्य,
आन्तरिक सुसंबद्धता या संबद्धता,
तत्त्व-सरणिरू वक्ता, श्रोता, वक्तव्य, संदर्भ, शैली प्रकार,
संप्रेषणीयता,
संरचना और संप्रेषणीयता में एक इकाई स्वरूप,

अर्थ -संरचना

ध्वनि, शब्द, पद और वाक्य आदि भाषा की शारीरिक इकाइयाँ हैं, तो अर्थ भाषा की आत्मा है। अर्थ को मुख्यत: सात वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–(क) मुख्यार्थ - पानी, गाय, विद्यालय आदि।(ख) लक्ष्यार्थ - वह तो गधा है।(ग) व्यंजनार्थ - यहाँ परम्परा से अर्थ जोड़ते हैं, यथा - गंगा जल (पवित्रता का प्रतीक)(घ) सामाजिक - "टल्वन" B शब्द के लिए हिन्दी में विभिन्न संदर्भों के लिए तू, तुम और आपका प्रयोग करते हैं। तू - (छोटे के लिए, गुस्से में) तू जा, तू खा। तुम - (बराबर के लिए) तुम चलो, तुम लिखो। आप - (आदर सूचक, बड़ों के लिए) आप चलिए, आप लिखिए। (ङ) बलात्मक - प्रमोद रोटी खाएगा, रोटी खाएगा प्रमोद। (च) शैलीय अर्थ - (हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी शैली) आप बैठिए, आप तशरीफ रखिए, आप विराजिए।पर्यायता–कुछ शब्दों को पर्यायी या समानार्थी शब्द कहते हैं। वास्तव में पर्यायी शब्दों के दो वर्ग हैं–(क)

पूर्ण पर्यायी–क्वह = कुत्ता, Man = आदमी। (ख) आंशिक पर्यायी–भीगा–गीला, छोटा–नाटा, सुन्दर–अच्छा, बढ़िया–स्वादिष्ट। विलोम–विलोम अर्थ अभिव्यक्ति हेतु मूल यौगिक रूपों में शब्दों का निर्माण करता है। मूलः जड़–चेतन, सुख–दुःख, दिन–रात आदि। यौगिक–इसमें कभी उपसर्ग लगाते हैं, कभी प्रत्यय, यथा–शुभ–अशुभ, उचित–अनुचित (उपसर्ग–आधार), कृतज्ञ–कृतज्ञ (प्रत्यय–आधार)अर्थ–संरचना में समास की भी विशेष भूमिका होती है, यथा–दुआ–बद्दुआ, स्वदेश–परदेश (विदेश)स्वतंत्र–परतंत्र, बुद्धिमान–बुद्धिहीन

इसी प्रकार अनेकार्थी शब्दों की संरचना में भी विविधता देखी जा सकती है, जो भाषा–संरचना का महत्त्वपूर्ण अंश है।

संरचनात्मक भाषा–विज्ञान भाषा की संरचना को विवेच्य मानता है, जबकि प्रकार्यात्मक भाषा–विज्ञान भाषा के प्रकार्य को। भाषा की संरचना को विवेच्य मानने वाली दृष्टियाँ भाषा–व्यवस्था के निकट हैं। भाषा के प्रकार्य को महत्वपूर्ण मानने वाली दृष्टियाँ भाषा–व्यवहार से प्रेरणा प्राप्त करती हैं।

परम्परागत व्याकरण एवं आधुनिक संरचनात्मक भाषा–विज्ञान

संरचनात्मक भाषा–विज्ञान ने यह माना कि प्रत्येक भाषा की अपनी संरचना होती है। संरचनात्मक भाषा–विज्ञान का लक्ष्य किसी भाषा की निजी व्यवस्थागत विशिष्टताओं को विश्लेषित करना है। इसके कारण बीसवीं शताब्दी में, परम्परागत व्याकरण से भिन्न भाषा वैज्ञानिक विवेचन की पद्धति का आविर्भाव हुआ। पहले यूरोप की अधिकांश भाषाओं के परम्परागत व्याकरण इन भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप न होकर लैटिन एवं ग्रीक व्याकरणों का अनुगमन करके लिखे जाते थे। इसी प्रकार हिन्दी के परम्परागत व्याकरण भी संस्कृत व्याकरण को आदर्श मानकर लिखे गए। संस्कृत भाषा की जो संरचना थी, उसके जो नियम संस्कृत व्याकरणों में निर्धारित किए गए थे, उन नियमों के साँचों में, हिन्दी के परम्परागत व्याकरणों में, हिन्दी भाषा के उदाहरणों को रख दिया जाता था। इस प्रकार परम्परागत व्याकरण में किसी क्लासिकल लैंग्वेज के व्याकरण के ढाँचे में आधुनिक भाषा के उदाहरणों को रख देने की प्रवृत्ति कार्य करती है। आज भी हिन्दी के परम्परागत व्याकरणों में संस्कृत की भाँति आठ कारक माने जाते हैं। संस्कृत में संज्ञा के कारकीय स्तर पर 8 भेद हैं। एक संज्ञा शब्द के एक ही वचन में कारकानुसार 8 भेद हो जाते हैं। किन्तु इस प्रकार की व्यवस्था संस्कृत में है। हिन्दी की व्यवस्था भिन्न है। हिन्दी में केवल दो कारक हैं –

(1)अविकारी कारक (2) विकारी कारक। सम्बोधन को भी मिलाने पर तीन कारक। हिन्दी भाषा के परम्परागत व्याकरणों में, जिनको कारक चिह्न बताया जाता है, वे कारक नहीं अपितु परसर्ग हैं। इसी प्रकार लैटिन व्याकरण को आधार लेकर अंग्रेजी के जो व्याकरण लिखे गए थे उनमें प्रत्येक क्रिया के तीन पुरुष एवं प्रत्येक के एकवचन एवं बहुवचन भेद किए जाते थे। वस्तु स्थिति यह है कि ´gksuk´ (To be) क्रिया को छोड़कर, शेष अन्य समस्त क्रियाओं के वर्तमान काल में दो रूप मिलते हैं तथा भूतकाल में केवल एक रूप मिलता है।

भाषा की संरचना–वर्णानात्मक भाषा-विज्ञान (Descriptive Linguistics) एवं संरचनात्मक भाषा-विज्ञान (Structural Linguistics)

वर्णानात्मक एवं संरचनात्मक भाषा-विज्ञान भाषा के शब्दार्थ की विवेचना की अपेक्षा उसकी व्यवस्था और संरचना के नियमों को नियमबद्ध करने पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित रखता है। भाषा में शब्द और अर्थ द्रव्य (substance) है। सामान्य व्यक्ति भाषा में शब्द और अर्थ को महत्व देता है। उसके द्वारा हम अपने भाव और विचार को व्यक्त करते हैं। भाषा-संरचना को महत्व देने वाले भाषा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि भाषा में शब्द तो आसानी से परिवर्तित हो जाते हैं, मगर भाषा-संरचना अपेक्षाकृत स्थिर तत्त्व है। जैसे नदी के तट पानी की धारा के प्रवाह को मर्यादित रखते हैं, उसी प्रकार भाषा-संरचना भाषा को बाँधकर रखती है। भाषा के दो पक्ष हैं। (1) भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था अथवा भाषा-संरचना (2) शब्दावली। व्याकरणिक व्यवस्था अथवा सम्बंध-दर्शी तत्त्वों को आबद्ध भी कहा जाता है। व्याकरणिक व्यवस्था अथवा सम्बंध-दर्शी तत्त्वों के नियम परिमित होते हैं। इसके विपरीत शब्दावली अथवा अर्थ-दर्शी तत्त्व को मुक्त कहा जाता है। इस कारण किसी भाषा की शब्दावली में शब्दों की संख्या अपरिमित होती है। हम देखते हैं कि भाषा का कोई शब्दकोश कभी भी अन्तिम नहीं होता। भाषा में नए शब्द प्रवेश करते रहते हैं। भाषा के व्याकरणिक नियमों में इतनी आसानी से परिवर्तन नहीं होता। ये अपेक्षाकृत स्थिर होते हैं।

भारत में **पाणिनी** ने अपने ग्रंथ 'अष्टाध्यायी में अपने समय में उदीच्य क्षेत्र के गुरुकुलों में बोली जाने वाली मानक संस्कृत की व्यवस्था और संरचना को सूत्रों में नियमबद्ध किया। इनके व्याकरण के सम्बंध में **ब्लूमफील्ड** ने कहा है कि पाणिनी की अष्टाध्यायी में संस्कृत का जितना पूर्ण विवरण उपलब्ध है उतना पूर्ण विवरण संसार की किसी अन्य भाषा का उपलब्ध नहीं है'। पाश्चात्य भाषा चिन्तन की परम्परा में कोपेनहेगन सम्प्रदाय में **रास्क** (जन्म 1787 ईस्वी) ने

तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के अध्ययन में शब्दों की अपेक्षा व्याकरण का महत्व प्रतिपादित किया। इस परम्परा में विद्वानों ने जो अध्ययन किया वह 'ध्वनि नियमों' के नाम से जाना जाता है। अमेरिकी सम्प्रदाय के **बोआस** (1858--1942) का अधिकांश जीवन अमेरिकी महाद्वीप के आदिम समाजों की संस्कृति के अध्ययन में व्यतीत हुआ। आपने 'हैंडबुक ऑफ अमेरिकन इंडियन लैंग्वेजिज' के प्रथम खण्ड की भूमिका में 'अमेरिकी वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान सम्प्रदाय' की आधार शिला रखी। वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान में विश्लेषण की तकनीकों को शुरू करने की दृष्टि से बोआस एवं उनके शिष्य **सपीर** का महत्व सबसे अधिक है। इन दोनों ने अपने शिष्यों के साथ आदिम समाजों के क्षेत्रों में जाकर अध्ययन किया। इनके अध्ययनों से भाषा-विज्ञान में निम्नलिखित परिवर्तन हुए तथा नवीन पद्धतियों एवं संकल्पनाओं ने जन्म लिया-

1. ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान एवं तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के स्थान पर एककालिक अथवा संकालिक भाषा-विज्ञान को महत्व दिया जाने लगा,
2. शब्द एवं अर्थ की अपेक्षा भाषा के व्याकरण के नियमों को जानने पर बल प्रदान किया जाने लगा। इसके लिए ध्वनि के धरातल पर ध्वनियों के स्थान पर ध्वनिमिकों का तथा व्याकरण के धरातल पर परम्परागत व्याकरण के मॉडल में विवेच्य भाषा के उदाहरणों को रखने के स्थान पर उस भाषा की अपनी विशिष्ट व्यवस्था और संरचना के नियमों का अध्ययन करना अभीष्ट हो गया।
3. सामग्री के विश्लेषण और वितरणगत स्थितियों के आधार पर व्यवस्थागत इकाइयों को जानने के लिए नई तकनीकों का विकास हुआ,
4. भाषा के क्षेत्र में जाकर सूचक से भाषिक सामग्री प्राप्त करने पर बल दिया गया,

   सूचक के उच्चारों को इन्टरनेशनल फोनेटिक एल्फाबेटिक लिपि में लिखना अनिवार्य हो गया,
5. यह माना गया कि प्रत्येक भाषा की द्वैध व्यवस्था होती है,
6. ध्वनिमिक व्यवस्था में ध्वनि विवेचन का महत्व समाप्त हो गया। उसके स्थान पर ध्वनिमिक अथवा स्वनिमिक अध्ययन किया जाने लगा। किसी भाषा में दो ध्वनियों का वितरण किस प्रकार का है—यह जानना महत्वपूर्ण हो गया। स्वनिमिक व्यवस्था के अध्ययन का मतलब पूरक वितरण एवं/अथवा स्वतंत्र परिवर्तन में वितरित ध्वनियों का एक वर्ग अर्थात्

ध्वनिमिक अथवा स्वनिम बनाना तथा व्यतिरेकी अथवा विषम वितरण में वितरित ध्वनियों को अलग-अलग ध्वनिमिक अथवा स्वनिम के रूप में रखने की पद्धति का विकास हुआ,

7. रूपिम व्यवस्था में उच्चार की लघुतम अर्थवान अथवा अर्थयुक्त इकाइयाँ (रूप) प्राप्ति के बाद वितरणगत स्थितियों के आधार पर रूपप्रक्रियात्मक संरचना का अध्ययन होने लगा,
8. सूचक से प्राप्त भाषिक सामग्री को प्रामाणिक मानकर उसके आधार पर भाषा के प्रत्येक स्तर पर विश्लेषण एवं वितरणगत तकनीकों के आधार पर भाषिक इकाइयों को प्राप्त करना तथा उसके बाद उनकीशृंखलाबद्ध संरचना के नियम बनाना लक्ष्य हो गया।

उपर्युक्त विवरण का सार यह है कि अब भाषा की व्यवस्था और संरचना का अध्ययन करना ही साध्य हो गया। भाषा के अभिलक्षण के प्रसंग में भाषा व्यवस्था एवं संरचना के सम्बंध में विचार किया जा चुका है।

वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान का विकास संरचनात्मक भाषा-विज्ञान में हुआ। अमेरिका में संरचनावादी भाषा-विज्ञान का सूत्रपात **ब्लूमफील्ड** आदि विद्वानों ने किया। इस परम्परा को पहले वर्णात्मक भाषा-विज्ञान के नाम के पुकारा गया। भाषा के कथ्य अथवा अर्थ के स्थान पर भाषिक-रूप अथवा आकृति के अध्ययन पर अधिकाधिक बल देते हुए इसका विकास संरचनात्मक भाषा-विज्ञान के रूप में हुआ। **ब्लॉक**, **ट्रेगर**, **हॉकेट** आदि भाषा वैज्ञानिकों ने इसको विकसित किया जिसकी परिणति **जैलिग हैरिस** एवं **चॉम्स्की** के कार्यों में हुई।

संरचनावादी दृष्टि की मान्यता है कि किसी भाषा के बाह्य रूप को उसकी शब्दावली से जाना जा सकता है, किन्तु उसकी आत्मा के दर्शन उसमें छिपी हुई संरचनात्मक व्यवस्थाओं को पहचानने पर ही होते हैं। भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था आबद्ध एवं निश्चित होती है। इस कारण प्रत्येक भाषा के व्याकरणिक नियम बनाए जा सकते हैं। भाषा की शब्दावली की कोई निश्चित सीमा नहीं होती। इसका कारण यह है कि शब्दावली भाषा में प्रविष्ट होती रहती है तथा लुप्त होती रहती है। यह भाषा के अन्दर परिवर्तित होते रहने वाला तत्त्व है। इसके विपरीत भाषा का व्याकरण अपेक्षाकृत स्थिर तत्त्व है। इसके कारण भाषा की व्याकरणिक व्यवस्थाओं को नियमबद्ध किया जाता है। संरचनात्मक भाषा-विज्ञान ने माना कि मानव भाषा का सबसे अधिक वैशिष्टय इस तथ्य में निहित है कि उसमें संरचनात्मक व्यवस्था होती है।

कतिपय विद्वान व्यवस्था (System) एवं संरचना (Structure) का पर्याय रूप में प्रयोग करते हैं। सामान्य अर्थ में ये पर्याय है। विशिष्ट अर्थ में दोनों में अन्तर हैं। भाषा की सम्बंध-दर्शी इकाइयों का रूपतालिकात्मक अथवा सहचारक्रमात्मक (Paradigmatic) एवं विन्यास क्रमात्मक (Syntagmatic) संदर्भों में अध्ययन करते समय इनका प्रयोग भिन्न अर्थों में किया जाता है।संरचना में इकाइयों कीशृंखला होती है। शृंखला में एक इकाई जिस जगह आती है वह उसका स्थान कहलाता है। किसी निश्चित स्थान पर एक दूसरे को स्थानापन्न करने वाली भाषिक इकाइयाँ रूपतालिकात्मक सम्बन्ध का निर्माण करती हैं। अपने या अपने से ऊपर के स्तर की इकाई का निर्माण करने वाले संरचकों के रेखीय अध्ययन से विन्यासक्रमात्मक सम्बन्धों का पता चलता है। विशिष्ट अर्थ में व्यवस्था का रूपतालिकात्मक तथा संरचना का विन्यासक्रमात्मक सम्बन्धों के अध्ययन के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। हिन्दी भाषा के संदर्भ में, रूपतालिकात्मक सम्बंधों को रूपावली की निम्न तालिका से पहचाना जा सकता है–

लड़का, रमेश, धोबी, माली, अपने, घर, काम पर, अपने दोस्त के घर, जाता है। जा रहा है। गया। जाएगा।

इस तालिका के प्रथम खण्ड में आए/लड़का रमेश धोबी माली, भिन्न शब्द हैं। इनके अर्थ अलग हैं। मगर ये सभी शब्द सजीव पुल्लिंग एकवचन संज्ञा शब्द हैं। इस खण्ड में इसी कोटि का कोई शब्द रखा जा सकता है। इस कोटि के किसी शब्द से इनमें से किसी भी शब्द को स्थापन्न किया जा सकता है।

व्यवस्था रूपावली (Paradigm) का अध्ययन करती है, संरचना विविध स्तरों की इकाइयों के विन्यासक्रमात्मक सम्बन्धी विशेषताओं का उद्‌घाटन करती है। इस सम्बन्ध में **आर. एच. रॉबिन्स** ने संरचना एवं व्यवस्था का अन्तर प्रतिपादित किया है।

"संरचना मूलत: विन्यासक्रमात्मक सम्बन्धों के अध्ययन के लिए प्रयुक्त होता है। व्यवस्था रूपतालिकात्मक सम्बंधों का अध्ययन करती है। संरचना में इकाइयों के विन्यासक्रमात्मक अन्तसम्बंधों का अध्ययन किया जाता है। व्यवस्था में किसी रचना में एक रूपावली में स्थापन्न होने वाले शब्द आदि तत्त्वों के रूपतालिकात्मक अन्तर्सम्बंधों का अध्ययन किया जाता है"।

भाषा की व्यवस्था को प्रो. हिल ने तीन लक्षणों द्वारा समझाया है।

(1) प्रत्येक व्यवस्था की भाँति ही भाषा में भाषिक इकाइयों की आवर्ती साँचें में संरचना होती है। जब साँचे का कोई अंश दृष्टिगोचर होता है, तब सम्पूर्ण व्यवस्था के बारे में उसी विधि से अनुमान किया जा सकता है, जिस विधि से दो कोण और एक पार्श्व रेखा के ज्ञात होने पर त्रिकोण बनाया जा सकता है।

(2) भाषा व्यवस्था के सम्बंध में यह भी कहा जा सकता है कि भाषा के उच्चारण में एक इकाई के द्योतक (शब्द) के स्थान पर उसी कोटि के दूसरे द्योतक (शब्द) को स्थानापन्न किया जा सकता है। प्रत्येक वाक्य में भाषिक इकाइयों की शृंखला होती है। मूल रचना के बिना किसी परिवर्तन के प्रत्येक कोटि की इकाई के स्थान में आने वाले एक शब्द की जगह उसी कोटि के अन्य शब्दों को स्थापन्न किया जा सकता है। ऐसा करने से वाक्य के अर्थ में अन्तर आता है, उसकी रचना में नहीं।

(3) भाषा व्यवस्था की एक अन्य विशेषता यह है कि भाषा के शब्दों को वर्गों में वर्गबद्ध किया जा सकता है। संसार की अपरिमित इकाइयों की अपेक्षा ये अधिक निश्चित, परिमित तथा आसानी से परस्पर पहचाने जा सकते हैं।

संरचनात्मक भाषा-विज्ञान मानता है कि प्रत्येक भाषा में द्वैध व्यवस्था होती है। उसमें एक ओर ध्वन्यात्मक व्यवस्था होती है तथा दूसरी ओर व्याकरणिक व्यवस्था। भाषा की ध्वनियाँ स्वतः अर्थहीन होती हैं। ध्वनियों का उच्चारण भौतिक घटनाएँ हैं तथा इस रूप में ये ध्वनिविज्ञान एवं भौतिक विज्ञान में विवेच्य हैं। प्रत्येक भाषा में ध्वनियों की अपनी व्यवस्था होती है। दो भाषाओं में ध्वनियाँ समान हो सकती हैं, किन्तु उनका भाषाओं में प्रकार्य समरूप नहीं होता। इस कारण ध्वनियों की संरचनात्मक इकाइयों में भेद होता है। जब हम ध्वन्यात्मक व्यवस्था की विवेचना करते हैं तब हमारा तात्पर्य किसी विशिष्ट भाषा के ध्वनिमिकों से होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी एवं तमिल में 'क' एवं 'ऱ' ध्वनियों का उच्चारण होता है। हिन्दी में इनका ध्वनिमिक महत्व है। तमिल में इनका ध्वनिमिक महत्व नहीं है। इसी कारण तमिल की लिपि में इनके लिए अलग-अलग वर्ण नहीं हैं। प्रत्येक भाषा में अर्थहीन इकाइयों के विशेष क्रम से सार्थक इकाइयाँ बनती हैं। इन सार्थक इकाइयों के दो प्रकार होते हैं-(1) शब्दकोषीय (2) व्याकरणिक। शब्दकोषीय इकाइयाँ विचार तत्त्व को व्यक्त करती हैं। व्याकरणिक इकाइयाँ सम्बंध तत्त्व को व्यक्त करती हैं। व्याकरण

भाषा-विज्ञान के रूप का वह स्तर है, जहाँ बद्ध व्यवस्थाएँ होती हैं। इस कारण उनके निश्चित नियम बनाए जा सकते हैं।भाषा की द्वैध व्यवस्था उसकी विशिष्टता को प्रकट करती है। इस सम्बन्ध में **डॉ. पी. बी.** पंडित ने लिखा है–

"मानव भाषा एक अनन्य व्यवस्था है। इस व्यवस्था की दो उपव्यवस्थाएँ हैं–(1) ध्वनि घटकों की व्यवस्था (2) ध्वनि घटकों के साथ आवर्तनों की व्यवस्था, जिसको व्याकरण कहते हैं। मानव भाषा की व्यवस्था में यह द्वैत इतना स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि एक उप व्यवस्था को समझाने के लिए कभी दूसरी उपव्यवस्था का आधार लेने की आवश्यकता नहीं। यह व्यवस्थागत द्वैत मानव भाषा का एक विशिष्ट लक्षण है। उच्चारण और अर्थ दोनों घटनाएँ भाषा व्यवस्था की बाहर से स्पर्शती घटनाएँ हैं।"

डॉ. प्रबोध बेचरदास पंडित: गुजराती व्याकरण में जाति और परिणाम (हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृष्ठ 2, वर्ष 13, अंक 1-2)

भाषा की ध्वनियों का उच्चारण विभिन्न वाक् अवयवों के द्वारा होता है। विभिन्न ध्वनियाँ मिलकर बड़ी इकाई बनाती हैं। यह बनने वाली इकाई उच्चारित ध्वनियों का रेखीय, क्रमिक किन्तु अविच्छिन्न प्रवाह होता है। यह इकाई उच्चारित ध्वनियों की शृंखला बनाती है। शृंखला में ध्वनियाँ एक के बाद दूसरी के क्रम में आती हैं। इनका अनुक्रम रहता है। इनको पृथक किया जा सकता है। ये विश्लेषित होने वाली इकाइयाँ मिलकर अक्षर, रूपग्राम, शब्द, वाक्यांश, वाक्य बनाती हैं। इनके स्तर होते हैं। प्रत्येक स्तर पर रचना की विशिष्ट व्यवस्था होती है। प्रत्येक स्तर की इकाई अपने से निम्न स्तर की एक अथवा एकाधिक इकाइयों से मिलकर बनती है। दूसरे शब्दों में निम्न स्तर की एक अथवा एकाधिक इकाइयाँ मिलकर बड़े स्तर की इकाई की रचना करती है। उदाहरण के लिए वाक्य स्तर की इकाई एक अथवा एकाधिक उपवाक्य/उपवाक्यों द्वारा बनती है। उपवाक्य स्तर की इकाई एक अथवा एकाधिक वाक्यांश ध्वाक्यांशों द्वारा, वाक्यांश स्तर की इकाई एक अथवा एकाधिक शब्द/शब्दों द्वारा, शब्द स्तर की इकाई एक अथवा एकाधिक रूपग्राम/रूपग्रामों द्वारा बनती है। हिन्दी भाषा के संदर्भ को ध्यान में रखकर इनको इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

संरचना स्तर,
संरचित इकाई,
संरचक (एक अथवा एकाधिक,
वाक्यीय स्तर,

वाक्य,
उपवाक्य,
उपवाक्यीय स्तर,
उपवाक्य,
वाक्यांश अथवा पदबंध,
वाक्यांश अथवा पदबंध स्तर,
वाक्यांश अथवा पदबंध,
पद (सविभक्तिक शब्द),
पदीय स्तर,
पद (सविभक्तिक शब्द),
शब्द,
शब्द स्तर,
शब्द,
रूपिम।

प्रत्येक स्तर की संरचक इकाई/इकाइयों के क्रम, विस्तार आदि की अभिरचनाएँ (च्ंजजमतदे) होती हैं। इन अभिरचनाओं की नियमबद्धता एवं परस्पर सम्बंधों के नियम उस स्तर की व्यवस्था को स्पष्ट करते हैं। विविध स्तरों की इकाइयों के परस्पर मिलकर अपने से बड़े स्तर की इकाइयों की रचना के नियम संरचना को स्पष्ट करते हैं। विविध स्तरों का परस्पर अधिक्रम होता है। अधिक्रम में एक स्तर में आनेवाली इकाइयों का संरचनात्मक मूल्य समान होता है। संरचनात्मक मूल्य से उस व्याकरणिक इकाई की पहचान होती है। एक स्तर की व्याकरणिक इकाई अधिक्रम में अपने से नीचे स्तर की व्याकरणिक इकाई/इकाइयों की पहचान कराती है। उदाहरण के लिए अधिक्रम में वाक्य स्तर की इकाई की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से हो रही है–

कॉलिज में पढ़नेवाला लड़का धीरे-धीरे अपने घर जा रहा है।

इस वाक्य स्तर की इकाई संरचनात्मक दृष्टि से वाक्यांशों से निर्मित है। संज्ञा वाक्यांश + क्रिया वाक्यांश।

संज्ञा वाक्यांश की रचना की अभिव्यक्ति = कॉलिज में पढ़नेवाला लड़का।

क्रिया वाक्यांश की रचना की अभिव्यक्ति = धीरे-धीरे अपने घर जा रहा है।

संज्ञा वाक्यांश संरचनात्मक दृष्टि से पद-समूह द्वारा निर्मित है। पद समूह शब्द अथवा शब्दों से तथा शब्द रूपग्राम अथवा रूपग्रामों से।

संज्ञा वाक्यांश की अभिव्यक्ति केवल एक पद (सविभक्तिक शब्द) से भी हो सकती है। उदाहरण के लिए यदि वाक्य होता–लड़का जा रहा है। इसमें संज्ञा वाक्यांश की अभिव्यक्ति केवल एक पद (सविभक्तिक शब्द) 'लड़का' से हो रही है।

लड़का को मोहन, राम, श्याम से स्थानापन्न किया जा सकता है। इन शब्दों में से एक पद के स्थान पर दूसरा पद रखने से अर्थ में अन्तर आएगाय संरचना में नहीं। 'लड़का' पद को जिन जिन पदों से स्थानापन्न किया जा सकेगा वे सभी पद एक व्याकरणिक इकाई के संरचनात्मक मूल्य के द्योतक हैं। इसी प्रकार `जा रहा है' के स्थान पर 'आ रहा है, 'दौड़ रहा है, 'सोच रहा है' आदि कोई भी रचना हो सकती है। सभी एक ही व्याकरणिक इकाई के द्योतक हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक स्तर पर रचना के विस्तार के नियम होते हैं। उदाहरण के लिए संज्ञा वाक्यांश में 'लड़का' का विस्तार अनेक प्रकार से हो सकता है। उदाहरण के लिए देखें–

लड़का,
अच्छा लड़का,
मेरा लड़का,
मोहन का लड़का,
मेरे घर में रहनेवाला लड़का,
मेरे घर के मेरे बच्चों को रोज पढ़ाने वाला लड़का,
स्टोर से सामान खरीदकर तेजी से भागनेवाला लड़का,
अच्छी तरह से सजधजकर तथा कोट पैंट पहनकर सीटी बजाते हुए मोटरसाइकिल दौड़ाता हुआ लड़का।

उपर्युक्त सभी उदाहरणों में संज्ञा वाक्यांश के अनिवार्य शीर्ष स्थान पर 'लड़का' है। अनिवार्य शीर्ष के पहले की रचनाएँ संरचना की दृष्टि से वैकल्पिक हैं। इसी आधार पर भाषा के आधार वाक्यों, आधार संरचनाओं एवं आधारभूत इकाइयों का निर्धारण किया जाता है। भाषा के शिक्षण के लिए भी यह जरूरी है। विशेष रूप से विदेशी एवं अन्य भाषा शिक्षण के संदर्भ में इसका महत्व बहुत अधिक है।

किसी भाषा के व्याकरण में स्तरों की श्रेणियों की सीमाएँ सर्वथा स्पष्ट एवं भेदक नहीं होती। भाषा में एक रचना जो वाक्य खाँचे में आ रही है, वह रचना वाक्यांश खाँचे का एक भाग हो सकती है। एक खाँचे में जो पद है वही

पद दूसरे खाँचे में वाक्य हो सकता है। हमने जो उदाहरण दिया - 'कॉलिज में पढ़ने वाला लड़का धीरे-धीरे अपने घर जा रहा है।' इस वाक्य खाँचे में 'लड़का' संज्ञा वाक्यांश के शीर्ष खाँचे में 'पद' है। दूसरा उदाहरण देखें- एक व्यक्ति प्रश्न करता है–कौन आ रहा है? इस प्रश्न का उत्तर हो सकता है - 'लड़का'। इस उत्तर में 'लड़का' वाक्य है। जो एक खाँचे में पद था वह दूसरे खाँचे में वाक्य हो गया। इस प्रकार व्याकरणिक इकाइयों का अधिक्रम सर्वथा निश्चित नहीं होता। जब उच्च श्रेणी की इकाई निम्न श्रेणी की इकाई का प्रकार्य करती है, तब स्तर इकाइयों के अधिक्रम के इस परिवर्तन को श्रेणी परिवृत्ति (rank shift) कहते हैं। उदाहरणार्थ, 'तुम दिन भर इधर-उधर घूमा करते हो' यह वाक्य स्तर की इकाई है। इस वाक्यीय इकाई की 'तुमको कोई काम नहीं है, जो तुम दिन भर इधर-उधर घूमा करते हो' - वाक्य में उपवाक्य स्तर पर श्रेणी परिवृत्ति है।

प्रत्येक स्तर की संरचना होती है तथा उसमें संभावित अभिरचनाओं का निश्चित समुच्चय होता है। किसी स्तर की इकाई के संरचकों के विन्यासक्रमात्मक सम्बन्धों की अभिरचनाएँ ही उस स्तर की संरचना का निर्माण करती हैं। संरचना जिन तत्त्वों से निर्मित होती है, उनमें विन्यास की व्यवस्थाएँ होती हैं तथा उनमें क्रमिक सम्बन्धों की योजना होती है। "एक विशिष्ट संरचना संरचक इकाइयों के वर्गों का एक विशिष्ट संयोजन है"।

"एक संरचना संरचक इकाइयों के पारस्परिक विन्यास एवं क्रमिक सम्बन्धों का निरूपण करती है। किसी भी विश्लेषित स्तर पर व्याकरणिक इकाइयों की बद्ध व्यवस्थाएँ संरचना के संरचक इकाइयों के पारस्परिक निश्चित मूल्य बताने के लिए होती हैं।"

"'इकाई' शब्द नहीं हैं। वे तो वर्गों की प्रतीकात्मक अमूर्तताएँ हैं, जो संरचनात्मक शृंखला की स्थितियों में कार्य करने की क्षमता रखते हैं"।

कुछ 'संरचक इकाइयाँ' संरचना के लिए अनिवार्य होती हैं एवं कुछ वैकल्पिक। 'लड़का कमरे में पढ़ रहा है' इस वाक्य में (1) संज्ञा वाक्यांश (2) अव्यय वाक्यांश एवं (3)क्रिया वाक्यांश हैं।

संज्ञा वाक्यांश (कर्ता),
अव्यय वाक्यांश (पूरक),
क्रिया वाक्यांश,
लड़का,
कमरे में,
पढ़ रहा है।

इन तीनों में संज्ञा वाक्यांश एवं क्रिया वाक्यांश अनिवार्य हैं तथा अव्यय वाक्यांश वैकल्पिक है। अनिवार्य संरचकों के आधार पर ही उपवाक्य की मूल संरचनाओं का अध्ययन सम्पन्न किया जाता है।

इस प्रकार संरचनात्मक भाषा-विज्ञान में जब व्यवस्था एवं संरचना का भेदक अर्थ में प्रयोग किया जाता है तब 'व्यवस्था' रूपावली का अध्ययन करती है तथा 'संरचना' से तत्त्वों के विन्यासक्रमात्मक सम्बंधी विशेषताओं का पता चलता है। जब व्यवस्था एवं संरचना में भेद नहीं किया जाता, तब व्यवस्था एवं संरचना का समान अर्थ में प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए हॉकिट ने संरचना के स्थान पर व्यवस्था शब्द का प्रयोग किया है। **हॉकिट** ने कहा है कि भाषा की व्यवस्था जटिल होती है। अनेक स्तरों एवं उनके तत्त्वों की व्यवस्थाओं के संदर्भ में हम यह भी कह सकते हैं कि प्रत्येक भाषा 'जटिल व्यवस्थाओं' की 'व्यवस्था' होती है। हॉकिट ने भाषा की पाँच उप-व्यवस्थाएँ मानी हैं, जिनमें से तीन को केन्द्रीय रूप में स्वीकार किया है–

व्याकरणीय व्यवस्था (The Grammatical System)–रूपिमों का समूह और उनकी क्रम व्यवस्था।

स्वनिमिक व्यवस्था (The Phonological System)–ध्वनिग्रामों अथवा स्वनिमों का समूह और उनकी क्रम व्यवस्था।

रूपस्वनिमिक व्यवस्था (The Morphophonemic System)–व्याकरणिक एवं स्वनिमिक व्यवस्थाओं को परस्पर संबद्ध करने वाली संहिता। (संधि व्यवस्था)। इन्हें केन्द्रीय इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इनका उस भाषेतर वातावरण से, जहाँ भाषा का प्रयोग किया जाता है, प्रत्यक्षत: कोई संबंध नहीं होता।

प्रत्येक भाषा की अपनी अलग व्यवस्था एवं संरचना

भाषाओं में प्रत्येक स्तर भिन्नताएँ होती हैं। (1)ध्वन्यात्मक (2) ध्वनिमिक (3) ध्वनिमिकविन्यास (4) रूपग्रामिक (5) वाक्यविन्यासीय।

विभिन्न भाषा विभिन्न वाक् अवयवों का प्रयोग करते हैं। किसी भाषा में किसी अवयव का प्रयोग अधिक होता है तो किसी में दूसरे का। फ्रेंच भाषा में ओठों की आकृति ध्वनियों में भिन्नता ला देती है, किन्तु इरोक्यूओइस (Iroquois) में ओष्ठ्य ध्वनियों का इतना अभाव है कि इस भाषा के बारे में यह कहावत प्रसिद्ध है कि इसका बोलने वाला व्यक्ति भाषण प्रक्रिया के दौरान

मुँह से सिगरेट पी सकता है। अरबी भाषा में उपलिजिह्वा अथवा ग्रसनी स्थान से ध्वनियों का उच्चारण होता है। किन्तु हिन्दी में इस स्थान से ध्वनियों का उच्चारण नहीं होता। कैन्टोनी में समस्त स्पर्श एवं संघर्षी ध्वनियाँ अघोष हैं तथा शेष ध्वनियाँ सघोष हैं। इसलिए वहा घोष-तंत्रियों की स्थिति व्यतिरेकी नहीं है। हिन्दी आदि भारतीय आर्य भाषाओं एवं अंग्रेजी आदि में घोषत्व-अघोषत्व व्यतिरेकी लक्षण हैं। हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में प्राणत्व व्यवच्छेदक है, किन्तु अंग्रेजी आदि यूरोपीय तथा तमिल आदि भारतीय द्रविड़ भाषाओं में यह व्यतिरेकी नहीं है। स्वर एवं व्यंजनों की संख्या भी भिन्न भाषाओं में भिन्न होती है। भारतवर्ष की आर्य भाषाओं में ही असमिया में 23, बंगला में 28, उड़िया में 31 एवं सिन्धी में 40 व्यंजन ध्वनिमिक हैं। इनके अतिरिक्त दो भाषाओं में कुछ ऐसी भी ध्वनियाँ पाई जाती हैं, जो सूक्ष्म ध्वन्यात्मक भिन्नताएँ लिए हुए होती हैं। प्रत्येक भाषा में अधिखण्डीय ध्वनि तत्त्वों की योजना एवं उनकी व्यवच्छेदकता भी भिन्न होती है।

भाषाओं में रूपग्रामिक एवं वाक्यविन्यासीय विशेषताएँ भी मिलती हैं। इस सम्बन्ध में **ग्लीसन** ने विवेचन करते हुए लिखा है कि ''अंग्रेजी-भाषी वस्तुओं का वचन-भेद किए बिना उनके विषय में किसी भी प्रकार के विचार व्यक्त ही नहीं कर सकते। भले ही इस प्रकार के भेद करना सार्थक हो अथवा न हो, किन्तु उनकी भाषायी प्रकृति के लिए यह अनिवार्य है। इसके विपरीत, चीनी भाषा में वस्तुओं के एकवचन या बहुवचन का उल्लेख तभी किया जाता है, जब वक्ता उसकी सार्थकता समझता है। कुछ भाषाओं में कर्ता और क्रिया के सम्बन्धों के आधार पर परिस्थितियों का विश्लेषण उस प्रकार नहीं किया जाता जैसा कि अंग्रेजी एवं हिन्दी में होता है।

संरचनात्मक भाषा-विज्ञान की अध्ययन पद्धति की सीमाएँ

भारत के जो भाषा वैज्ञानिक अमेरिका में सन् 1955 से लेकर सन् 1960 ईस्वी में रहकर तथा वहाँ से आधुनिक भाषा-विज्ञान की पद्धति और प्रविधि को हृदयंगम करने के बाद भारत लौटे, उनके दिलोदिमाग पर वर्णानात्मक भाषा-विज्ञान और संरचनात्मक भाषा-विज्ञान पूरी तरह आच्छादित था। समर स्कूल ऑफ लिंग्विस्टिक्स की कक्षाओं में ये विद्वान यह रेखांकित करते थे कि भाषा अध्ययन का लक्ष्य किसी भाषा की विशिष्ट व्यवस्था और संरचना को विवेचित करना है। सन् 1958 की कक्षा में, हमने ध्वनियों के उच्चारण, परम्परागत व्याकरण के

मॉडल के अनुरूप आधुनिक भाषा के व्याकरणिक रूपों का अध्ययन तथा शब्दों के अर्थ की मीमांसा को ही वांछनीय होना जाना था। मगर अब जो ज्ञान परोसा जा रहा था, वह अनजाना और नया था। उस ज्ञान का सार था कि किसी भाषा की ध्वनियों के उच्चारण की और शब्दों के अर्थ की मीमांसा करना भाषा अध्ययन का मूल लक्ष्य नहीं है। विवेच्य भाषा की ध्वनिमिक व्यवस्था और व्याकरणिक व्यवस्था को विवेचित करना ही अभीष्ट है। दो भाषाओं में दो ध्वनियों का उच्चारण होने में तथा उन भाषाओं में उनके प्रकार्यात्मक मूल्य को जानने में अन्तर है। हमें विवेच्य भाषा में ध्वनियों की वितरणगत स्थितियों को आधार मानकर अध्ययन करना चाहिए। किसी भाषा में जो ध्वनियाँ परस्पर अविषम वितरण में वितरित हों, उनको एक ध्वनिग्रामिक इकाई में समेटा जा सकता है। परस्पर विषम अथवा व्यतिरेकी वितरण में वितरित होने वाली ध्वनियाँ भिन्न ध्वनिमिकों का निर्माण करती हैं।

रूपग्रामिक खंडन अथवा विश्लेषण का सिद्धांत था कि किसी भाषा में प्राप्त ऐसे उच्चारों में, जिनमें कुछ अंश में समान ध्वनिमिकों का क्रम और समान अर्थ हो तथा कुछ अंश में भिन्न ध्वनिमिकों का क्रम और भिन्न अर्थ हो तो ऐसे उच्चारों को समान और भिन्न अंशों के बीच से खंडित कर दो। इस सिद्धांत के अनुसार हिन्दी में उदाहरण के लिए–लड़का, लड़के, लड़की, लड़कियाँ–जैसे उच्चारों में समान अंश 'लड़क्'–/को आधार घटक मानते हुए हमने सन् 1960 में एक शोध निबंध लिख डाला।

यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि भारतीय व्याकरणिक चिंतन ने यह माना कि भाषा का अध्ययन अर्थ की उपेक्षा करके नहीं किया जा सकता। भाषा के विवेचन के लिए भारतीय व्याकरणिक चिंतन ने आकांक्षा, योग्यता तथा आसक्ति तथा कुछ भारतीय भाषाविदों ने तात्पर्य के महत्व को स्वीकार किया। भारतीय चिंतन ने शब्दों के समूह मात्र को वाक्य नहीं माना। इस दृष्टि से भारतीय चिंतन में भी हमें दो भिन्न विचारधाराएँ मिलती हैं। मीमांसकों के अनुसार वाक्य में क्रिया ही प्रधान है। वाक्य के सभी पद क्रिया से अन्वित होते हैं। मीमांसकों की मान्यता संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिकों की अवधारणा के निकट है। मगर नैयायिकों ने बोध के लिए पदों का आकांक्षा, योग्यता एवं आसक्ति गुणों से युक्त होना आवश्यक माना। क्रियान्वित होते हुए भी पदों का अव्यवस्थित समूह वांक्षित अर्थ-बोध नहीं करा सकता। आकांक्षा, योग्यता आदि के आधार पर ही भाषा की वाक्य रचना की अर्थात्मा तक पहुँचा जा सकता है। इनका आधार न लेने पर

केवल भाषा के वाक्यों की बाह्य संरचना (Surface structure) को ही जाना जा सकता है। इसका विवेचन चॉम्स्की के संदर्भ में किया जाएगा। भारतीय चिंतन की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि उपयुक्त शब्दों की रचना जरूरी है। 'अग्निना सिंचति' इसका उदाहरण है। अग्नि और सींचना में परस्पर उपयुक्त अर्थ वहन करने की योग्यता का अभाव है। भाषा में जब हम एक पद का प्रयोग करते हैं तो अन्य पद की आकांक्षा रहती है। उदाहरण के लिए संज्ञा पद को क्रिया पद की आकांक्षा रहती है। योग्यता के कारण वाक्य में उपयुक्त पदार्थ की ही आकांक्षा रहती है। साकांक्ष एवं उपयुक्त पदार्थों की वाक्य में व्यवधानरहित उपस्थिति का होना भी जरूरी है। यह ज्ञान ही पदों की सन्निधिः है। यही आसक्ति है। भाषा प्रयोग में वक्ता की इच्छा और प्रकरण का भी महत्व है। इसके लिए भारतीय मनीषियों ने संस्कृत के 'हरिरिष्टं ददाति' एवं 'हरिस्तपति' वाक्यों के उदाहरण दिए हैं। इनमें 'हरि' के क्रमशः विष्णु और सूर्य अर्थ हैं। सूर्य के अर्थ में 'तपति' के ही अन्वित होने की योग्यता है। वाक्य में योग्यता एवं आकांक्षा के नियामक को कुछ भारतीय मनीषियों ने वक्ता की इच्छा और प्रकारण आदि में साकार होना माना है तथा इसके लिए पारिभाषिक शब्द के रूप में 'तात्पर्य' का प्रयोग किया है।

योग्यता पदार्थानाम् परस्पर सम्बंधबाधाभावः (साहित्य दर्पण, द्वितीय परिच्छेद)

वाक्यं स्यात् योग्यताकांक्षासक्तियुक्तः पदोच्चयः (साहित्य दर्पण, विमला टीका, पृष्ठ 24)

सन्निधिः आकांक्षितानाम् पदार्थानामेकबुद्ध्-युपारूढत्त्वम्
अव्यवधानेनान्वय प्रतीतियोग्युपस्थितिश्च सन्निधिः (काव्य प्रकाश)
प्रकृतान्वयबोधाननुकूल पदां व्यवधानमासक्तिः (परमलघु मंजूषा)

शब्द के अर्थ के महत्व को पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है।

8

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के प्रकार एवं पद्धतियाँ

भाषा-विज्ञान के अध्ययन के चार पद्धतियां मुख्य रूप से प्रचलित है। इन चार पद्धतियों के आधार पर भाषा-विज्ञान के सभी चार प्रकार हैं–

वर्णनात्मक–भाषा-विज्ञान के अध्ययन

भाषा-विज्ञान वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान के अंतर्गत किसी विशिष्ट काल की किसी एक विशेष भाषा का अध्ययन किया जाता है। भाषा-विज्ञान के इस प्रकार में, भाषा सामान्य का ही नहीं, वरन किसी विशेष भाषा का वर्णन किया जाता है। भाषा की वर्णात्मक समीक्षा करते हुए भाषा की ध्वनि, संरचना तथा शुद्ध–अशुद्ध रूपों का उल्लेख किया जाता है। ध्वनि शब्द रूप वाक्य आदि का अध्ययन कर ऐसे नियम ही निर्धारित किए जाते हैं जिनसे भाषा का स्वरूप प्रकट किया जा सकता है। वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान भाषा के स्वरूप को केवल वर्णित करता है, वह यह नहीं दिखाता की भाषा का वह रूप शुद्ध है या अशुद्ध इसमें अर्थ तत्त्वों का अध्ययन नहीं किया जाता। जो भाषा का प्राण तत्त्व है इसी कारण इसमें अपूर्णता प्रतीत होती है।

'पाणिनी' की अष्टाध्याय इस प्रकार का सर्वोत्तम उदाहरण है।

'वर्णनात्मक' भाषा के विरोध में व्याकरणात्मक अथवा आदेशात्मक भाषा-विज्ञान का विकास हुआ, आदेशात्मक भाषा-विज्ञान के वह भाषा के स्वरूप का वर्णन करके यह निर्धारित तथा आदेशित करता है कि, अमुक भाषा में ऐसा बोलना या लिखना उचित है या नहीं। परंतु वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान भाषा के स्वरूप को केवल वर्णित करता है वह यह नहीं दिखाता की भाषा का वह स्वरूप शुद्ध है या अशुद्ध। वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान आधुनिक हिंदी का वर्णन इस प्रकार करेगा कि 'दिल्ली' और आस-पास रहने वाले लोगों पर 'हरियाणवी' भाषा का प्रभाव है। उदाहरण के लिए हरियाणवी भाषा में 'मुझे', 'मुझको' जाना है, के स्थान पर मैंने जाना है।

इस प्रकार से बोला जाता है जैसे कि वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान शुद्ध या अशुद्ध नहीं देखता। इसके विपरीत व्याकरणात्मक भाषा-विज्ञान इस प्रयोग को अनुचित या अशुद्ध मानेगा। वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान, भाषा के प्रयोग में जो कुछ भी है उसका तटस्थ भाषा से वर्णन मात्र कर देता है, वह चाहे शुद्ध हो या अशुद्ध परंतु व्याकरणात्मक भाषा-विज्ञान व्याकरण के नियमों के अनुसार शुद्ध या अशुद्ध निश्चित करता है। **'प्रोफेसर सस्यूर'** से पहले भाषा-विज्ञान में अध्ययन की पद्धति ऐतिहासिक थी। सस्यूर ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने घोषणा की थी कि, भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन केवल ऐतिहासिक पद्धति पर नहीं बल्कि वर्णात्मक दृष्टिकोण से भी हो सकता है। सस्यूर ने सर्वप्रथम भाषा-विज्ञान को दो वर्गों में विभाजित किया। 'एककालिक' भाषा-विज्ञान दूसरा 'बहुकालिक' भाषा-विज्ञान जिसे सस्यूर ने एककालिक भाषा-विज्ञान कहा था, उसी को अमेरिकी वैज्ञानिक ने 'वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान' की संज्ञा दी।

हिंदी भाषा के विकास क्रम को तीन भागों में विभाजित किया जाता है। (क) आदिकाल, (ख) मध्यकाल, (ग) आधुनिक काल। इसमें से किसी एक काल का अध्ययन विश्लेषण वर्णात्मक, एकीकरण कहलाएगा। यह भूतकाल की परिभाषा का संबंध हो सकता है और वर्तमान काल की भाषा से भी। परंतु इस विश्लेषण किसी एक काल बिंदु पर ही केंद्रित रहता है। इसलिए यह एककालिक अध्ययन कहलाता है, क्योंकि वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान में किसी काल विशेष में प्रचलित भाषा के स्थिर रूप का वर्णन किया जाता है, इसलिए इसे सस्यूर ने इसे 'स्थित्यात्मक' पद्धति कहा है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन–ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान

आधुनिक भाषा-विज्ञान के जनक 'द सस्यूर' ने भाषा-विज्ञान की इस पद्धति शाखा को 'गत्यात्मक' या 'विकासात्मक' पद्धति कहा है। वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान में किसी कार्य विशेष का अध्ययन किया जाता है, इसलिए वह स्थितिआत्मक पद्धति है, जबकि ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान में किसी भाषा के मूल से चलकर उसके वर्तमान रूप तक का क्रमिक अध्ययन किया जाता है। जब किसी भाषा के ध्वनि रूप वाक्य और अर्थ के परिवर्तन का काल क्रमानुसार अध्ययन कर तत्संबंधी नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, तो उसे ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान कहा जाता है। वैदिक युग से प्रारंभ कर = संस्कृत = प्राकृत = अपभ्रंश की परंपरा दिखाते हुए हिंदी भाषा के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालना ऐतिहासिक पद्धति कहलाएगी। वैदिक भाषा ही परिवर्तित होते होते हिंदी के रूप में कैसे उपस्थित हो गई कालक्रम से वैदिक भाषा में जो परिवर्तन हुए उनके क्या कारण थे? इन प्रश्नों पर भी ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान विचार करता है। उदाहरण के लिए–

संस्कृत का 'हस्त'

प्राकृत का 'हक' और

हिंदी में 'हाथ' कैसे बन गया, इसका परिचय हमें भाषा-विज्ञान के अंतर्गत मिल जाता है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन–सैद्धांतिक दृष्टि

सैद्धांतिक दृष्टि से वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति अलग-अलग है, किंतु व्यावहारिक रूप से परस्पर संबंधित है, ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान में किसी भाषा का विकास क्रम बताते समय उस भाषा की काल विशेष की स्थिति बताना आवश्यक होता है। एक ही भाषा कितने कालों को पार करते हुए विकसित हुई है उन -उन कामों में उस भाषा का विश्लेषण किए बिना ऐतिहासिक पद्धति अग्रसर नहीं हो सकती इस प्रकार भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन में वर्णात्मक का समावेश अपने आप ही हो जाता है।

तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के अध्ययन

तुलना के लिए किन्हीं दो चीजों का होना अनिवार्य होता है। अतः तुलनात्मक अध्ययन दो या दो से अधिक भाषाओं का किया जाता है। इसमें दो

या दो से अधिक ध्वनियों, पदों, शब्दों, वाक्य तथा अर्थों आदि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। ऐतिहासिक पद्धतियां में भाषा-विज्ञान में तुलना का समावेश रहता है, किंतु वह तुलना एक ही भाषा के विभिन्न कालों में प्रचलित भाषा रूपों से की जाती है जबकि तुलनात्मक भाषा-विज्ञान दो या दो से अधिक भाषा की तुलना करके निहित 'साम्य' एवं 'वैसाम्य' परत नियमों का निर्धारण करता है। जिन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, उनमें ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ की समानताएं मिलती है, तो उन्हें एक परिवारों का मान लिया जाता है। अर्थात् उनके संबंध में यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि 'भले ही उन में हजारों मीलों की दूरी एवं उच्चारण संबंधी थोड़ी-सी भी और समानता क्यों ना हो, फिर भी उनकी उत्पत्ति एक ही मूल भाषा की मानी जाती है।'

सन् 1786 में 'सर विलियम जोंस' को 'संस्कृत ', 'ग्रीक', 'लैटिन', 'जर्मन', 'अंग्रेजी' और 'फारसी' भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्नलिखित समानताएं मिली–

संस्कृत = नव, नीड
ग्रीक = NIOS, NEOS
लैटिन = PATER, NIDS
जर्मन = VATER, NEST
अंग्रेजी = FATHER, NEST
फारसी = finj, ukS

विलियम जोंस ने अनुभव किया कि यह साम्य आकार नहीं हो सकता उन्होंने कहा कि उपर्युक्त भाषा की एक ही जननी है,, जिसका अस्तित्त्व अब नहीं रहा। तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह परिकल्पना की गई कि, भारोपीय भाषा का स्वरूप कैसा रहा होगा, लिखित प्रमाण के अभाव में किसी भाषा के मूल रूप की परिकल्पना अब महत्वपूर्ण नहीं समझी जाती। एककालिक दृष्टि से दो भाषाओं के विभिन्न स्तरों की तुलना की जा सकती है।

❐❐❐